

आंमेतांभ

[परिचोपन्यास]

लेखक

श्रीमोक्षिद्वयज्ञान पंत

(परमाज्ञा, धर्मशास्त्री, राजमुकुट, प्रतिमा, जूझिया, मराठी,
अणु की बेटी, चंदापुर का किड, पारिका, सुहाग-बिंदी,
एक रूख जादि पुस्तकों के प्रयोग)



मिस्त्रे का बरत—

गंगा-अपागार

३६, लाट्टा रोड

सासनठ

प्रकाशक
कुम्हरोलर
राष्ट्रीय प्रकाशक-मंडल
महुआतोसी
पटना

अन्य प्राप्ति स्थान—

1. दिल्ली-प्रभागाल चर्चोवाली दिल्ली
2. प्रकाश-प्रभागाल ४० आरम्भेट रोड, इकाहावाव
3. काशी प्रभागाल मण्डोदरी-वार्ड काशी
4. राष्ट्रीय प्रकाशक-मंडल महुआ-तोसी पटना
5. माहिल-रत्न प्रकाश, विविध काहल, आगा
6. दिल्ली-प्रकाश अरुणा-रोड, काशी
7. एन. एम. मंडलागर पेंड आरुम अरुमपुर
8. दक्षिण भारत दिल्ली-प्रकाश-मया आगावावागर, मण्डला

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रकाश
कुम्हरोलरों के वहाँ मिलती हैं। अब कुम्हरोलरों के वहाँ न मिलें,
उनका नाम-रत्न हमें मिलें। हम इनके वहाँ भी मिलने का प्रयत्न
करेंगे। दिल्ली-सेवा में हमारा हाथ बैठा है।

हरक
धीनुकारिका
अध्यक्ष गंगा-काशनभार्ति-मेम
सुसनऊ



वक्तव्य

पंजाबी के बरमासा, राजमुकुट, अंगरुत का बिब, सुहाग-बिही
 वे चारों नाटक हिंदी-संसार में बहुत पसंद किए गए। प्रतिमा महावीर
 पारिक, कृमिना एक सूत्र (अपन्नात) और छप्पा-महीर (कहावी-
 संग्रह) का भी मछेट बाहर हुआ। अब वह अमिताभ आपके सामने
 है। इसका भी अबकोन कीजिए।
 बाया है, मेरी पाठकों का इससे भी काफ़ी मनोरंजन होगा।

कवि-कुटीर लखनऊ }
 दीपावली २००३ }

बुझारेला

सूची

	पृष्ठ
१ विधि के चंक्र	१
२ कौन सा रहा है ?	२
३. हस्तोत्सव	१३
४ मारने और बचानेवाले	३५
५ मृत्यु की मजबूती	२२
६. प्रेम के फल	५४
७ सुवर्ण-निर्वा	१०१
८. तीन विमिता	११३
९ महाविमिच्छामय	१३५
१० अग्निमान-उद पर	१५०
११ गुह की कोठ	१८३
१२ भाव ही गुह हैं	२०४
१३ बलवेष्टा	२२५
१४ गुह और विजय	२२०
१५ अर्मक-अवर्तन	२५
१६ अम्ममूमि में	२६५
१७ शूँया सारथी	३२०
१८. आरुच की कम्पा	३४४
१९ विगृहणा	३५४
२० शत्रु को चमत् करो	३६६
२१ महापरिनिर्वाण	३७३

अष्टीर्नं नगरं कृतं
 मांसं शोधितं स्नेपनं ।
 यत्पुं शरा य मणु य
 मानो मक्खो य शोहि हो ।
 (धम्मपद—११ । ५)

१ विधि के अंक

कुंभस बरबात छिष्ट का निरीक्षण कर प्रसिद्ध ऋषि ने उसके चारों में अपना तपोउत्पन्न मण्डक विनष्ट कर दिया। उस बाहक की स्तुति कर उन्होंने कहा—“महाराज, इस बाहक के जन्म से कर्पुवरा उद्भव और यह आर्षावर्त पवित्र हुआ है। तुम्हारा यह पूर्व-कुम्भ धन्य है। तुम्हारी यह राजवरी अपिबल्य और तुम सीमाप्यराणी हुए हो।”

महाराज का नाम शुद्धोदय था। बड़ी साधना और उपासना के अनन्तर उस बाहक का जन्म हुआ था। शुद्धोदय ने बड़े आरवर्त और आनन्द के साथ ये हाथ जोड़ लिए। उनकी सुमरी राणी प्रजावती और समस्त क्षत्रियों ने भी अभ्यर्चना की।

“मैं बहुत समय से इनके आदिर्भाव की प्रतीक्षा कर रहा था।” कहकर प्रसिद्ध ऋषि की आँखों से कर्पुवारा यह बड़ी। वह बोले—“छिष्ट में सब हुआ हो गया, शीघ्र ही मर जाऊँगा।” ऋषि ने फिर छिष्ट के उपास और प्रार्थना का निवारण कहा—“महाराज यह बाहक कहा होने पर महान् प्रजापी और राजवर्ती राजा होगा। यदि हमका मन राज-कार्य में न लगा तो यह विरह गुरु होगा। तस्मात् क पाप-पाप से तप्त प्राणी हमको शराव में शक्ति प्राप्त करेंगे। वह करोड़ों मनुष्यों का अज्ञान के धंधकार से निवारण कर उनके हिये निर्वास का मार्ग सहज-सुखम करेगा।”

शुद्धोदय ने चिंतित होकर कहा—“राज-कार्य में मन न लगा, तो !”

“हाँ, महाराज ! वह भक्त-सपत्नि, सुख-भोग, श्री-पुत्र, माता-पिता, सबका त्यागकर मन में ब्रह्मा जाबगा, और वहाँ सब का अनुसंधान करेगा ।”

सब अक्षित ऋषि की ओर देखने लगे मूर्तिवत् होकर ।

“कोई ऐसा उपाय नहीं है महाराज, जिससे इनका मन राज-कर्म से न बचते ?” शुद्धोदन ने पूछा

“है । परंतु उसका निर्वाह अत्यंत कठिन है ।”

“हम प्रायः-यस्य से लेप्य करेंगे ।” अर्पण आकुल होकर राजा ने कहा ।

ऋषि ने कहा—“भूयो । बूढ़ा, रोगी मृतक और संन्यासी इन चारों को देखने से इसके मांस में बैराग्य का उद्भव होता । यदि तुम इन चारों को राजकुमार की दृष्टि से सदैव दूर रखो, तो संभव है, उसका मन राजमन में बहर जाय ।”

“ऋषिराज, हम वहीं करेंगे । मैं राजमन को दूर और प्राचीर से बंद दूंगा । उसके द्वारों पर भी दिन-रात गहरी निगरान कर दूंगा कि कोई बूढ़ा रोगी मृतक और संन्यासी यदि भूख से भुग्न के भीतर या भी बाहर, तो मदन के भीतर न जा सके ।”

ऋषि बुविनी कानन में तपस्या करते थे, छोड़ गए ।

महाराज की कम राणी का नाम था महामाया जिसने वन तेजस्वी पुत्र का जन्म दिया था । वह साईं-हजार वर्ष पहले की कथा है । अपोष्पा से जाबग्य दिया मैं था वह राजर्षों का राज, जिसके अधिपति महाराज शुद्धोदन थे । महाराज ने उस पुत्र का नाम रक्का—सिद्धार्थ । और अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण हुईं समझीं ।

जब महामाया को वह समाचार सुनाया गया कि अगस्त्य पुत्र महान् तेजस्वी हैं, तो वह रोने लगी । पुत्र-जन्म के बाद से ही वह रोणाश्रित हो गई थी ।

राजकुमार ने उसे धीरे-धीरे धुप कहा—“यह तो उत्सव का अवसर है महारानी !”

महारानी ने कहा—“मैं जानती हूँ, मैं अब जीवित नहीं रह सकती !”

“वहीं-वहीं, ऐसा न कहा ।” प्रजापती, महाराज की दूसरी रानी ने कहा ।

“मैंने बहुत प्रसन्न है ।” महामाया ने रोग-पीडित कंध से कहा—“अब यह वाक्य उद्गम हुआ था, तो इसने उम्मीद कहा था—‘यगोहस्मि लोकत्रय—मैं संसार में सबसे आगे हूँ ।’ कोई इस बात का विश्वास न करेगा, समझकर मैंने किसी से नहीं कहा । मैंने स्वयं भी ऐसे ही देखे हैं । मैं मर जाऊँगी, बहुत शीघ्र ।”

प्रजापती मुक्त होकर रोने लगी थी ।

“रौखो मत रहन ! इस वाक्य में तुम्हें का आभिर्भाव होगा । मैंने सुना है, तुम्हें को उत्पन्न करनेवाली जानकी अधिक दिन फिर इस लोक में नहीं रहती ।” महामाया बोली ।

“म-जाने यह भ्रम की बात किपने बता ही तुम्हें । मैंने मगध से राजपूत बुलाया है तुम्हारी भिक्षुता के लिये ।”

“स्वयं अम महाराज । स्वयं अम !” बड़ी कठिना-पूर्ण रानी ने पुकारा—“प्रजापती ! बहव !”

रोते-रोते ही बसने उठर दिया—“हाँ महारानी !”

“जो इस वाक्य का अर्थ रचा मैं जो, वह मैंने तुम्हें ही दिया । तुम्हीं अब इसकी माता हुई । स्नेह-पूर्ण हमका वाक्य करना, इससे तुम्हारी गोद उज्ज्वल होगी ।”

प्रजापती विचित्राई ।

महाराज ने कहा—“बच्चा रोने लगा है । उसे समझा दियाओ

प्रजापती ! फिर अमिताभ के वचन भी तो झूठे नहीं हैं । उन्होंने इसे रोगी का मुँह दिवाने का निवेदन किया है ।”

प्रजापती ने बाहक अपनी गाँव में छे दिया ।

महामाया ने कहा—“वचन को सुने कि मैं निर्दिष्ट होकर मर मुझ ।” वह लम्बा घर गई ।

“घरने प्राची की ओर में रखकर बाहक की रफा करूँगी वहन ! जबबाह मेरे साथी हों ।” प्रजापती ने कहा ।

महाराज ने प्रजापती को वहीं से चले जाने का भरोसा किया । वह बाहक को लेकर चली गई ।

प्रसूता की बेइया बन चली । वह कहावते लगी—“हे मायाह !”

महाराज ने हुन-मरे शब्द में कहा—“महामाये !”

वह चुन रही ।

महाराज ने फिर उमकन नाम दिया ।

“हाँ महाराज ! छे गई वह मेरे बाह को । उसे न बताना कि वह मायुहीन है ।”

“वही ।

सिद्धार्थ के जन्म के सातवें ही दिन महामाया ने शरीर छोड़ दिया ।

महाराज के विरोग के चर उग्र सिद्ध की बाह-भरिवाओं से भर गए । छत्र वन के चंद्रमा के समान उम बाहक की कलाई दिन-दिन बढ़ने लगी ।

२ कौन गा रहा है ?

विश्व अर्थात् दिन-विश्व काँति, तेज बल और बुद्धि में बढ़ने लगा, पर उसमें बाकरी की कीड़ा बगलता कमी नहीं देखी गई। जब देखो उसे, सभी न-बाने विचार की डिंड गहराई में डूबा हुआ रहता था। कुछ भूबा-सा, बाने किसे स्मरण करता था। कुछ बोबा-सा बाने किसे हँसने की चेष्टा करता था।

महाराजी प्रजापती अपने समस्त पुत्र और वरार्य की प्राप्ति देख कर उस राजकुमार का अतिपात्र कर रही थी। एक पुत्र उसके भी हो गया था। उसका नाम था बंद। प्रजापती ने कभी सूझकर भी किसी बात में बंद को प्रयत्न स्वागत नहीं दिया।

अध्वर्य की विसम की ओर प्रेरणा करनेवाले से बार निमित्त महाराज सुशोभन के मस्तिष्क में जाकर बस गए थे। वह रात-दिन इसी चिन्ता में रहते थे, किम प्रकार वे रोके जा सकेंगे। इसके सिवा कभी दूरदर्शिता से उन्होंने कभी प्रकार के प्रयत्न किए और करते रहे।

उन्होंने दुर्ग के प्राचीर के भीतर एक और दीवार बनवाई। उस दीवार से राजमहल, उसके निरुद्ध के उपवन का अभिर्माण और एक सरोवर का घेर किया।

उन्होंने दुर्ग के भीतर जितने शत्रु कर्मचारी थे, उन सबकी बुद्धि निरस्त कर उन्हें सुली दे दी। दुर्ग के भीतर सूत्र से कभी कोई निमित्त दिखलाई दे जाता, पर राजमहल की सीमा के भीतर कभी कोई नहीं।

एक दिन महाराज ने चिन्ता के मात से चिन्तित होकर प्रजापती के

कहा— 'प्रजापती, पर यह बुढ़ावरया घरय पगों से हमारे राव
मचन के भीतर भी था रही है।

प्रजापती तमीर बिचार में बर गई— 'हाँ महाराज !'

हस पर हमारा कोई क्या नहीं। वर्ष के मयेक मास मास के पूर-
एक दिन और दिन की मयेक बड़ी में वह हमारे निकट था रही है
अविराम अक्षयि कप से। हम उसे नहीं राक सफ़ते। वह हमारे
महत्तियों की आशा नहीं मावती, उसे हमारे बंद का भव नहीं।
वह हम रोहरी बीबारों का मेहमर यहाँ था जाती है।'

'अभी बहुत समय है महाराज ! अभी से उसकी बचा बिता है।'
समय कभी अधिक नहीं हाता।

'फिर भी क्या भव है। हमार बड़े हान तक मिदार्थ और नह,
होको बचक हो जावेंगे। मिदार्थ का राज-मार सीपकर हम
काम्री बास क बिसे बक हेंगे।

'हाँ वही एक मार्ग है महाराजी !'

मिदार्थ और बंद साम-माय देखते। नह की प्रकृति भी ऊ
तमीर थी, पर हममें करकता की भी कमी न थी।

राजमचन के भीतर कच उठता मिदार्थ। नह उने बाहर उपवन
में से जाना। मरोवा के पास एक जामुन का नेर था। उसके
चारों ओर एक स्फटिक का बरूना बना हुआ था। मिदार्थ को
अधिकतर अभी बर बैठा मिय था।

वह पंछों वही बर बैठा हुआ रह जाता। नह के आंगन का वह
सदैव आदर करता। वह उसके माय रोक्ता पर बड़े उशामीन
और निर्मित थाव से।

मेकते-मेकते वह आकाश के मेवा को देखता हुआ रह जाता।
मरोवा में उन्नी और मिट्टी हुई छदों में अपना मन बस जाता।

कभी घन्टाय में बहती हुई चिड़िया, जहाँ में ठहरती हुई ईस-वकि का मक़बिली, धूमि पर अदूर परिसम करनेवाली चींटियों की रेखा उसका ज्ञान लींच लेती थी।

सिद्धार्थ की समझ में बहुत स्पष्ट होकर पहली बसंत-बादल भाई उपवास में। जहाँ और कुछ कृष्णों से भर उठे। पक्षियों के बंछों में गाथा प्रस्मर की मधुर स्वरावलि का कर्म हुआ। एवम मधु-मदिर सुरमि से भर उठी। सिद्धार्थ ने उल्लिखित होकर नंद से कहा—“इतनी सुहावनी प्रकृति आज कैसे हो गई। उसमें से इतने रंग, इतने स्वर और इतनी पंख कहाँ से आ गई ?”

होवो पुण्य बचन कर रहे थे। बंद में उत्तर दिया—“वेहीं थे ही बिबक गए थे कुछ। पहले छोटी-छोटी कछियाँ घाटी हैं। वे ही फिर बिबकर कुछ हो जाते हैं।”

“बह तो मैंने भी जान लिया है। कभी कहाँ से आ जाती है ?”

“मैं नहीं कह सकता पुराण ! पक्ष से पक्ष !” कहकर नंद भाई के पास गया, जो उनकी चौकसी के लिये वहीं बनी थी।

भाई ने पुराण सिद्धार्थ के पास आकर पूछा—“क्या आज है पुराण !”

कहा सकती हो ? गाथा में पुण्य कैसे लिखा ?”

भाई पहले पंखीर हुई, फिर लिबकर ईस बनी—“जैसे लिखा है राजकुमार !” अपने सिद्धार्थ के होना हाथों को पकड़ कर से लुबक किया और उन्हें अपने माथे से लगाया—“वेद में कभी उल्लेख हुई वह बनी, और लिबकर कुछ हो गया !”

“हज्जा तो हम भी जानते हैं। कभी कैसे मध्य हो गई ? इतने शोभन रंग हमने कहाँ से पहन लिए ?”

“यह जगदात् ने बनाए पुराण !”

‘तब प्रमद भगवान् ही पर जाकर समाप्त हो जाते हैं। उन्हें बिपन्न माना क्यों वर्तित है? वह हमें दिखाई क्यों नहीं देते?’

‘हम उन्हें देखने की चेष्टा ही क्यों करते हैं? जो करते हैं उन्हें दिखाई देते हैं कैसे नहीं?’

‘तुमने देखा कभी?’

‘नहीं।’

‘चेष्टा क्यों नहीं की? फिर उन्हें ही वह बिपन्न क्यों लक्षित हुआ?’

बाई ने सिद्धार्थ को गोद में ले लिया—‘तुम्हारा प्रमद तुम्हारे माप से नहीं व्यक्त रहा है। जब तुम्हारी मरणा पीर परिपक्व हो जायगी फिर वे बातें स्वर्ण ही समझ में आ जायगी जहाँ महान के भीतर चरें।’

नंद बाई पीर सिद्धार्थ की बातों में काय दिए हुए कुछ कुछ रहा था।

सिद्धार्थ क क्षण पर नहीं उद्विग्न बनी हुई थी। उसने कहा—‘नहीं, धर्मी नहीं।’ कुछ लोहने के लिये हाथ बढ़ाया उसने। बाई की गोद से उतर गया, फिर दूना—‘जब वे पूरा ऐसे ही लिखते रहेंगे न लिख?’

‘नहीं तुमराज।’

बहास होकर सिद्धार्थ ने दूना—‘क्यों?’

‘वे समाप्त हो जायेंगे।’

‘तब हम उन्हें लोहेंगे नहीं। लहने हो राजकुमार।’

‘तुम्हारे लोहने-न लोहने से कुछ नहीं होगा तुमराज। तुम्हारे न लोहने से भी वे कुछ दिन समाप्त हो जायेंगे।’

‘क्यों?’

‘कैसा ही होता है।’

सिद्धार्थ उदास होकर स्वरिक के बीच पर बैठ गया ।

भाई अपने मन में सोचने लगी, घरों की भरी जगा देते
मुबराज । बात की बड़ लोह दते हैं । महाराज ने बार-बार
प्रस्ताव है कि मुबराज को ऐसे प्रेम पूजने पर उदासित न
करा जाय । उनका भ्रान्त हूसरी आर जगा दिया जाय । पर जब
ह सुनें, तब न ?

सिद्धार्थ किछु पर हार लड़कर मूल्य की आर मिहार रहा था ।

भाई ने कहा—“मुबराज, राजकुमार नंद ने किने कूज तोष
केप है, बेनो न । तुम भी क्यों नहीं लाते । फिर मैं माझार्य
हूँ नही निच की भाँति ।

‘तुम न बता सकी भाई ! इसकी बरी हो गई हो फिर भी
कूज कैसे किना ? तुम्हें माल नहीं । मुरखवा क्यों ? इसका भी
गोई बर तुम्हारे पास नहीं । मैं न छोड़ूँगा उन्हें, मुझे माका से
क्या करता है ।’

भाई ने नंद के पात्र के कूज से बिच, और वह एक खान पर
छेकर बैठ गई गूँबने ।

उसी समय चार्नंद और देवदत्त आ पहुँचे । वे दोनों सिद्धार्थ
के बचेर भाई से । दोनों सिद्धार्थ की ही व्यवस्था के थ । वे कभी-
कभी सिद्धार्थ के साथ बेचने के किने राजमहल के दरवाज में आ
जाते थे ।

चार्नंद कीच-खमाज का बहुत अच्छा था । पर देवदत्त बड़ा
हरी, धर्मवी और बात-बात में कगाने को तैयार हो जाता था ।

दोनों एक दासी के साथ आए थे । दासी भाई के नाम चली
गई, और वे दोनों सिद्धार्थ के निकट बैठ गए ।

नंद और चार्नंद के साथ सिद्धार्थ की किचि अच्छी तरह मिच
जाती थी । पर देवदत्त बड़ा कबडू था । बुर-बोई, बीच-बूच, लोच-

“तब प्रत्य भगवान् ही पर जाकर समाप्त हो जाते हैं । उन्हें बिपन्न घाना क्यों पसंद है ? यह हमें दिखाई क्यों नहीं देते ?”

“हम उन्हें देखने की चेष्टा ही नहीं करते हैं ! जो करते हैं उन्हें दिखाई देते हैं कैसे नहीं ?”

“तुमने देखा कभी ?”

“नहीं ।”

“चेष्टा क्यों नहीं की ? फिर उन्हें ही यह दिक्का क्या अधिक हुआ ?”

घाई ने मित्रार्थ को गोद में ले लिया—“तुम्हारा प्रत्य तुम्हारी घातु से नहीं अधिक बढ़ा है । जब तुम्हारी अवस्था और भी परिपक्व हो जायगी, फिर वे बातें स्वयं ही समझ में आ जायेंगी । बसो, महज के भीतर चलो ।”

नंद घाई कीर मित्रार्थ की बातों में काम बिपन्न पुन पुन रहा था ।

मित्रार्थ के मुख पर बड़ी उद्वेगवन्त बनी हुई थी । उसने कहा—“नहीं घमनी नहीं ।” कुछ लोहने के बिने हाथ बढ़ाया उसने । घाई की गोद से उठर गया, फिर पूछा—“यह वे कुछ ऐसे ही बिचलते रहेंगे न बिच ?”

“नहीं पुनराज ।”

बहाम होकर मित्रार्थ ने पूछा—“क्यों ?”

“वे समाप्त हो जायेंगे ।”

“तब हम उन्हें लोहेंगे नहीं । रहने दो राजकुमार ।”

“तुम्हारे लोहने-न लोहने से कुछ नहीं होगा पुनराज । तुम्हारे न लोहने से भी वे एक दिन समाप्त हो जायेंगे ।”

“क्यों ?”

“देसा ही होता है ।”

सिद्धार्थ बहास होकर स्तरिक के मंच पर बैठ गया ।

भाई अपने मन में सोचने लगी, घरनों की कड़ी जगा देते हैं पुबराज । बात की बड़ कोढ़ दते हैं । महाराज ने बार-बार यह रक्का है कि पुबराज का ऐसे घरन पूजने पर उन्नाहित न केना जाय । उनका घरन दूसरी बार जगा दिया जाय । पर जब यह सुने, तब न ?

सिद्धार्थ बिजुक्त पर हाथ स्तरिक गृह्य की ओर बिहार रहा था ।

भाई ने कहा—“पुबराज, राजकुमार नंद से कितने कूट ठाढ़ किए हैं, देखो न । तुम भी क्यों नहीं तोड़ते । फिर मैं माझार्य गृह्य हूँ ही दिव्य की भाँति ।”

‘तुम न बठा सभी भाई । इतनी बड़ी हो गई हो फिर भी कूट कैसे बिजा । तुम्हें शाय नहीं । मुरझका क्यों ? हुत्का भी कोई उत्तर तुम्हारे पास नहीं । मैं न छोड़ूँगा उन्हें, तुम्हें माझा से क्या करना है ।”

भाई ने नंद के बाउ के कूट से किए, और वह वह स्थान पर बैठकर बैठ गई गूँघने ।

उसी समय धर्मद और देवदत्त भी पहुँचे । वे दोनों सिद्धार्थ के चचेरे भाई थे । दोनों सिद्धार्थ की ही व्यवस्था के थे । वे कभी कभी सिद्धार्थ के साथ खेचने के लिये राजमहल के उद्यान में आ जाते थे ।

धर्मद शीक-स्वभाव का बहुत अच्छा था । पर देवदत्त बड़ा हठी, बर्गही और बात-बात में बदमर्श का लैहार हो जाता था ।

दोनों एक दासी के साथ आए थे । दासी भाई के नाम रखी गई, और वे दोनों सिद्धार्थ के निज बैठ गए ।

नंद और धर्मद के साथ सिद्धार्थ की विधि अच्छी तरह मिला जाती थी । पर देवदत्त बड़ा बज्जु था । भूद-भौद, बौद-भूद, लोद-

कोइ के ही सेवों को पसंद करता था। उसकी संगति में पुचराज सुधी नहीं जान पड़ता था। उसकी सहज-सरल शान्ति और विचार अधिक हो जाता था। बेचद्वय बड़ा छोटी भी था। मेरा-मेरा का विचार फा-फा में बसे बरे रहता था।

सिद्धार्थ की हज्जरा उसके साथ लेहने को कभी न करती। पर विचार था। महाराज की हज्जरा की वह समस्त बाहकों के साथ लेहता रहेगा, तो उसकी सामाजिकता बढ़ेगी। वह सांसारिक बंधनों में सब जमावेगा।

एक साथी थीर था कविबल्लभ की इस सागरी दीवार के भीतर ब्रिदा करनेवाले राजकुमारों का। वह एक बाई का पुत्र था उसका नाम था बंधक। सिद्धार्थ को वह अर्पण मित्र था।

द्वयद्वय एक बाल्य-या अनुव-बाब लिए हुए था। पुरुष की प्रवृत्ति होती वह गर्व थी वह उसे बांध रहा था।

“बाबा धर्मद, आज बड़ी बेर से आएँ।” सिद्धार्थ ने पूछा।

“हाँ बाबों पर जाकर बस की सैर को चले गए थे।” धर्मद ने उत्तर दिया।

“मेरा भी कभी-कभी सब करता है। पर महाराज की आज्ञा नहीं है। वह कहते हैं बाहर की सभी वस्तुएँ हमने यहाँ प्रस्तुत कर रखी हैं।”

धर्मद बाबा—“वह सब तो है पुचराज। चाकर, बन, अरुण मरावर, पट्ट-पट्टी चुक-छटा पब-मैदान भर-भारी, रस-बादन, सभी कुछ तो हैं वहीं। मरार के सभी प्रकार के विकास की सामग्री से राजमरम परिपूर्ण है तुम्हारा।”

“और कुछ नहीं है धर्मद?” सिद्धार्थ ने पूछा।

“नहीं पुचराज।”

“तुम कविबल्लभ की सागरी दीवारों के बाहर भी तो गए हो न?”

“हाँ, ”

“मैं केवल तीसरी बीमार लक गया था। कहीं कम्बिता के महाराज की आज्ञा बिना। वह भी साथ ही थे।”

“राजकुमार नर ?” आर्जुन ने पूछा।

“हाँ, वह भी थे। हम सारी बीमारों के बाहर दूर से जैसे कोई रुका रहा है मुझे, कहीं कम्बिता और केदर-मरी पुष्पा में आर्जुन। दिन-भर बन्ध-पर्वतों में घूमते रहने की हवा होती है।”

“वहीं कभी-कभी रुकने के बिना कुछ भी नहीं है। वहाँ स्थिर बिलाल है। छोड़े और रव में तुम घूमते ही तो हो वहाँ।”

“कमलें लुप्त नहीं होती। वह यहाँ घूमकर फिर वहीं आ जाता है। मैं घूमना चाहता हूँ, देखे मार्ग में, जिसका मित्रा चित्तिक की निस्सीमता में को गया हो।”

आर्जुन हँसने लगा—“जब जब और बयलक हो जाओगे, तो जा सकोगे, क्या बिना है।”

मंद भी बलक निकल आ गया था और देखकर अपने अनुब-भाव डीक करने में दलभित था।

महाराज सिद्धार्थ ने मंद का हाथ पकड़ लिया—“बिना वही सुना। वहाँ मंद और आकर्षण से भरा गीत। तुमने नहीं सुना मंद ?”

मंद ने हमसुर कहा—“वह तो आम की मंत्रियों से कोयल कुछ रही है।”

“वहाँ कम्बिता और कम्बिता आता है। तुमने सुना कुछ ?” सिद्धार्थ ने आर्जुन से पूछा।

“वहाँ ? कितने ? पुष्पा ? मैं तो कुछ भी नहीं सुन रहा हूँ।” आर्जुन ने बच दिया।

शेव के ही खेजों को पसंद करता था। उसकी संयति में जुबराब झुकी नहीं जान पड़ता था। उसकी मझ-सराह खांति भीर बिचार खंडित हो जाता था। देवदत्त बड़ा जोही भी था। मेरा-तेरा का बिचार सा-याग में उसे घेरे रहता था।

सिद्धार्य की इप्सा उसके साथ खेजने को कमी न करती। पर बिचल था। महाराज की इप्सा की वह समस्त बाहकों के साथ खेजता रहेगा तो उसकी सामाजिकता बढ़ेगी। वह सांसारिक पदार्थों में मग्न होगा।

एक मापी और था कपिलबस्तु की इस मानवी दीवार के भीतर खड़ा करनेवाले राजकुमारों का। वह एक धाई का पुत्र था उसका नाम था इंद्रक। सिद्धार्य को वह प्यारत मिल था।

देवदत्त एक जोर-सा बज्र-बाज किए हुए था। बज्र की मर्जबा होखी पड़ गई थी वह उसे बाँध रहा था।

“आपका ध्यान, आपकी वही धर से आए।” सिद्धार्य ने पूछा।

“हाँ जोरों पर चढ़कर वन की लैर को खड़े गए थे।” ध्यानंद ने उत्तर दिया।

“मेरा भी कमी-कमी मग्न करता है। पर महाराज की आज्ञा नहीं है। वह कहते हैं, बाहर की सभी वस्तुएँ हमने यहाँ गच्छ कर रखी हैं।”

ध्यानंद बोला—“यह सब तो है जुबराब। आकाश, वन उपवन, सरोवर, पहाड़-पर्वत, वन-मैदान, नर-नारी रथ-बाहक, सभी कुछ तो हैं यहाँ। संसार के सभी प्रभु के बिचारों की सामग्री के राजमदन परिपूर्ण है तुम्हारा।”

“भीर कुछ नहीं है ध्यानंद।” सिद्धार्य ने पूछा।

“नहीं जुबराब।”

“तुम कपिलबस्तु की सातों दीवारों के बाहर भी तो गए हो न।”

कीन गा रहा है ?

“हाँ !”

“मैं केवल तीसरी हीबार तक गया था। वही कठिनाता के महाराज की आज्ञा मिली। वह भी साथ ही थे।”

“राजकुमार नद ?” आनंद ने पूछा।

“हाँ, यह भी थे। इन मातों हीबारों के बाहर दूर से बेते कोई गुला रहा है तुम्हें, वही कठिन और बेदना-मरी पुष्प से आनंद ! दिन-भर वन-पर्वतों में घूमते रहने की इच्छा होती है।”

“वहाँ लीन इतने कठिन भी नहीं है। यहाँ प्रचुर विस्तार है। कोई भीर तप में तुम नूतने ही तो हो वहाँ।”

“उससे गुंथि नहीं होती। वह मार्ग बूमकर फिर वही आ-जाता है। मैं बूमना चाहता हूँ ऐसे मार्ग में, जिसका सिरा चिठिन की विस्मयता में लो गया हो।”

आनंद हँसते कहा—“यह जब और बयल हो जाओगे, तो जा सकोगे, क्या चिंता है।”

नंद भी उनके निश्चय आ गया था और वंदन अपने बलुव-बाव डीक करने में इतकित्त था।

अचानक मिहार्च ने नंद का हाथ पकड़ लिया—“फिर वही सुना ! वहा मधुर और आकर्षक से भरा गीत ! तुमने नहीं सुना नंद ?”

नंद ने हसकर कहा—“वह तो आम की संगीतियों से कोपक कर रही है।”

वहा करण और धर्मबेनी, आनंद ! तुमने सुना कुछ ?” मिहार्च ने आनंद से पूछा।

“कहाँ ? कितर ? पुरातन ! मैं तो कुछ भी नहीं सुन रहा हूँ।” आनंद ने उत्तर दिया।

सिद्धार्थ के मुख पर बड़ी निष्कलता उत्पन्न हुई। वह उदर हस्त-उपर धड़कने लगा।

देवदत्त का अनुप हीक हा गया था। उसने उसमें बाव चढ़ाकर फेका जामुन के रेश की शाखा में, जहाँ बहुत-सी चिड़ियाँ बैठी थीं।

परी पंख फड़फड़ाकर उड़ गयी। बाव किसी के लगा नहीं, दो बार पत्तों को गिराकर पुर का पड़ा।

सिद्धार्थ ने चौंकर कहा—‘राजकुमार देवदत्त। वह क्या किया तुमने?’

“तुमने हाक दिया, नहीं तो एक चिड़िया तो अवश्य ही फिर जाती।” देवदत्त हँसकर बदवा बाव से आया।

‘मैंने तुम्हें बाव संपानते हुए देखा भी नहीं।’

देवदत्त फिर बाव चढ़ाने लगा अपने पशुप में।

सिद्धार्थ ने कहा—“देवदत्त, तुम आज ही जादू हो पशुप-बाव।”

‘हाँ कुचराब, यह मुझे दसवीं वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में अभी कहा ही तो मिला। जन्म का पुत्र और दूसरी स्त्रिय वध की चाहना करो? रास के कौशल से ही वह मित्र और शत्रु, दोनो के बीच में आकर का पात्र होता है।”

“क्यों देवदत्त?” सिद्धार्थ उसका हाव पकड़ने लगा।

‘केवल एक चिड़िया। तुम्हें वह दिखाने के लिये कि एक ही दिन के अम्वास से संज्ञान कितना डीक हुआ है।”

“वहाँ नहीं। यदि तुम्हारे बाव से एक भी पक्षी बरसता ही हुआ, तो फिर रास-के-साव जयमीत होकर भाग जाना पड़े। देवदत्त, राज-भर में तुम सुक-गति हो। जगर और वन में जाइ जहाँ भी जा सकते हो। तुम और कहीं अम्वास कत्था। मैं जहाँ जा सकता हूँ। वही परी मेरे सहकर और सखा हैं। वे मेरे

जाय बीर इन्हीं पर बैठकर खेचते-तूटते हैं। ये मेरे हाथों पर से ही चपट बहाकर जागत परसद करते हैं। इसके बीच मैं तुम इस प्रकार मर न देखाओ।” सिसुार्थ ने बड़ी चतुर्बल-विशेष के साथ कहा—“इन्हें न मारा राजकुमार। इन्होंने तुम्हारा कुब भी नहीं बिगाड़ा है।”

‘तुम शास्त्रों के पुराण हो। अस्त्रिय में हमारे राजा बनोगे, शास्त्रों की बीराज से ही शत्रु उनसे डरता है। तुम्हारी भी बर्ष-गाँठ निरुद्ध है। तुम भी उपहार के दिये चतुर्बल-बाण की ही इच्छा प्रकट करा।’

‘नहीं, कहाँ नहीं।’

‘बहा, यदि चतुर्बल-बाण निरुद्ध बलु होते, तो राज्य के शास-विद्यालय से शस्त्र-विद्यालय करारि अस्त्रिय न होता। महु बीर सिद्धिदियों के धनक राजकुमार शस्त्र-विद्यालय में सिखा पा रहे हैं। मैं भी सीख ही नहीं भाती हार्डेगा। “देवदत्त ने बड़े बख्शाद में भरकर कहा। अपने हीर चतुर्बल से बहाकर तुम्हारे में एक दिया—“पर तुम मुक्त शस्त्र-विद्युत नहीं कर सकते।’

‘इन्होंने हुए फूटों, गाली हुई करतों बीर भाते हुए शस्त्रियों से ही मेरा जान बचा हुआ है। तुमने उसे शक्ति न पहुँचाने के उद्देश से बाण एक दिया, तुम अन्धबाह के पात्र हो।’

‘पर तुमसे एक बात कहता हूँ सिसुार्थ ! ये फूट, हाथ पकी और सरोवर का ही जगत् नहीं है। तुम शास्त्रों के शासनिहासक पर अधिकार करते। तुम्हें राज्य के बातों प्रार की अन्य बातों से सर्वप्रथम रखने होंगे। तुम्हें बीर बनने के दिने उद्योग करना चाहिए।’ देवदत्त ने आनंद की आर मुक्त कर कहा—
‘क्यों आनंद !’

आनंद ने कुछ बात नहीं कहा। केवल हँसकर नंद का हाथ पकड़ लिया।

“दो-चार वर्षों में तुम विवाह-बोम्ब डी जाओगे। मैं करता हूँ, यदि तुम शस्त्र-विद्या के प्रति ऐसे ही उदासीन रहे, तो कोई भी सर्वशुद्ध-संपन्न बलिष्ठ-कुमारी तुम्हारे साथ विवाह करने के लिये उत्सुक न होती। यदि तुम्हारी माता धन्य होती, तो क्या ऐसा होगा!” देवदत्त ने कहा।

“तुमने एक बार बहने भी ऐसा कहा था। क्यों पांडकुमार, मेरी माता तो बही है।”

“कौन महारानी प्रजापती? वह तो तुम्हारी विमात्य है।”

“माता मेरी?”

“उनकी सन्तु हो गई। सुनता हूँ, जब तुम केवल सात दिव के थे।”

“सन्तु हो गई! सन्तु करते किये हैं।”

माता गुँबते हुए कुछ सुनकर चाई दीपक का सई बहीं पर। देवदत्त कुछ दूर पर बसा गया।

सिद्धार्थ ने चाई से कहा—“चाई, सन्तु किये करते हैं।”

चाई ने तीव्र दृष्टि से देवदत्त की ओर देखा—“पांडकुमार देवदत्त! तुम लज्जे बदे हो। मुँह से कोई शब्द निकलते हुए भी विचार नहीं करते।”

“मैंने क्या कहा।”

सिद्धार्थ ने कहा—“पांडकुमार देवदत्त ने कहा कि मेरी माता की सन्तु हो गई।”

चाई ने ऊँचे स्वर में सिद्धार्थ के बालक का प्रतिज्वाला हुआ दिया—“तुम, तुम, देखा नहीं करते, वह जाही है।”

“फिर मेरी माताजी कहीं है ?”

“राजमहल में : तुम्हारे ही बाबू-पासन के कम में तुम्हारे ही प्यास और किछ में ।”

“है जरूर है ।”

हंसते हुए बेरहमिया पहुँचा फिर वहीं पर—“अरे इसी की बी राजकुमार, महाराजी प्रजापती ही तुम्हारी माता है ।”

सिद्धार्य ने कहा—“पर वह शब्द मुझे क्या दिव प्रतीत हुआ जैसे कबेक दिनों की सुना हुआ—परिचित ।”

“सावधान ! उधे भूख जाओ । अब भुख से प्रकट न करना । महाराज सुनेंगे, वो मुझे सूखी पर बटकर देंगे ।” चाई ने सिद्धार्य के पैर पकड़कर कहा ।

“वही, न कहीं चाई, भूख जाऊँगा । पर क्या उधे भूख जाना ही उसे पाद रखना नहीं है ? अब पाद मेरा भव लेखना नहीं चाहता ।” सिद्धार्य ने कहा ।

“राजमहल के भीतर चला ।”

“वही, इसी काहुन के हृद के बीचे बैठा पहुँचा । तुम सब उधे जाओ । मुझे बुझाव ही दिव है ।” सिद्धार्य ने कहा ।

चाई ने मंच पर के बिछे हुए कबी आसन को पछकारकर प्रणम कर दिया ।

सब जैसे यह राजमहल की ओर ।

सिद्धार्य बुझाव बेह की दाया में दिवार कबे चला—“सुन, वही वह शब्द है, चाई को समझाओ, वर मेरी हप्ता बार-बार इसी को रखे की है ।” वह वपदन में घुमे चला ।

हृद से विद्वत्तर एक सुरप्तावा हुआ ठूरी का हृद उसके कंधे पर गिरकर नृमि पर पतित हो गया ।

सिद्धार्य ने उधे हाव में कहा किया—“न कबे समझ और

कोमल साधियों से क्यों विभूष गवा। दू खून रगों, मुरझा गवा,
दू जी-हीन हो गवा ! इपीकिये शाका ने तुम्हें परित्यक्त कर
दिवा ! क्या इसी का नाम मैंने चमी सुना था। शाका पर दू
न-जाने कहाँ से आ गवा, मैं नहीं जानता। भूमि पर की मिट्टी में
दू कहाँ का जागता, मैं इससे भी अनजान हूँ !” वह जामुन
के पेड़ के नीचे बैठ गया, उदास और अकसम होकर।

महाराणी के साथ छत्रोदन उदयन की ओर ही आ रहे थे।
वे सब घाँगल में ही उन्हें मिल गए।

महाराज ने कहा—“राजकुमार देवदत्त, पुनराज का साथ
क्यों छोड़ आए ?”

“उन्होंने स्वयं ही हम सबसे जाग्रो कह दिया। आप उन्हें
जाने भी तो वहीं बेटे कहें। मेरे इस छोटे-से प्रिय-भाब को
देखकर वह मरगीज हो उठे।” देवदत्त ने कहा।

“कहा भी क्या माय हो गया है पुनराज का, इसमें संदेह
नहीं।” महाराणी ने कहा।

“मैं इनके शारीरिक साहस और शक्ति के विकास के लिये भी
राजमहल में ही किसी शास्त्रार्थ की विरुद्ध कर दूँगा। दुर्ग
की दूसरी दीवार के भीतर बहुत बड़ा मैदान है। छोटे और
रमों की बीच के लिये भी पर्याप्त स्थान है। यहाँ एक इनके
जाने में कोई हानि नहीं है।” महाराज ने कहा।

‘‘सब फिर उदयन की ओर चले।

‘‘मैं ने कहा—“राजों की शिक्षा देने के लिये जो गुह आते
हैं, वह आज कह रहे थे पुनराज का-सा प्रतिभा-संपन्न वाक्पथ धार्मिक-
वर्त में दूसरा कहाँ-कोई नहीं है इस समय ?”

“हाँ, मुझसे भी कहते थे कि अब पुनराज के लिये किसी दूसरे शास्त्रार्थ
का अवकाश नहीं, यही सब विद्या समाप्त हो गई।” छत्रोदन ने कहा।

वे जब सिद्धार्थ के पास पहुँचे, तो उन्होंने देखा वह चाँवल बंद
हुए मंच पर सा रहा है। वे सब चुपचाप वहीं बैठ गए।

महाराज ने कहा—“चुप रहो। नींद न लेना पुनराज की।”
अचानक सिद्धार्थ उठकर खड़े हुए — ‘मित्रों! मधुर! कैसा
स्वस्थ! यह क्यों है या गीत?’ पास बैठे हुए महाराज आदि
पर बसकी छवि पड़ी। वह चुप हो गया।

‘क्या हुआ पुनराज?’ छद्मोदन ने पूछा।

“जान से, क्या हुआ कोई माया है महाराज! मेरे अंतरंग
से, वह प्रेम की प्रेरणा से परिपूर्ण है।” सिद्धार्थ ने उत्तर दिया।

‘जब वे छोड़ दें निश्चयन हमारे सम्मुख ही जाएंगी। मैंने
गीतबंदी से कई गीत-कुमारियाँ सुनाई हैं, मधुर जब स्वयं करते।
उनके गीत ही कविबल्लु पहुँच जाने का समाचार है।”

उपवन का एक शाकल युग आकर सिद्धार्थ के चरणों में डालने
लगा। सिद्धार्थ ने देखा हाथ के साथ महाराज को सिद्धार्थ,
धीरे धीरे उस युग की पीठ पर हाथ डालने लगा।

महाराज ने फिर कहा—“पुनराज! तुम जितने क पुत्र हो,
तुम्हें इतना अस्वस्थगीत न होना चाहिए। एक दिन तुम सिद्धार्थ
के अधिकारी होओगे। तुम्हें जाति के मित्र धीरे धीरे होने से
संबंध रखना पड़ेगा। इसलिए तुम्हें लोक-स्वभाव सीखना उचित
है। अनेक तरह मूक रहकर चलने की विचारों में डूब रहने से
तुम्हारे स्वास्थ्य पर हमका हानिकर प्रभाव पड़ेगा। अब से इस
रीति के द्वार तुम्हारे द्विजे मुक्त होंगे। वहाँ जो मैदान है वहाँ
तुम्हारे स्वाभाव, लोक-भूत जाने धीरे रनों की पीढ़ तथा राष्ट्र-विद्या
के अध्ययन का प्रबंध होगा। वे सब सीखने तुम्हें आवश्यक है।”

“मैं भीत चुका हूँ महाराज से सब।” सिद्धार्थ ने उत्तर दिया।

“क्यों?” सारथी पूछा महाराज ने।

“यह नहीं बता सकते । कमल की बड़ी समर्थ महाराज है महाराज ।”

“क्या किसी भीरु कमल की बात तुम कह रहे हो ?”

“यह भी नहीं जानता ।”

“बोका दीक्षा सकते हो ? लख बका सकते हो ?”

“हाँ महाराज, आप परीक्षा से सकते हैं ।”

“बड़ी प्रसन्नता की बात है । धनक तुम्हारा मिय सजा है । यह तुम्हारा आरपी विपुल हुआ ।”

“केवल एक आपसि है महाराज ।

“क्या ?”

“मैं निरपराध बीचों के ऊपर लख न बजाई गा ।”

“सच्ची बात है । कम से कम-विप्रायय के आचार्य तुम्हारा हस्त-धीरुह देखेंगे । फिर एक दिन निवर्त किया जायगा तुम्हारी परीक्षा के लिये ।”



३ हलोत्सव



विष्णुसायु साव हीबारों से धिरी हुई राजधानी थी । उसके

भीतर पहली हीबार से बिरा हुआ राजमहल था । उसमें

परिवार और दास-दामिनों-महिय महाराज निवास करते थे । उसके चारों
घोर दूसरी हीबार के भीतर उनके निष्कलम संबंधी रहते थे । तीसरी
हीबार के भीतर शास्त्रों के ग्रन्थ बंशधरों के भवन थे । ग्रन्थ का
राजकोष, न्यायालय आदि राज्य-कार्य के भवन वहीं बने हुए थे ।
वहीं शास्त्रों के उच्च गणपति की सार्वभौमिक समा-संघातार के
अधिपति होते थे । चौथी हीबार के भीतर राज्य की सेवा आदि
के नायक और अधिनायकों की बस्ती थी । वहीं राज्य के उच्च और
शास्त्र के विचारधरा भी थे । पाँचवीं हीबार के भीतर नगर था ।
ग्रन्थ का भीतरी और बाहरी आदिमर वहीं होता था । सबसे
अधिक यही जन-संख्या वहीं थी । मूर्ति-मूर्ति के ध्वस्तानी कम
और निरुपग्रीही मर वहीं रहते थे । वेध कक्ष में भी वह सब माथों
से बहर था, चढ़-चढ़ भी वहीं सबसे अधिक थी । नगर के
बाहर, साहरी हीबार के भीतर राज्य की सेवा रहती थी । वहीं
राज्यगार, गणराज्य और धरमराज्य थीं । राज्य की सेवा का
सामान बनाने की निरुप-राज्य भी वहीं थी और कारागार भी
वहीं अवस्थित था ।

मिहार्थ का नर इन सातों हीबारों को सुदूर दूर बगल में
मिह जाना चाहता था । इन माथों अधियों को सेरकर मुह पवन
की मूर्ति प्रकृति में नमन जाना चाहता था ।

राजमहल से देवत एक ही मार्ग दुर्ग के सचने, बाहरी मिहार्थ

एक चक्का मरा था। दुर्ग के भिन्न भिन्न विभाग हम एक ही मार्ग से बरस्पर संबन्ध थे। यह मार्ग वहीं पर किसी रीबार का अतिक्रमण करता था, वहीं एक भीतर की ओर हमारा बाहर, दो-दो ग्रहरी विपुल थे।

निहार्य के बिन्दु परकी रीबार में द्वार खुला। आर्षद और देवदत्तदुर्ग के इस दूसरे विभाग में ही रहते थे। वहीं जो बड़ा मैदान था वहीं अब चारों राजकुमारों की शस्त्र-शिक्षा का प्रबंध किया गया। सुदृढ़ शस्त्राचार्य विपुल हुए। वह निश्चित समय में राजकुमारों को हस्त-कीर्णक और व्याघ्राम की शिक्षा तथा उनका अभ्यास कराते थे। उन्हें भरत-निष्पेय और शस्त्र-संचालन सिखाया जाने लगा। पैदल एवं और बाइकों की दौड़ की शिक्षा भी जाने लगी।

महाराज ने हम बाग के बिन्दु अत्यंत मानवार्थ होकर प्रवचन किया कि बड़े, रागी, झुठक और संन्यासी, इस चार विभिन्नों में से कोई सुभराज के समीप न आए जाय। उस माग में रहनेवाले सर्वपिणों को सचेत कर दिया था कि सुभराज की शिक्षा के समय कोई निमित्त इसके मार्ग में न आवे। स्थान-स्थान पर मार्ग में इसकी रोक के बिन्दु ग्रहरी भी बिठा दिए गए।

शस्त्र की शिक्षा में भी सिद्धार्य सत्र राजकुमारों में बुद्धि का तीव्र भिन्नता। उसका हस्त-आवृत्त ऐसी दृष्टि, साहस और स्फूर्ति देखकर एक दिन आचार्य ने महाराज से कहा—“निःसंदेह सुभराज एक सरकारी वाक्क है। इसकी प्रत्येक बात में मुझे पूर्ण अर्थों की साधना प्रतिक्रियित दिखाई देती है।”

जीवों के ऊपर बाण चलाते के बिन्दु सिद्धार्य एक पक्ष के बिन्दु भी सम्मत नहीं हुआ। वह किसी दूसरे को पैसा करते हुए देखने की भी वैचार न था।

एक साध का वृक्ष था, उसी पर साध चढ़ाकर राजकुमार कल्प-
साधना किया करते थे। काकागर में एक दिन मिहार्च उम वृक्ष के
नीचे स्थित होकर ध्यान से कुछ वृक्षन लगा।

आचार्य ने पूछा— क्या वृक्ष रहे हा मिहार्च ! ऐसी कल्प-
वृक्ष क साध ?”

‘मह वृक्ष और वृक्षों के समान नहीं बिलार्च द रहा है। कुछ
बिह्वत और रस-हीन हो गया है।”

‘हाँ, सुवर्ण ! वह वृक्ष क्या है।”

‘क्यों ?”

‘हमका उमा विरंतर बाधों के आघात से बर्बरित हो गया इसी
से। हममें भी बीच है।

‘हममें भी बीच है ?’

‘हाँ, यदि बीच न होता, तो वह बहुत कैसे ?”

‘सब है आचार्य ! मैं अब वृक्ष पर भी सीर न चढ़ाऊँगा। एक
बात पूछना है सुन्दर ! आप कम दूर कर लेंगे मेरा ?’ मिहार्च
‘उम्हें और भी उदरवता की ओर से गया।

‘‘राज-सर्वधी नहीं है वह, राज-सर्वधी है।” । -

‘‘अम दूर करने के लिये कहा मारी आत्मिक कक्ष आदि, मि
कमी केही कर अव्यय किया ही नहीं।”

‘‘क्यों, अपाध्ययन के आरंभिक दिनों में आपने कहा था कि
पञ्चगिष्ठा केव का ही एक र्ण है। उममें भी मनावत की आप
रवकता है। बिना मंत्र-विधि मि उमकी पूवता नहीं। ॥ १”

‘‘तुमसे कुछ नहीं दिया सख्या सुवर्ण ! महाराज से मी।
मैंने मंत्र मिद किया ही नहीं।”

‘‘क्यों ?”

‘‘कोई गुरु नहीं मिला।”

“पर मैं एक साधारण-सी बात पूछता हूँ, आप जानते ही होंगे। बहुत दिनों की बात है, मैंने एक लम्बी सीमा—‘मृग’। मैंने साधारण से इसमें बर्ष पूरा। उन्होंने कहा कि मृग का ही एक अपर नाम है। वह मृग के ही समान सूक्ष्म और अदृश्य है। आप अधिक न बताइए। केवल ‘हाँ’ या ‘ना’ में ही आपका उत्तर चाहता हूँ।”

निमित्तों की चर्चा करनी थी निश्चिन्नी, पुष्पा के साथ। पर उनकी आकुञ्चिता और विनय ने साधारण के मन की राग-वेगादनी को डक दिया। उन्होंने कहा—“पूछो पुष्पा, मैं क्या-क्या उत्तर दूँगा।”

“इस मृग के एक नाम और मृग में कोई संबंध है?”

“है पुष्पा।”

आशा में सरकर पुष्पा ने पूछा—“क्या साधारण?”

“कल्पित का सूत्र जाना ही उतनी मृग है।”

“और मृग?”

“जीवन के दूसरे सिरे का नाम मृग है।”

सिद्धार्थ ने कभी कल्पना मरी सुस्तान के साथ कहा—“उस दिन लज्जुमार देवदत्त ने जो पत्नी बाबू मारकर मृग पर गिरा दिया था, वह फिर न उठ सका।”

“हाँ, कुछ देर बाद उसकी मृग हो गई।”

“जीवों के अपर तीर न डोहने की प्रेरणा मेरे मन में स्वर्ण ही हो गई साधारण! वह अदृश्य ही हुआ। फिर वह ध्विजा कहीं गई?”

साधारण ने देखा पुष्पा प्रश्नों की मरी जगा रहा है। उन्होंने उस प्रश्न का वहीं पर संत कर दिया—“कोई नहीं बता सकता, मरकर वह ध्विजा कहीं नहीं गई।”

“कोई भी नहीं?” अन्त में निराश होकर पुष्पा ने पूछा।

“नहीं।”

सिद्धार्थ ने आकाश की ओर देखा । उसकी दृष्टि एक निगाह बृहत्तर पड़ी । उसने उसकी ओर संकेत कर कहा—“बह बृहत्तर का बृहत् भी तो कुछ नया । उस पर हमने कभी ध्यान नहीं बहाया ।”

“बह बृहत् हो गया था । बुरराज !”

इसका निमित्त सुनने लगा सिद्धार्थ पर ।

उसने कहा—“बृहत् क्या हुआ आचार्य !”

“पुरावा बढ़ गया ।”

“पुरावा बढ़ गया । पुरावा पड़ने से जो उसे धीरे भी समूह होना चाहिए था । बार-बार वर्ष पड़से मेरे संग होने बहवाह नहीं थे, मित्रने जब है ।”

आचार्य को राजाशा का स्मरण हुआ । वह बुरराज बोले—“बुरराज, जब इस निम्न की चर्चा कर कर हो । समझ आने पर तुम बड़े हो जाओगे, धीरे हुए बाओं को स्वर्ग ही समझने लग जाओगे ।”

बुरराज ने कहा—“क्या आपको भी यह राजाशा सुनाई गई है कि सिद्धार्थ के साथ अनेक बातें ब की कार्य । पर मित्रने मेरे मूल दिया दिए का रहे हैं, वे उठने ही अपने आप सुनते का रहे हैं ।”

“हमकितने तुम्हें अपीर नहीं होना चाहिए बुरराज ! वहाँ हम सब तुम्हारी भावना-कामना धीरे दिख-साध्य क ही कितने हैं ।”

“यह धीरे बृहत्तरका एक नाम था बह बात हुए है । नाम से क्या होता है । मैंने देखा है उन्हें । वे रोना माई-बहव हैं, क्यों आचार्य !” सिद्धार्थ ने कहा ।

आचार्य ने कुछ हँसकर कहा—“मैं नहीं जानता बुरराज ! सब राजकुमार बड़े पड़ हैं । क्या निर्वच हो गया । हमें भी तो ज्ञाना चाहिए, क्यों ।”

आचार्य सिद्धार्थ को राजनयन एक सुनाने लगे पड़ ।

एक दिन राजकुमारों की बुढ़रीय के बिये नियत हुआ। उन चारों राजकुमारों के प्रतिनिधि और भी उनके अनेक शक्ति-भाई सम्मिलित हुए, उषी मैदान में। यन्त्री तरह वेस-भाजकर कुछ दूरियों की सीढ़ी भी प्रविष्ट की गई यहाँ। आबरवक सागों में पहरीगन्ध एक दिव्य गन्ध।

पहली दौड़ आरंभ होने लगी।

पुनराज का सारथी और सख्य बंदूक रात पलककर कंधक को उनके समीप ले गया।

कंधक सिद्धार्थ का परम मित्र होता था। वेग में पवन, कति में हिमाचल और दूर्य में कुंजर के बाहुल की समता रहता था। कहते हैं, वह पुनराज की बाजी भी समझ जाता था।

सिद्धार्थ ने बोड़े की गर्दन पकड़ाकर कहा—“कंधक! तुम था गन्ध!”

कंधक ने हिनहिवाकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

बंदूक बोला—“कंधक, यदि दौड़ में यात्रा तुम सर्वप्रथम न हुए, तो बड़ी बज्जा की बात होगी। बंदूक ने राम पुनराज को सीपी—“आप ही सर्वप्रथम होंगे पुनराज में जानता हूँ।”

सिद्धार्थ ने अमिताभ से प्रश्न पर आरोहण किया।

दौड़ आरंभ हुई आचार्य का संकेत था।

‘आदि में कुछ विवद गन्ध के पुनराज। उन्होंने कंधक को हककी दूध लगाई। उसने हवा होकर सख्ये बहुत दौड़े दौड़ दिया। उनकी दृढ़ तीव्रता से सारी दौड़ विलीन हो उठी, और उनकी प्रतिबोधिता के बिये सब-पाप से चेष्टा करने लगी।

‘काई बाढ़ी मजबूत गया कोई आरोग्य की मार जाने के कारण उसे नुमिबर नेककर अमृत दौड़ गया। कोई बोड़े की पीठों-बीठों की साहस की स्वर नेककर सबके अंत में दौड़ा जा रहा था।’

कंधक बड़ा जा रहा था। उसके चरख मूमि का रस्म भी नहीं कर रहे हैं, ऐसा दूर से प्रतीत हो रहा था। चम्प प्रतिमागी बहुत दूर छोड़ दिया सिद्धार्थ ने। उन घर में दबदबा ही घमघमा था।

विजय-स्तम्भ घर मोड़ी ही दूर रह गया था। महाराज सुखोदय का मस्तक पुनराज की मफकता से उन्नत और आकाशिन हो रहा।

अचानक! अचानक सिद्धार्थ का बाड़ा रुक गया। वह बाड़े से उतरकर समीपवर्ती एक वृक्ष की छाया में बसा गया। उसके चम्प प्रतिमागी आगे बढ़ गए। राजकुमार देवदत्त ही में सर्व प्रथम हो गया।

मीढ़ ने बड़कर चारों ओर से पुनराज-के चर छिया।

महाराज ने पूछा—'क्यों पुनराज! क्या बात हो गई?'

सिद्धार्थ ने उत्तर दिया 'वही आचार्य सुधा में—'कुछ नहीं महाराज!'

'फिर जोड़ा क्यों टुक दिया! हीन को विभिन्न कर लेने में कुछ ही बात मूमि रोप थी।' ७

सिद्धार्थ प्रति-मदय से अपना उच्छीय लोकाकर अपने जोड़े के मुख पर ध्यान करने लगा—'अर्थात् तीव्र गति से कंधक का श्वाभ चलेने लगा था। इसका विच्छन्न हाथ हीनता मुम्मेसे देखा नहीं गया।। मिन हीन की विजय इस मूक प्राणी की विभांति के साथ बढ़कर ही महाराज। वह वही कृष्णता से परि-पूर्णों से मुने निहार रहा है। यह बाकी-विहीन फल एक-एक राम से मुने प्रभावित हो रहा है। विदय के पूर्व से यह कम्पना की मेरवा मेरे बिये बड़ी। प्रबिक मजुर और दिव हो गई।' ८

महाराज ने भावों के आच्छेद में सिद्धार्थ का घापी से जपाया। अपने फिर-बार हाथ लकन कसक माया रूँवा। उन्हें अक्षित चरि की भविष्य-बाकी बाद आई और वह विच्छन्न हो डटे।

अनेक लोगों ने सिद्धार्थ के इस त्याग और दया की स्तुति की ।

देवदत्त चुपके-चुपके अपने बूढ़ सखा से कह रहा था—“श्रीर सिद्धार्थ की इस मूर्खता से काम उठावा देवदत्त ने ।”

धीरे एक दिन की रात है । सिद्धार्थ स्वामागार में जाने के लिये तैयार हो गया था । असी समय उसने बाहर सड़क पर किसी को पीटते हुए सुना । आवाज से जाँचकर देखा, एक रथवाण रथ में छुटे हुए बैल को तुरी तरह पीट रहा है । बुधराज बाहर की ओर आया । उसके रथ पर केवल एक परिचाम था ।

भूत्त ने कहा—“बुधराज !”

“हाँ-हाँ, अभी बाकी ही ढेर में कूट जा रहा हूँ मैं । तुम मेरे बशील बच जाकर एक दो चर्राँ एक एक ।”

भूत्त बच जाये चला गया ।

बुधराज ने बाहर जाकर देखा । रथवाण अभी एक बैल को पीट ही रहा था । उसने कहा—“बैल को इसकी निर्धनता के लिये पीट रहे हो ।”

रथवाण ने वहीं पड़वाया बुधराज को, कहने लगा—“तुम क्या जानो । का-काकर वह मोटा हो गया है । परिचय करने के नाम पर मरा जा रहा है ।” उसने फिर बैल की पूँछ मरोड़ी और उसकी पीठ पर स्यासर कोड़े जमाने लगा ।

“गर्ही-गर्ही, ऐसी निर्धनता से क्या मारो इस मूढ़ पशु को ।” बुधराज ने उसका हाथ पकड़ लिया ।

“बोको जी ।” कहकर उसने अपना हाथ छुड़ा दिया ।

“कदाक बार बूढ़ गड़हा हो गया है । तुम्हारे रथ का चक्र इसी में फँस गया है । मैं चक्र को सहारा देकर बचूँगा, तुम भी हाथ खपाओ । रथ चक्र चढ़ेगा ।”

रघुनाथ ने बात मान ली । दोला सिद्धिचरण चक्र को घमाने लगे ।

“पुनराज ! पुनराज ! बह गया ?” यह क्या ? कदम बड़े जोग मित्र-मित्र दिशाओं से हीन रहे वहाँ को ।

रघुनाथ ने सिद्धिचरण मन्त्रा माया पुनराज के नीचे चरणों पर रख दिया ।

“विचक्र घोर वीरे देव भाव कहीं बड़े भाव पुनराज !” दो सतक गद्दी पे इस रव के साथ, उन्होंने बड़ी विजयता के साथ कहा ।

विद्यार्थ ने इस रघुनाथ को हाथ पकड़कर जूँटि पर से उड़ दिया—“बह रघुनाथ गया या वहाँ । भय सहायता देकर बाहु का भारी कद हर दिशा में । बह भी कोई बात हुई !”

“बहा मूर्ख है दे दे रघुनाथ ! महात्म्य सुनें, तो क्या कहेंगे ?” एक प्रहरी बोला ।

“तभी तो कहावत है, देव हीनेवाले की बुद्धि बैल के ही समाव होती है ।”

रघुनाथ फिर हाथ जोड़कर विद्यार्थ के पैरों पर गिरने लगा ।

पुनराज ने बड़े हास्य कहा—“इसका रोप नहीं । मैं स्वयं ही अपनी हथ्था से भा गया । क्या है इस रव में बहुत भारी ?”

“राजक एक ही भय भावा है, पुनराज राजकोश में जमा होने का रहा है ।” पहले प्रहरी ने कहा ।

दूसरा हास्य—“भाव राजमन्त्र के भीतर पधारे पुनराज ! महा राज बहि देव चारों, तो हम लोगों के धिये भाव हो जायगा ।”

रघुनाथ ही स्थित हो गया था । रघुनाथ बड़े रोह भावा था ।

दूसरा प्रहरी चिड़ककर बोला—“अब पत्थर की मूर्ति के समाव क्या कहा हो गया ? बाटा क्यों नहीं, हीन्य क्यों नहीं ? लोगों का ध्यान किंचित्ता है हजर-बजर है ।”

होना प्रहरियों ने हाथ जोड़कर दमा साँची बुधराज से। बुधराज
हँसकर बोले— 'तुमने क्या अपराध किया ?'

राम बोला : प्रहरियों ने उसका अनुसरण किया। सिंहाई एक-
अवध को खींच गए। उनका लुप हीड़ता हुआ नहीं था पहुँचा था।
दो बार दर्शक को और एक हो गए थे वे भी बुधराज के इस
दृष्ट-साव की सराहना करते हुए चले दिए।

प्रति वर्ष चैत्र-मास में शास्त्रों के राज्य-भर में हजकर्मकोष्ठपर
महाभा जाता था। कृष्णाय हज-जैहों का महका-मुकाकर हज-
माका जयों से सँभारते थे। हज भी सुपजित और अकंहव
होकर मही-पुत्री-महिष्ठ सेतों पर जाते थे। पञ्चम तथा मिष्टाक
बनाकर लाने और खिलाते थे। होल नगारे तुरही और नव
बजाकर नाचते और गाने हुए घर से बहते थे।

कोठों पर पहुँचकर बजुंकरा माता और कुवि क देवता को भोग
जाते थे। फिर सबकी स्तुति में गाते, नाचने और हज बजाते थे।
महपुत्रक हजक उसी दिन सबसे पहले हज बजाया धारक
करते थे।

घर से तैयार भोजन जैहों पर ही ले जाते थे, मन्वाह में वहीं
मह मिष्टाक करते थे। इसके परचाए वे फिर ईद और सूर्य की
स्तुति के गीत गाते। जोड़ी हुई भूमि में बीज बोते और फिर गाते-
नाचते हुए ही मन्वा-समय तक घरने-घरने ज्यों को खींचते थे।

हुरी के भीतर राजपरिवार में भी यह उन्मथ मनाया जाता था।
विशेष साक-सजा और घूमवाम के साथ। कहते हैं, पहले दूर-दूर
के ग्रामों से अनेक लोग निर्मलित होकर आते थे इस हज के उत्सव
में। पर अब बाहर से कुछ-कुछ लोग ही आते हैं। कदाचित्
बुधराज के चैत्राय का कोई विमिश्र न होस पाये, इस मय से।

सोने और चाँदी के काम। से, बड़े हुए हज नवने, हुए रखते थे,

जो कबल उन्मथ की ही शाखा था। स्वयं महाराज, उनके संबंधी एवं राजकुमार उन्हें बचाते थे।

शास्त्रों के हम गणतंत्र की रज्जुबाहिरी नापी कुपि ही थी। इसी-जिये कृपक वृत्ति को राजपरिवार हम कसब के द्वारा प्रतिष्ठित करता था।

हम वर्ष का उन्मथ हो रहा था। सिद्धार्थ की अवस्था इस समय बीसह वर्ष की हो गई थी। इस क काम में भाग वह सर्वप्रथम इस चलावों। राजपरिवार में विशेष उल्लाह था।

गुरुजनों के इस चलावे के परचाह पुत्रराज की जारी आई। नवीन वस्त्रावधारों से सुसज्जित सिद्धार्थ ने इस पर हाथ रक्खा। दो सेकड़ बैलों के निरुद्ध नई ये धीरे धीरे पुत्रराज के दाग पारवों में। स्वयं महाराज पुत्रराज की पीठ पर हाथ रखते हुए थे।

संकेत पाकर बैल चले। काब ने एक-दो ही पग धूमि छोड़ी हागी कि पुत्रराज ने इस पर से हाथ हटा दिया धीरे कम स्थान से दूर चला गए बड़ी विरक्ति दिखाकर।

महाराज ने बिना-पूर्वक पूछा— 'क्या हुआ पुत्रराज ?'

'नहीं महाराज, मैं न बचाऊँगा इस।'

"जुग, जुग, ऐसा न करो। माता वसुधरा की उर्वरा-शक्ति पीय हा जाती है ऐसे। सूर्य धीरे धीरे बुझता कुपित होने। राज्य में कबाळ या बाण्डा, या मन्त्रा क्या लावनी।

सिद्धार्थ मम्मथ न हुआ।

"जुग वण या बचाया।"

'नहीं महाराज, कुछ ही दूर में मैंने देखा, इस क दुर्घात धौधुलंद मे धनक बाटे-बाटे बीलों का कुचल दिया है।' सिद्धार्थ ने कहा।

महाराज ने हम तर्क को धारो न बचाया धार करने लगे—'सच्चा, तुम उदास न होया। शकुन्तल चला ही दिया है तुमने इस। अब कोई तुमसे जुग न करेगा। उन्मथ में तो चलो।'

“अपराध जमा हो महाराज ! मैं यहीं से दूख रहा हूँ और नीच सुन रहा हूँ ।” सुभराज वहीं बैठ गया ।

उपस्थित अश्विनी माय से हो रहा था । और दूसरे राजकुमार एक बचाने लग गए थे ।

राजाधन ने सिद्धार्थ के पास से जाकर नेत्र से कहा— ‘राजकुमार हम जाना, सुभराज आपके ही बिटे हैं । उनके मन में फिर उदासी आ गई है । इधर-उधर की बातों से उनका मनोरंजन करो ।’

बंद जब वहीं गया तो उसने कहा, सुभराज महाराजी प्रभावशाली से बातें कर रहे थे ।

“अपनी अपनी स्थिति है महाराजीजी ! उग्रच के दिव तकमे हर्ष मनाया जायिष । इसी उद्देश्य को लेकर मैं भी सम्मिलित हुआ था उसमें, परंतु परंतु—‘सिद्धार्थ का कंड बंद हो गया ।’

“परंतु क्या हुआ ? किसी ने कुछ कहा दिया ?”

“सिद्धार्थ से कोई कुछ नहीं कहता । ये सब मुझे अंधकार में रख देने का प्रयत्न कर रहे हैं । प्रकृति अपनी मूल भाषा में मुझे कुछ संदेश देती है और प्रमुख मेरी जिज्ञासा को अपने कौशल से मिटा चाहता है । महाराजी ! आप भी उस वर्चस्व में सम्मिलित हैं ।”

“किस वर्चस्व में ?” अश्विनी होकर प्रभावशाली ने कहा । वह सिद्धार्थ के समीप ही बैठ गईं हरी दूध के ऊपर ।

“वही जो सिद्धार्थ को प्रकृत की ओर नहीं जाने देता ।” सुभराज ने अपना मुँह उतारकर भूमि पर एक दिया—“बड़ा भारी ज्ञान पचता है ।”

बंद जवाब-जवाब साध रहा था क्या नहीं । अंत में उसने कुछ बोला—“सुभराज ! गर्व-दण्ड से जो नीच भाविकताएँ आ रही हैं वे न आ सकी हक के उग्रच में ।”

हठोत्तर

महाराजी ने कहा—“बैरो नंद ।”
नंद भी बैठ गया । सिद्धार्थ ने नंद की बात का कुछ भी
ध्यान नहीं दिया । कदाचित् उसके विचार की गहराई तक नंद
के शब्द नहीं पहुँच सके ।

सिद्धार्थ ने कहा—“आप भी तो मुझसे कुछ विपारी हैं ?”
प्रजापती ने पुनराश्रम की पीठ पर बिखरे हुए कुंतल अपने हाथ
में लिए—“तुम मेरे नेत्रों की ज्योति हो । तुमसे कुछ क्यों
विपारी ?”

बताओ फिर अधिकार विपश्य कहाँ गए ?” पुनराश्रम ने
तत्काल ही पूछा ।

“महाराजी बसे गए हैं । वहाँ से राजपूत जाने का
विचार है, कदाचित् ।” महाराजी ने उत्तर दिया ।

“इस प्रकार पकड़क क्यों बसे गए ? वह मुक पर क्या स्नेह
रखते थे । जाते समय उन्होंने मुझे बुलाकर क्यों आशीर्वाद नहीं
दिए ?”

“महाराजी मैं उनके गुरु रहते हैं । उन्होंने उन्हें रात-रात
जिसी आवश्यक काम के किये बुलाया था । जाते समय किसी
से भी मद करने का अवसर उन्हें नहीं मिला ।”

सिद्धार्थ ने एक गहरी साँस ली—“अच्छा खोरी काकी कहाँ हैं ?”
“वह कम्बर अपने पिता के घर बची गई हैं ।”
“अब क्या बौद्धों ?”

“कौन क्या सकता है ? मगधा जाने ।”

“मुझे बहुत बुरा लगती याद आती है और जबकि स्नेह में हज़ी
इतिमत्ता थी कि उन्होंने जाते समय कहा भी नहीं । और एक दिन
इसी प्रकार तुम—”

महाराजी ने पुनराश्रम के शब्दों पर अपना हाथ रखकर उसे आगे

नहीं बोलने दिया— 'तुम्हें बचाने क्या हो— गया। जब तुम चुप रह जाते हो, तो फिर बोलते नहीं और जब बोलने लगते हो, तो फिर विचार नहीं करते। तुम मेरे माथों के आधार हो।'।

माथ किसे करते हैं ?"

"मस्तक की बनावट के बाहर का भाग है वह।"

"तुम नहीं जानती ?"

"नहीं।"

"क्या है ?"

"मैं इसे भी नहीं जानती।"

'अभिषेक' की इन दोनों शीबारों के भीतर कोई भी नहीं जानता। फिर भी वे गर्व से मस्तक उन्नत करते हैं और इन्हें धरती दिया का अभिषेक है।"

दुर्गों की घोंट में बिना हुआ इस का समय मृत्यु के अज्ञान और नील के स्वर्गों से मुक्ति हो रहा था। महारानी के साथ की हासियाँ कुछ दूर पर कभी-कभी उस घोर ही बिंबी हुई थीं। वे धावत में बह रही थीं— "बह पुत्रराज भी कैसे होये। ऐसे सुंदर मूल-नील को जोड़कर यहाँ कैसे है। मृत्यु भी जो ऐसा इच्छा नहीं रखते।"

"दुर्ग की सारों शीबारों के बाहर क्या है महारानी ?" सिंहाई ने फिर पूछा।

"कभीय कुछ भी नहीं। ऐसा ही जगह है जैसा यहाँ।" महारानी ने कहा।

"फिर मुझे यहाँ जाने क्यों नहीं दिया जाया ? राजकुमार-देवदत्त तो गए हैं।"

"राजकुमार देवदत्त की दूसरी बात है। तुम अविज्ञान की पुत्रराज हो।"

"तो क्या तुमराज को प्रजा से इसी प्रकार दिया दिया जाता है, कैसे मुझे ?"

प्रजापती हँसती हुई बोली—"देखो तुमराज, यह सब तुम्हारी रक्षा के लिये है। तुम इसे बिराजा क्यों करते हो ? समस्त तुम्हारी शक्त की वृद्धि के लिये, और तुम देखोगे, अविनाश के दुर्ग की सातों दीवारों तुम्हारे लिये बनाए गए हैं। वहीं नहीं, बिना किसी भी के लिये संसार की दलों विनाश की तो विनाश ही है। वही संसार में विनाश कर चुके।"

"मुझे इन कथनों के आरंभ में इन्द्रोपनिषद् से मरा हुआ अंत दिखाई देता है। जब एक ही प्रजापती दोनो पक्षों को बताते हैं, वह अत्यंत ही स्पष्ट प्रजापती से मरा जाता है, और मैं विचारता हूँ यह प्रजापती है, जब परियाम में वही प्रजापती ही तो फिर भी कौन क्यों आरंभ किया ?"

"जैसा वृक्ष में पुष्प बिखर जाते हैं, इसी प्रकार प्रजापती के मातृत्व में एक ही प्रजापती है, वही प्रजापती में प्रजापती ही प्रजापती है। यह एक स्वाभाविक बात है। अतः का प्रमाण है। यही एक ही प्रजापती, यह प्रजापती किसी हीन-हीन थी, प्रजापती देखो, प्रजापती प्रजापती ही और प्रजापती है।

'और, कुछ ही दिनों में फिर प्रजापती ही हो जायगी।'

यह प्रजापती का प्रमाण है। प्रजापती ही प्रजापती है। प्रजापती ही प्रजापती है।

"प्रजापती दत्ते हैं तुमने ?

"नहीं।" प्रजापती ने कहा।

"किसी ने देखा है ?"

प्रजापती के सामने अविनाश साधक-संस्थापकी की मूर्ति थी, उसने उन्हें निमित्त जानकर बोध दिया, कहा— 'हाँ, कोई कोई देखते हैं।'

“कहाँ ? मैं भी देखूँगा उन्हें ।” सिद्धार्थ उठ गया ।

बाद में कहा—“बुधराज, वह पक्ष की धाँसि सूझा है । नहीं दिखाई देते । क्योंकि जलम में ।” उसने सिद्धार्थ का हाथ पकड़ लिया ।

दूसरा हाथ प्रजापती ने गड़ किया ।

अर्धत विमल हाकर सिद्धार्थ के संकोच-भरे पैर बढ़ाए कसब की ओर—“बाहर जगह की बात मैं नहीं जानता । इस राजमहल में सर्वत्र एक अभाव—एक शरबत अभाव दिखाई देता है । ग्रीष्म शेष हो जाता है, सर्ष अस्त हो जाते हैं । दुग्ध मुरझा जाने के क्षिपे हैं और दृष्ट सूख जाये के क्षिपे ।”

४ मारने और बचानेवाले

जगत् के दुःखद दरद और दुःख का ज्ञान कहाँ तक सिद्धार्थ से प्रियत्मा जाया ? मनुष्यों पर राजाजाने ने निर्यग्रस किया, प्रकृति प्रियत्मा करने पर नहीं ? भिगा दुर्म की सानो हानारों का नाँवकर सुबराज के पास आ जाती, बँबकगा करने कदर्य पों में स्थापन और जंगम, सबके सिरों के कसर मँडबाप रहनी थी। धृष्ट, उनके दुर्विशर्ष जातक हंरा से कीन बच सभ्य ?

अनेक प्रकार की विजायों ने अत्यन्त बँर दिया महाराज सुभोहन को। नीतर-ही-नीतर दुःख की मीति करोचन मगीं उन्हीं। दिन-रात हमी सोच में पड़े रहने लगे बह।

जारी निमिच्छों से राजकुमारों को कहाँ तक बचाया जायगा, वह उन्हीं विजा का सबसे बड़ा विषय था।

एक दिन उन्हींने महारानी प्रजावती से कहा— 'बाहर के निमिच्छों से हम किसी प्रकार बचाते हुए चले जा रहे हैं सुबराज को, पर महारानी ये बात और मरब वरा बार और अक्षयप गति से हमारे राजमन्त्र की सीकियों का अतिशय नहीं कर रहे हैं ? आज नहीं, हम-सी-ब बरै में क्या हुय हवर्ष हूँ न हो जायगे ? और एव, वह हम वंशजनों के पित्रो में किसी एव भी पुन सकता है ।'

महारानी ने उत्तर दिया — 'महाराज, अनेक बच हमी चित्त में अतिवाहित करने से काई ज्ञान नहीं। जो मगवान् एक दुःख देने है, वही सबसे बड़ा और मुक्ति के उदात्त भी। राग राजमन्त्र के किसी वंशज कप में बँरी होकर दिया दिया जायगा मदा की मीति।

“गुबराज के चाचा और चाची की झुलु पर जो हमने उनके प्रवास-गमन का आचरण बाजा था, उस पर गुबराज का संराज बड़ गया।” महाराज ने कहा।

“हाँ मुझे ऐसा जान पड़ता है, राजकुमार देवदत्त कभी-कभी गुबराज के बिच को भरमा देते हैं।”

“बाबूक ही डरार, कहाणिए भूखकर।”

“जहाँ मैं समझती हूँ, जान-भूझकर। राजकुमार नंद ने कई बार कहा मुझसे। चाचकी एक फिटा और वह जानघी वह सोचकर ही मैं आपसे कुछ नहीं बोली।” महाराजी ने कहा।

“पर महाराजी, राजकुमार देवदत्त को गुबराज की संगति में न जाने देने की आशा हम कैसे दे सकते हैं? गुबराज से भी देवदत्त के साथ न जाने को नहीं कह सकते। सिद्धार्य जातु और रबमाच, बोबो से ही कोमल हृदय का है। इस प्रकार चाचि के होव का विष-बीज उसके मावस में जो देवा उचित नहीं। इसके ऊपर सारी चाचि क्या कहेगी हमसे? कविचवस्तु में वचपि हमारी सत्ता प्रकट है, फिर भी कहने को यह गन्धसत्ताप्रकट ही है न?”

“कुछ भी हो। राजकुमार देवदत्त के वहाँ जाने पर हमें गुबराज की विशेष चिंता करनी चाहिए।”

“राजकुमार नंद चाई और कई चाक्यों से कह तो रहा है हमने कि देवदत्त के साथ सिद्धार्य को कभी अकेला न छोड़ें।”

“कहीं प्रसन्न हव की मावना है राजकुमार देवदत्त में। नहीं कुरिख कुदि के हैं। वह गुबराज की अपस्था से कुछ बड़े हैं, वह भी उनके बड़े अभिमान की बात है। उनके पिता ने दाम-दामियों के साथ उन्हें नगर-भ्रमण की स्पर्धजता से लकी है। बात-बात में गुबराज के साथ नगर की ही चर्चा करते हैं।”

“पुत्रराज कहाँ है इस समय ?” महाराज ने पूछा ।

“अपने प्रयोग में ।”

चारों राजकुमार पुत्रराज के प्रयोग में थे । निकट ही द्वार के पास एक सेवक दलही आवाजों की प्रतीक्षा में बैठा था । वहीं पर एक चार्ज भी थी सिद्धार्थ की ओर विशेष ध्यान करने हुए ।

राजकुमार देवदत्त एक विशाल दर्पण के सामने अपने चेहरे को ठीक कर रहा था ।

सिद्धार्थ और आनंद एक पुस्तक को खोल कर किसी सूत्र की खोज कर रहे थे । राजकुमार भंड देवदत्त के पास ही लगा था ।

देवदत्त ने एक बरत कर कुछ जाम मुट्ठर के नीचे दबाकर दर्पण में देखा और कहा—“मन्त्राज्ञे तुम दोनों राजकुमार भिन्न वस्तु के निर्मित हो ? कोई इच्छा ही नहीं तुम्हारे ।”

“क्या करना है हमें अगर देखकर । हम का कुछ वस्तु चाहते हैं, वह अगर ये हमारे किये नहीं था जाती है ।” भंड ने उत्तर में कहा ।

“हो गया हसी पर संतुष्ट रहा । तुम्हारी अवस्था के बालक कार्यावर्त का प्रभाव करने का निकलते हैं, भ्रमंजक की परिक्रमा करने के किये अगर जीकने हैं ।”

भंड कुछ भी अव्यतिर न हुआ देवदत्त के कथन पर । उसने तैलस्विता के साथ कहा—“सुखा है, अगर मैं नहीं पूछ और भीचद होती है । अब और बानों के बीच में जोर-जबरन बरा जाने का मय रहता है । बीच में भंडे मनुष्यों के बीच में जोर-जबरन के भी बीच बचते हैं ।” भंड ने कहा—“कुछ और अवस्था यह जाने पर जाती है ।”

“तुम दोनों को अगर का समोमय बरा ही दिखाया जाता है बसका बसका और कमकीका मया नहीं देना समने तुम । मु शरीर

जेही क मरन क भीतर गया था मैं। तुम्हारा यह राजमगन क्या है उसके बिना? आकार के सामने? कैसे हाथी के सामने एक बीसी? कैसे मिट्टी-गोबर के बने हुए हो तुम? कहते क्यों नहीं एक दिन महाराज से कि हम मरन-भोग को छोड़ेंगे। मरन बाघों लाता न लाघों। मरन मारकर भोगवा पड़ेगा उन्हें।" देवदत्त ने कहा। यही उसका मरन समाप्त नहीं हुआ था।

यही राजकुमार हमारे आचार्य ने माता पिता और गुरुजनों की आकांक्षा करन का स्वभाव बताया है हमारा। क्या ऐसी दुष्प्रवृत्तियों की शिक्षा तुम्हारे आचार्य देते हैं तुम्हें? और तुम्हारे माता-पिता का वह प्रेम मरन से महन होती है?"

देवदत्त ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा—“श्रिताना क्या यह मारा प्रमथ है, इतने बड़े-बड़े दर्शन दे उसके मरन में। एक मरन की बीमारियों में बिनाकुल दर्शन ही बने हुए हैं—जब और आचार्य पर भी। ऐसी कथा से बचाए गए हैं कि एक मनुष्य की अगतिव प्रवृत्तिविधि दिखाई देती है। मैंने जब से सदाका देवदत्त-बेछे, या कुछ वर तक ता भिस्मक-विपुल क्या रह गया। कुटुम्ब-बाध है राजकुमार बंद! का नहीं मैं तुमसे। एवं विरचकर्म की रचना जान पड़ती है।

सिंहार्य भी देवदत्त की कही-कही बातें सुन रहा था। उसने पुस्तक बंद कर हाथ में ली और जलन-सहित उसकी ओर कहा। देवदत्त बोला—“और वह हमारे पुत्रराज, इन्हें विदित ही नहीं हमारे राज में क्या है? इन्हें तो एक कोने में बंद रहना ही सुकर्म है।

“जपनी-भपनी सब है राजकुमार।” सिंहार्य ने अपनी सहज शब्द बाणी से कहा—“तुम्हें वह शिक्षा दी गई है, जो मोक्ष में है, नहीं बहुत में भी, जो कम में है, नहीं राशि में। राज-

मारते श्रीर बचानेवाले

कुमार आनंद ! क्या हमने अभी नहीं पता जो बिंदु में है, वही बिराट् में ।”

आनंद ने प्रबुद्धोदय किया—“हाँ ।”

“और मुझे इस बात का विरहाम हुआ है राखकुमार ! क्या मुझे हममें रंका है ?” मिथार्थ बोला ।

“श्रीक है पुत्रराज !” देवदत्त ने कहा—“जो पतीक्षी में है वही भाव के एक भास में भी । श्रीर को एक भास में है वही भाव के एक भास में भी । मैं बूढ़ा हूँ, क्या भाव का एक ही भास तुम खाते हो ? क्या उन्नी से तुम्हारी परितुष्टि होजाती है ?” उन्नी वही बिजब क दर्प क भाव दर्प में अपने प्रतिबिम्ब का दृष्टा ।

“यह बुनई है राखकुमार ! इससे मेरा विचार बुद्ध नहीं हो सगा ।” मिथार्थ ने शक्तिपूर्वक कहा ।

देवदत्त ने मंद को बचक कर कहा—“सबसे कम देने की बात नहीं है वह, राखकुमार वह ।”

मंद न पड़ा—“क्या ?”

“पही, जा अभी मैं तुमसे करी । वह दर्पवादी बात ।” देवदत्त ने रहस्य का धरा बनने हुए कहा—महाराज की भी ता बाधा नहीं है प्रत्येक बात प्रत्येक से करने के लिये ।

हृद के चरमा कीन्दी ओजसा बहक उठी मिथार्थ के अर्पों के बीच में—“दर्प हमारे दर्प को बहाता है । दर्प सत्य के बीच का मध्य आधार है । अभाव की भावना दर्प है । शीघ्र क पा ही सत्य की दूरी कम करते हैं ।”

देवदत्त ताड़ी बजाकर करने लगा—“क्या पुत्रराज ! आचार्य को कंडरा किया हुआ पाठ सुना रहे हो ? दर्प कितना सत्यवादी है । तुम्हारी नाक में यदि मैल जगा हो, तो यह सत्य श्रीर सत्य जग्य कर देता है ।”

“मैं कइया हूँ तुमसे राजकुमार, यह सत्य को विहृत कर दिखता है।” सिद्धार्थ ने हुल्लक के ताड़-बलों को मजे लेकर अपने हाथ में संभाला।

“अद्भुत बात तुम कह रहे हो सुप्रताप ! क्यों राजकुमार बंद ? क्यों आर्चर ?” देवदत्त ने पूछा।

“बही तो बात है। ऐसे ही तो माया ने सत्य का शिपा लका है।”

“यह केवल तुम्हारी कल्पना है।”

“देखो।” सिद्धार्थ ने एक ताड़-पत्र हाथ में लिया, और उसे देवदत्त की ओर कर कहा—“इसमें अक्षित मंत्र को लो, दीक है क्या ?”

“हाँ-हाँ क शिपा।” देवदत्त ने बड़ी उपेक्षा से कहा।

“जब प्यो।” सिद्धार्थ ने अब वह पत्र धर्ष देवदत्त के सामने लका—“जो अब धर्ष इस धाम का कैसे मन्त्र कर रहा है।”

देवदत्त ने देखा डर। दककर वह चलाया—“है ! यह तो—” उसने ताड़-पत्र लेकर फिर उसके ऊपर देखा, और फिर धर्ष में बड़े हुए उसके प्रतिविम्ब को ला—“है, ये तो विजकुल उल्टे ऊपर है।”

सिद्धार्थ ने कहा—“ऐसे ही सत्य शिपा हुआ रहता है, और हम सब मन्त्र समझते हैं।”

देवदत्त के मुख पर बराबर की छाया बह गई थी। पर उसने उसे हिलाकर कहा—“क्या हुआ फिर ? मैं क देता हूँ इस मंत्र को।” वह चले गया—“हाँ बधाप्रस्तो वर—”

सिद्धार्थ ने उसके हाथ के वह पत्र से लिया—“यह लेने की बात दूसरी है।” सिद्धार्थ ने अपना एक हाथ ऊँचा कर देवदत्त के सामने उठाया—“यह कीम हाथ है मेरा ?”

“दक्षिण।”

मारने और बचावेवाले

“नहि कोई इसे बाम कहे, ता गुम इसे मचा कहागे ?”
देवदत्त बिचार में पड़ गया।

पार्श्व ने कहा—“हम इसे सूझा करेंगे।

“दर्वण बाहन को बाम कहा है देवदत्त ?” सिद्धार्य ने कहा—
“इसीलिये मैं दर्वण में बहुत कम अपने स्वरूप को देखता हूँ।
जब देखता हूँ, तो प्रकृति के ऐसे क्षिप्र प्रकट होने की शक्ति के
क्षिप्रे प्रत्याम करता हूँ।”

पार्श्व ने इसी समय आकर कहा—“महाराज और महाराणी
पधारते हैं।”

देवदत्त सिद्धार्य की ओर बढ़ने के बहाने से दर्वण के निष्ठ से
हट गया। उसने पुनराज के हाथ की पुस्तक लेते हुए कहा—“श्रीन-
भा पुस्तक है यह ?”

महाराणी प्रजापती के साथ महाराज दुर्बोध ने कम कम में प्रवेश
करते हुए कहा—“शास्त्रवर्ण के उगमक नष्टनाश ! क्या हो रहा है ?”

महाराजकुमारों ने उन्हें प्रत्याम किया।

“बातों से अपना मनोरंजन कर रहे हैं।” मन्त्रों ने बहल दबल
बोला।

“बिबाह ता नहीं हो रहा है ?”

“नहीं महाराज !” देवदत्त दबदब में ही उत्तर दिया।

“होना भी नहीं चाहिए ?” महाराज पुनराज की ओर आर्क्षित
हुए—“क्यों पुनराज ?”

सिद्धार्य ने स्मित मुख से दबदब की ओर देखा। दबदब ने
बगकी पुस्तक उभे बीटा दी।

महाराज ने फिर देवदत्त से कहा—“राजकुमार ! तुम्हारे मित्र
आवस्ती गए वे अभी बीटका जाण नहीं ?”

“नहीं महाराज !”

एक सेवक ने जाकर बुधराज से कहा—“बुधराज, आज आप कचहरी में नहीं बसो ? आज तो पूरा-पूरा कल-कुर्छों में, लोहार के ल्यों का आगमन हो रहा है। लोहार-लोहार उस आगमन के बीच के पास आ रहा है, जो आपके विभाग का काम दिया जा रहा है।”

मिहिरा ने महाराज की ओर देखा।

महाराज बोले—“हाँ-हाँ, जाओ। राजकुमार बंद, तुम भी जाओ बुधराज के पास।”

मिहिरा की ओर बंद कचहरी की ओर गए।

महाराज ने कहा—“राजकुमार देवदत्त, मिहिरा की कामकाज प्रवृत्ति का है, उससे बुधराज की बातें करने की आवश्यकता नहीं है।”

“वही महाराज ! बड़े लोहा बुधराज और संस्थापक, इन बातों का मैं उत्तर नहीं करता।” देवदत्त ने कहा।

“किसने कहा ये तुम्हें ?”

“मैंने जान कि बुधराज ! पर मैं इन बातों से क्या करने किता होगा नहीं जानता।”

“बुधराज-काय में एक महारथ है। वह मिहिरा के पास है। वह उन्हीं की धारा है।”

महाराज की प्रजापति कायस्थ के मार्ग से अचानक में देखा रही थीं। महाराज के निकट जाकर बोली—“आज बुधराज प्रसन्नचित्त है।”

“हाँ महाराज !”

प्रजापति ने कहा—“और ऐसे कि महाराज ! धारा राजभवन किता उठता है, एक उत्सव-सा आग लड़ता है।”

देवदत्त बोली—“महाराज ! आज बुधराज की वस्तु में लोहा नहीं जाने देते ?”

मारने और बचानेवाले

नगर !” दुर्वाहन ने चीकर कहा— नहीं-नहीं राजकुमार !
 से कभी नगर की बातें न करना ।”

“क्यों महाराज ?”

“इसके बिना भी अधिराज की आज्ञा नहीं है ।
 प्रजापति ने आर्जुन से कहा— “क्यों राजकुमार तुम चुप क्यों हो ?”

आर्जुन बोला— “बानें मुर रहा हूँ ।”
 दुर्वाहन ने कहा— “तो क्या अधिराज राज्यों के भारी शासक
 को अपनी प्रजा से परमिता ही रहने देना चाहते हैं ?”

“कुछ समय तक । कुछ देवी प्रहों के प्रभाव के प्रतिफल तक ।
 तब पुत्रराज वधायोज हा जायेंगे, समस्त वह जायगी और चाहे
 नहीं बिचर मुझे ।” महाराज ने कहा ।

दुर्वाहन की समझ में न आई बात । वह मन-ही-मन विचारने
 लगा, प्रमोदा पुत्रराज मिला है कथितवन्तु की प्रजा को । अपने
 आर्जुन का हाथ पकड़ना कहा ‘बड़ा हम भी ला चले
 उपवन में ।

महाराज ने फिर उस मिश्रार्थ के साथ अतिरिक्त बातें न करने
 का ।

प्रजापति ने कहा— “क्यों तुम वल-वान के नियम भी नहीं धार
 र आज्ञा न भूलना ।”

आर्जुन के साथ मीरियों का अवराहण करने हुए दुर्वाहन ने
 कहा— ‘माताजी के मन्त्र से दीक्षा भी इसी से मैं पूर्ण हो गया
 था ।

‘आज तो स्वर्ग्य होगी ?”

“हाँ ।”

दोना उपवन में चले गए ।

महाराज ने कहा— “मलिन्य का विचार है या क्या, पुत्रराज की

कुछ समझ में नहीं आता। बहुत बड़ गीत सुनकर ही वह उत्तर देता है।

“गाता कैय है ?”

“कोई भी नहीं। मैंने बहुत धपपी तरह गाँव की है।

‘अर जिस सरसता से सुनकर हम गीत का वर्णन करते हैं, हममें संभाव नहीं होता। आकाश-मार्ग से कदापि कोई देव-बाबा’

गाती हों।”

“जो गाती तो क्या समी नहीं सुनते ?”

“हमारे कानों की लकड़-कण्टि इतनी विकसित हो गयी है।”

“धपपी कल्पना में ही सुनते हैं वह। गणेश-कुमारियों के बिदे मैंने पूछ देखा था, फिर धपपी तक बोलकर नहीं आया। उनका गीत सुनकर विरवास हो दे, सुनकर का मन बहक जायगा।”

एक दिन सुनकर राजकुमार नंद के साथ अपने उपवन में गिरार का रहे थे। नंद गंभीर प्रकृति का था मित्रार्थ के विचार उपमे बहुत मिलते-जुलते थे।

वे दोनों चींटियों की पंक्ति का निरीक्षण कर रहे थे जो अपने विचार में धन के कण काफ़र जमा कर रही थीं।

मित्रार्थ ने कहा—“मार्द नंद, इनकी कल्पना, किर्न अम धीर संग्रह को देखकर अस्मित रह जाता पड़ता है।”

“वे बुराहीं और संकल मित्र हैं। मैंने सुना है बहुतों के परिवर्तनों को वे उससे ठीक रहते जान लेती हैं, और उनके अनुसार धपपी रक्षा का प्रबंध कर लेती हैं।” नंद ने कहा।

“मैं समझता हूँ, यदि वे आकर मैं मनुष्य के बराबर होती तो कदापि उन पर राज्य करती।” मित्रार्थ ने कहा।

नंद ने हँसते हुए फिर कुछ आश्चर्य के दामे चींटियों के मार्ग में रखे।

“जो इनके ऊपर से चला जाता है, और वे कल-सहस्रों की

मारने और बचानेवाले

संख्या में पत-विपत होकर मर जाती हैं। वे बूँ भी नहीं कर सकतीं, इतने पुत्र इनसे प्राप्त हैं। मनुष्य अपने अधिमान में जंवा होकर जवा जाता है। उसे यह ज्ञात भी नहीं होता, वह शत-सहस्रों शत्रों के कहर बनना मारा बनाकर गया है। नंद! क्या मनुष्यों को कोई इसी प्रकार कुचक्र नहीं बचा जाता? क्या उसके शत्रु नहीं होगा? क्या उसके शत्रु का ये बीडियाँ पत-विपत नहीं करती?"

नंद मात-विचार में पड़ गया।

"तुम भी मेरी ही उदासी में पड़ गए। ये बिता के विषय हैं नंद! नहीं इन्ना तुमने कभी मनुष्य का शत्रु?"

"नहीं।"

इसी समय आकाश-मार्ग से कोई बलु उनके पुत्र की तरफ गिरी। दोनों हीचकर वहीं रुकिए।

बलु गक हँस पा। अपराध होकर वंश प्रकट हो रहा था।

"क्या हा गया इसे? उड़ते-उड़ते क्यों गिर पड़ा?" नंद ने कहा।

हमद जंग में तीर बिछा हुआ है। किसी ने शर-संज्ञा किया इस पर।" सिद्धार्थ ने उस अपनी गोद में उठा लिया। "किसी का क्या किया होगा इसने?"

"पुत्रराज! बलु मर्कट का जाँघो।"

"नहीं नंद, ऐसा स्वार्थ पर विचार मत में बाधा प्रशंसनीय है। हम इसकी रक्षा करेंगे। सिद्धार्थ ने हंस की पीठ पर कोमल हाथ रखकर उसे चुपकारा। "बीरज पर है निर्दोष पत्नी! मैं तेरी पीड़ा पूर करूँगा।"

उप हंस को लेकर दोनों मरोहर के किनारे गए। वही मातृका की धीर हलक हाथों से उन्होंने तीर तीचकर बाहर निकाला। सिद्धार्थ ने अपना उच्छीष प्रकट कर उसका पत घोषा।

नंद ने तीर को दृष्ट कर कहा—"यह कुमार देवदत्त का तीर है। उन्होंने ही इसे मारकर मिलाया है।"

सिंहार्य अपनी दाढ़ी से उस हाथ को जमाए हुए घूमने लगे उपवन में।
 देवदत्त चौंका हुआ था पहुँचा। सिंहार्य के पास हंस को
 देखकर बोला—“मैं सारा उपवन खोज जाया। वह मेरा आखेट
 है।” भूमि पर वह हुए तीर पर उमड़ी रहि गई। उसे उमा
 सिवा उसने—“वह मेरा ही तीर है इसी से किन्नर सिवा मिले।”

सिंहार्य ने दोनों हाथों से उसे अपने आश्रित्य में ले
 लिया—“बुरा करो राजकुमार! इस वही पर बुरा करो। वह
 किसी का पुत्र नहीं किगाइया। यद्यपि हमकी बाकी कुछ प्रभु
 न कर सकी यद्यपि मैंने इसकी पीड़ा को जान लिया।
 “हम पर मेरा अधिकार है पुत्रराज।”

“हम पर बुरा का अधिकार है राजकुमार! तुम्हारे भग में यदि कोई
 तीर तुमा ने तो किसी पीड़ा होगी। मैंने अभी इसके शरीर से
 तीर निकाला है। तुम्हारी बाकी मुझपर वह अभ्यास प्राची अपने सिर
 को मेरे आश्रित्य में बिठा रहा है। नहीं राजकुमार! मैं इसे तुम्हें
 नहीं व सन्ध्या।” सिंहार्य ने अत्यंत सीम्य भाव से कहा।
 “तुम्हें बुरा पड़ेगा। फर्कत होकर देवदत्त बाबा।

“कदापि नहीं।” बहुत अवरोध-पूर्ण सिंहार्य ने कहा।
 “तुम अपिब्रह्म के भावी अभिपति हो। अपना पचेरा भाई न

समकाल तुम मुझे केवल एक आचार्य बना समझो, तो भी प्रजा
 की कोई वस्तु इस प्रकार दृष्ट-पूर्ण से लेना कदापि वांछनीय नहीं।”

“इसक कबसे मैं मेरा सुख, मेरे आश्रित्य को तुम्हें
 सौंपकर दो, माँग जा। मैं तुम्हें प्रसन्न मन से उपहार में दे दूँगा।
 वह ईश, नदी राजकुमार इसे न दूँगा तुम्हें।”

देवदत्त ने धीमे धीमे कहा—“कहा मर है तुम्हें अपने सुख
 और आश्रित्य का। देवदत्त तुम्हारे द्वार पर भिखारी है क्या?
 व्याप से जो वस्तु मेरी अभिष्ट है, वसे ही चाहता हूँ मैं।”

“पर मैंने भी तो यह दया के मोह से किया है। इस वजह से जो जो दूर से जाओ राजकुमार! यह बीस-पचास-साठ ईंस नई देख-देखकर डर रहा है। मैं विनय करता हूँ तुम्हारी। मैं हूँ तुम्हारे डार का भिखारी। तुम दो मुझे हमक माथों की भिखा।” सिद्धार्थ धुम्के देकर देवदत्त के सामने विनय हो गया। ईंस बल्य होकर उम्की गोद में ब्रिय गया। सिद्धार्थ ने ईंस पर अपना सिर रक्क दिया, और एक हाथ से देवदत्त का हाथ पकड़कर कहा—“दया करो।”

‘सुबरात्र! तुम तो हो कबल और डरलोक। वह मेरा पहका आने-दे है। मेरे वजुय-बाय का पहका कपल इस में भुम भरकर स्थति के बिने रचित रक्कूँता।”

“कया वजुय-बाय इसीकिये जायक कि हूँ तुमने कि इस प्रकार से शीत वृत्ति के जीव नह कर दिण कार्ये।”

‘कश्चित की गोमा है शय।”

“हे, कय इसका उपयोग रक्क के बिने है।”

देवदत्त कचेत्रित हो कहा—“तुम यदि रीक रीमि छ व होतो तो मैं बल-पूर्णक हूँ कीन के बाईगा सुबरात्र, तुम्हारे हाथ से।”

“यह मेरी शत्रक करया का पहका पात्र कुमी है राजकुमार! मैं इसे फिर अपने गोम्य बनाकर आकमल-मार्ग में बोध हूँगा।”

“मैं फिर तुमने कयता हूँ सुबरात्र! हड रीक नहीं है। इससे हमारे बीच में बैर बड जायगा। मैं फिर कमी नहीं तुमने लेकने के क्रिये नहीं पाईगा।” देवदत्त ईंस को लीकने लगा।

वह और सिद्धार्थ होतो मे मित्रकर उस कूनकर्य नहीं होने दिया। सिद्धार्थ ईंस का लेकर राजमहल की ओर जाने लगा। देवदत्त ने अपना हाथ पकड़कर उसे रोक दिया—“तुम कसे ही न मानोते। कया नहीं हमारा न्याय होगा।”

जगता नहीं है। हम दोनों अब करिब दुष्टि के हैं। अपने जीव जगत् का संसार उलट गया है हमारे हृदयों में। इस जगत् के स्थाव में शास्त्र-कंठ के हम दोनों राजकुमारों के मावी जीवन की वृत्ता का द्वेष की कद बढ़ेगी।” देवदत्त ने कहा।

“तुमने दूसरी हीनार में बुधराज का मार्ग जगृक कर दिया। मैं जानता हूँ, तुमने ही मरिचों के राखाका के वाद्यन से कठिण-च्युत किया। मैं जमा से जगृक हूँ, क्या राजकुमार देवदत्त इसमें अपराधी नहीं है?” महाराज ने सभा से पूछा।

“करासि नहीं। मैं सभा से मार्गवा कर्हेगा, यह सिद्ध होने से पहले मेरी बात सुने।” देवदत्त ने कहा।

सारी सभा स्तब्ध हो गयी थी।

देवदत्त बोला—“भैयागार मैं इस जगत् के कर स्थाव हो, इसमें बुधराज की भी हतकी ही उलट हुआ थी। उनके पूछ दिया था।”

महाराज ने पूछा—“क्यों बुधराज?”

“हाँ महाराज!” बड़े कम्पन-सिद्ध रूपों से सिद्धार्थ अब इस की बीड पर हाथ कर रहे थे।

महाराज इस पर—“क्या जगता है?”

“बह ईस मेरा है।” देवदत्त बोला।

“अहीं महाराज, मेरा है।” सिद्धार्थ ने कहा।

महाराज छत्रोदय बड़े भावपूर्ण में बतलाए—“बुधराज। आज सबसे पहले मन्त्रवाक्य राज्य तुम्हारे मुख से सुन रहा हूँ। तुमने कभी किसी वस्तु के द्विजे नहीं कहा था कि वह मेरी है। आज तुम्हें इस ईस ने साक्षिण किया है, जिस का राजकुमार देवदत्त की छवि नहीं है। निश्चय विचार गहरा है। राजकुमार देवदत्त! वह तुम्हारा क्योंकर है?”

“बाब देखी है, वह ईस साक्ष्य-मार्ग से उलट आ रहा था।

मैंने इसे ठीर मारा, यह बिज्र होकर फिर वहाँ नुबराज के दरबार में ।
इसी व यह हुक्म नहीं हो सकता । बास्तव में यह मेरे बाब के
वर्तित मेरा खजाना है ।" देवदत्त ने कहा ।

"तुम्हें क्या कहना है नुबराज !" महाराज ने पूछा ।

"मेरे दरबार में मिरा, हुज्रिये में नहीं स्थापित करना इस पर
अपने अधिकार ।" नुबराज ने कहा ।

"हां ?"

"मैंने इसका ठीर निकालकर इसका बाब का बाबा और इसकी
बीजा का हस्त किया । मैंने इसे फिर आकाश में अपने धोले
बनाया, हुज्रिये यह मेरा है ।" सिद्धार्थ ने शक्ति-पूर्ण कहा ।

"आकाश में किसी का रास्ते नहीं बड़ी मैंने इस बीजा का
मारा है । यह मेरा पहला कारखाना है । यदि यह तुम्हें न
मिचता, तो और सम्भव होगा । प्रायः एक जतिव तुम्हें को
हवालाह कर देंगे कर्म-कर के बिचे ।"

एक सभासद बोला—"जब यह बीजा राजकुमार देवदत्त के
ठीर से आहत हुआ है, अभी तो नुबराज के दरबार में मिरा ।
भावतः यह राजकुमार देवदत्त को ही मिचाना चाहिए ।"

अधिकृत सभासद बोले—"हां, राजकुमार देवदत्त को ही
मिचाना चाहिए यह हमें ।"

महाराज ने कहा—"नुबराज ! दे दा यह हमें राजकुमार देव-
दत्त को ही । संभाषण इसी पर में है ।"

सिद्धार्थ ने और भी अधिकार में भर दिया उस बीजा का—"नहीं ।"

देवदत्त बोला—"संभाषण की जरूरत है । हमारे मित्र न्याय
की जरूरत है ।" यह सिद्धार्थ से हमें से लेने के लिए कहा ।

सिद्धार्थ फिर बोला—"नहीं, बर्रा । मुझ अभी और कुछ
कहना है ।"

महाराज शूरोदन ने कहा—“बुधराज ! तुम ऐसे दुष्ठीक कभी नहीं हुए थे। क्या इसी का अभाव हो गया ? मैं मानसरोवर से तुम्हारे बिने अनेक इसी को मँगा दूँगा। हे हो बुधराज !”

“नहीं कहाँ नहीं !” परस्पर की कच में से एक बिना हुआ बूढ़ समास पूँछा।

सारी समा चकित हो गई।

समा से भी अधिक चकित हो उठा बुधराज—“क्यों हो तुम ? कल्या के साहायक ! तुम क्यों से बोझ रहे हो ? बिनाई क्यों नहीं देते ? राजकुमार देवदत्त ने मारा है इसे मित्रदिह पर मैंने इसे बचाया है। क्या मानने से बचाया कठिन नहीं है ? क्या मानने से बचाया बेट नहीं है ?”

फिर उसी कच से शब्द जाए—“बचाया ही बेट है। राजकुमार देवदत्त का अधिकार इस ईंस पर बनी होता यदि वह अपने वीर से शत्रु को प्राप्त हो जाता। क्योंकि वह भी उमर है, हमजिसे शीघ्रि करमेवाले का ही है।”

सिद्धार्थ बोझ उठा—“कल्या की कच हो। क्यों हो तुम ? मैं तुम्हारे दर्शन करूँगा।” वह उस कच के बंदूहार की ओर बढ़ने लगा।

महाराज शूरोदन ने कहा—“अरे बुधराज ! उबर वहीं। इस का न्याय हो जाने वा।” महाराज ने समा को संबोधित करते हुए कहा—“मैं समा की हप्ता कायदा चाहता हूँ।”

एक समास ने कहा—“मित्रदिह मार जाने पर ही वह इस राजकुमार देवदत्त का जाबोड करवाता।”

दूसरा बोझा—“अपरपनेव मार अनेक सकता है, क्या कोई बिराडा ही सकता है। इसजिसे मारनेवाले से बचनेवाला क्या है। इस ईंस पर उसी का अधिकार हो।”

सारी समा बोझ बढ़ी—“कल्या बिराडीबिरी हो। वह इस

सारे घोर बचानेवाले

पुबराज के ही पास रहने दिया जग। उन्होंने इसे अपनी दवा से माँह दिया है।"

"अम्बा, घोर अम्बा बचपान घोर बचपान।" ये परब्रह्म देवदत्त बोला।

"यदि यह वही बोक सक्रान, तो सारी समा को चक्रा-चक्रा जग्यदत्त दवा वह मेरी बाती में निर्मल डाँक देन रहा है। देवा, जान पड़ता है, जैसे सब कुछ समझ रहा है।" मिहार्प ने कहा।

देवदत्त फिर रोप में भरकर बोला— जाप लोग ऐसे न्याय से मेरे घोर पुबराज के बीच में बड़े भारी विद्रोह का बीज बो रहे हैं। वह समय बाप्य बड़ी सर्वस्व प्रतिहिंसा में बरक जायगा। महाराज ने कहा— "राजकुमार। सारी समा क एकद्वार न्याय को अम्बाव नहीं कहा जायगा। मैं तुम्हारे बिले भी बाँटे जिनके कहा, कतने ईश मैगा हूँगा।"

"बधा करना है मुझे घोर हमों से। बरा में मूला है उनका। जात्र ही इस समा में मेरे निता उपस्थित न हुए। बट वह अम्बाव न होने दले। पुबराज।" देवदत्त ने कहा।

"ही माई।" मिहार्प ने कहा।

"माई। नहीं। हमारे सारे सर्वेस घोर मिश्रण दिख होती है वही बर। मैं जब तुम्हारे राजमन्त्र में भी न जाऊँगा घोर प्रयत्न करूँगा कि शास्त्रों के राज में भी स्थान न रहे मेरे बिले।" देवदत्त ने मारा कहा।

"नहीं, राजकुमार।" मिहार्प ने उमका हाव पक्या।

देवदत्त ने बाप्य भरक दिया— "हटा देन दिया तुम्हें, घोर संभागाव के न्याय कर।

"दे हो मिहार्प।" महाराज ने कहा।

“वहीं चाहिये मुझ कुछ।” देवदत्त ने सारी सभा को ओंख और चूबा से देखा। अपने दाँत पीसकर मृत्ति पर पैर रखे, और एक बिचा।

एक सभामन्त्र बोलता—“स्वाम्य से बन्दी-प्रतिबन्दी दोषो ही संतुष्ट बहुत कम होते हैं। संवापार का स्वाग ही अहंत्व है। वह किसी की प्रमत्तता से उत्साहित नहीं होता। न उसे किसी के अप्रतीक्ष का ही मर है।”

महाराज ने एक प्रहरी को बुलाकर कहा—“प्रहरी, कुचराज को सीधे राजमन्त्र में बुलाओ।”

एक सिद्धारथ बोला—“महाराज! मैं उस महाकुमार के दर्शन करना चाहता हूँ, जिन्होंने मेरी और इस ईश को सहायता की।”

“वहीं राजकुमार, यह समय नहीं, फिर। इत डीक नहीं होता। आपको राजमन्त्र को फिर देखा लगता।” महाराज ने कहा।

“बन्दी, सिद्धारथ ने ईश को मरने लगाकर कहा—“बन्दी, इस सब जगत् में कल्या की बात भी बदली है, इस जगत् के बीच में दवा भी बिचरती है। बन्दी, तुम अब लम्बे लम्बे। मैं तुम्हें कुछ आकाश में जोष दूँगा कि तुम अपने मित्रों के साथियों के फिर मिल सका। मेरे इश्वर के कल्या की जगत् में दानिनी कहा जाहती है। मैं समस्त विरह-संसार को परिष्कारित कर दूँगा, और तुम वह पहले बीच हो है ईश! जो उसमें प्रथम स्वयं हुआ है।” सिद्धारथ ने प्रहरी से कहा—“बन्दी।”

दोनों चले गए।

सारी सभा एक जगत् में देखती रही।

५ मृत्यु की शृंखला

सुबह-बैठ से तीर-कुमारियाँ सा पुरानी उस दिन ।
महाराज अंतपुर में से प्रजापती के कच में । उन्हें बड़ी
उपस्थित करने की आज्ञा दी उन्होंने । दामी चली गई । महाराज
ने कहा—“पुबराज नहीं है ? बड़ी देर से भी देखा नहीं
जाय उन्हें ।”

“उपस्थित हैं, बंदक के साथ ।” प्रजापती ने उत्तर दिया ।
“राजकुमार देवदत्त बड़ा ही है, नहीं जाना उस दिन से
राजमहल में ।”

“महाराज ने वह प्रजापति, जो उनकी संगत हुए ।
पुबराज की अस्थिति को वह और भी अधिक बड़ा देते थे ।”
“नंद और बंदक, इन दोनों से पुबराज की प्रकृति बहुत कुछ
मिलती है ।”

“नंद बड़ा था, लक्ष्मिणा के मैदान में भी वह सब बहुत
कम जानते हैं । पुबराज के बोलने पर भी वह उनसे नहीं बोलते ।
जिनकी संसारिकता पाकर वह बर गई है राजकुमार देवदत्त में अभी
से ।” प्रजापती ने कहा ।

महाराज बोले—“और मैंने सुना था, वह राजपूत आनेवाला
है ।”

“किमिति ?”

“उमके मानुष नहीं है व । उन्होंने के पास रहेगा । वहीं निवास
दीक्षा प्राप्त करेगा ।”

“क्या राजकुमार देवदत्त के पिताजी ने कहा ?”

“वहीं, और किसी ने कहा।”

“उस हंस की चरवा के परचाए राजकुमार देवदत्त के मिठा के जैसे भाव हैं आपके प्रति।” महाराणी ने पूछा—“बहुत दिनों से वह कीटूहल मन में क्या है। वह ही नहीं सही जायते जब तक।”

महाराज हँसने लगे—“अच्छ में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। सर बाबा अचरब नहीं हो नहीं कर। मैं इतक से चाहता था, हंस देवदत्त को ही चे दिखा जाता। संवामार के एकमस को मैं कैसे कहक देता। जैसा भी विचार करे वह। मैं क्या कहूँ। मैं कोई अचरब नहीं।

अध्यात्म ब्रह्म-मोक्षी, कंठ-वज्र की चंकार सुनाई दी। मानो कुर्बों के ऊपर चारों चंकिज अगती हुई नील कुमारी की महाराज के समीप आई।

बाती ने विस्मय-पूर्ण कहा—“महाराज नील कुमारी की आ गई हैं आपके समीप।”

“हम, जगन्नाथ और परित्यक्त में अनुभवी। जब इनके चरों पर नील प्रसन्न होते होंगे, तो कौन विमोहित न हो जाया होगा हमसे।” महाराणी ने अपने मन में कहा।

“हम नील नील कुमारी हैं महाराज। आपके आज्ञाबुद्धि कायकी सेवा में अर्पित हुई हैं। हम राजदरिद्र को प्रदाम करती हैं।” नील कुमारी की भी जो लज्जा नहीं थी, उसने कहा।

उनके अस्त्र-चंकिज वंगराग से समस्त अंतर्गत सुवासित हो गया। उस नील कुमारी का वह परम अक्षित निद्र-चंद्र चरों में सुख बरसता रहा।

अध्यात्म फिर मन में सोचने लगी—“जिन्की नाबी इतनी

शत्रु की शू कला

महाराज ने प्रसन्न होकर उनका स्वागत किया—“तुम्हारे बदर्य से हमारा राज्यमवल पल्ल हुआ। तुम्हारी प्रीति करते-करते अनेक युग बीत गए हैं।”

फिर उसी ने उत्तर दिया—“हाँ महाराज हम क्या चाहती हैं। प्रकृति ने बाधा रख दी। हमने काम-बुद्धि मापकी भाषा की कल्पना नहीं की। जिस का बहुत बड़ा मित्र-खंड हट गया हमारे मार्ग में। उसके गड़ने पर ही हम सब अपना पत्र निकाल सके हममें। हम काम-मापिनी हैं इसके बिना।”

“नहीं, वह कोई बात नहीं। देवी बाधा के आगे विजय दाना ही पक्का है। मार्ग में और कोई कष्ट तो नहीं हुए।”

“नहीं महाराज, हम मृत्यु करती हैं। हमारी चारों बापु व समान जल-भार हैं। कुछ-कुछ हममें गड़ते नहीं, मार्ग का जल उन्हें आपता नहीं।” उसी ने उत्तर दिया।

“तुम पीचो रहने हो।”

“हाँ महाराज।”

“सबसे बड़ी तुम्हीं हो।”

“महाराज का अनुमान गलत है। जोर हम सबमें सुनार भी मैं ही हूँ। वे और नीत में प्रवीण हैं पर कामचीन करने में वीर्य दुर्बल हैं।”

“तुम्हारा नाम क्या है।”

“मेरवी।”

“क्या तुम गीत-प्रवीण नहीं हो।”

“मैं नहीं जानती महाराज।” ईस बड़ी मेरवी।

दूसरी बोली—“सबसे अच्छा गाया जानती हैं।”

“तुम विवाह नहीं करती हो।” महाराज ने पूछा।

“नहीं महाराज। इसी से तो गीत-कुमारी कहलाती हैं।”

“क्यों ?”

“क्यों गीत-कुमारिका काज-विगत हुई ।

महाराज ने कहा—“मैरबी ! तुम मुझ क्यों हो ?”

“इसके महाराज, मैं उल्टा हूँ।” मैरबी ने उत्तर देती कर कहा ।

“तुम्हें किसकुमारी ही यह जाना क्यों अधिक है ?”

“किसकुमारी से विवाह करने को क्यों तैयार नहीं होता, इसी के हमें विवाह नहीं करती ।”

“मेरा भी नहीं करती किसी से ?” महाराज ने पूछा ।

महाराज ने महाराज की पीठ में जंगली गदाकर मुझ केर बिना ।

“तहीं महाराज, इसकी बात आप उन्हें, तो हम किसी से प्रेम नहीं करती । हाँ, प्रेम करता प्रिया सकती हैं ।” मैरबी ने कहा ।

“ऐसा ही मुझ का प्रेम तुम्हारे सर्वत्र में । ऐसा ही चाहिए भी था हमें । तुम्हारे रहने का प्रबंध क्यों किया जाय ?”

“तुम्हें के बीच में न रहूँगी हम महाराज !” मैरबी ने कहा ।

“कहीं अंतपुर के एक भवन में रहोगी ।” कहकर महाराज ने मन्नावती की ओर देखा ।

मन्नावती ने कहा—“हाँ-हाँ, वही प्रसन्नता से ।”

“और तुम्हारे भोजन का क्या होगा ?” महाराज ने फिर पूछा ।

“हम केवल फल खाती हैं, और क्या शाक का दूध पीती हैं ।” मैरबी बोली ।

“क्या फल क्यों नहीं खाती ?”

“कहीं महाराज ! उससे हमारी गीत-माधुरी बिह्वल हो जाती है । स्वर स्थान-भ्रष्ट हो जाते हैं ।” मैरबी ने कहा ।

“क्या फल हैं, सब फल और दूध की कमी नहीं है हमारे । क्यों सबसे पहले तुम्हारे भोजन का ही प्रबंध किया जाय ।” मन्नावती ने

पुत्र की गृहस्था

‘नहीं महाराजीजी, केवल एक ही बार दिन में जाती है हम वर भी बहुत सूखे। आज का कुसी है, अब न काबेंगी।’ मेरवी ने कहा।

‘तभी तुम सब-की-सब बाँचों बहनें इतनी दुबली-पतली हो।’ महाराजी ने कहा।

‘तभी बहनें किङ्किडाकर हैं परी मागो बर्मत की बाँच मरुतम कंबली कोकिडाएँ नूक उठी।’

‘तुम भी कुछ बोको न ?’ प्रजापती ने रोच ‘बार गीत-कुमारियों से कहा—‘वा तुम गीत ही सुनाने के बिये आई हो ? मैं अभी तुमसे गीत का आग्रह करती। पर मैं अपने कीदरह को दबा दूँगी। मौज्ज नहीं करता है। तुम्हारे सुनों पर पात्रा के अस की दावा है और कुंजित कुतकों में पूरि के बंध।’

सबसे बड़ी बाकी—‘नहीं महाराजीजी आपका अस हा गया है। हमने अचिरावती की चारा में स्वाग किया है। हमने स्वयं होकर आपके दरान उचित ममये।’

‘मैं ममकनी थी, तुम बड़ी सीम्या हो।’ कहकर महाराजी ने उनके कंधे पर कूकती हुई बाकों की छत हाथ में लेकर कहा—‘बह प्रकाश की रेखा कमक रही थी तुम्हारे बाकों में। क्या नाम है तुम्हारा ?’

‘मेरा नाम सुस्थि है।’ सबसे बड़ी ने कहा।

‘तुम्हारे माप का सामान ?’ महाराज ने पूछा।

‘महरी के नाम बोव आई हैं। बच बिबीया एक दोष में कुछ बच, एक बीया और एक करताह।’

‘तुम्हारा का सामान ? अर्थात् ?’ प्रजापती ने पूछा।

उत्तर सुस्थि ने दिया—‘हम अर्थात् को भार और न गार

“बह नहीं पवित्र बरोहर है मेरे पास। हमारा समस्त जीवन का सुख बत्ती की प्रसन्नता पर निर्भर है।” प्रजावती ने कहा।
 विद्यासा सेकर औरबी ने महाराज को देखा।
 “हाँ औरबी, महाराज तो सच ही कह रही हैं।” छत्रोदय ने कहा।

“बरोहर ? वह नहीं समझी मैं।” औरबी ने पूछा।
 “हाँ फिर तुम्हारे साथ मैत्री बन जाने पर सँव बरसम्झी।”

“शामकुमार क्या कामों में उदास रहते हैं ?” औरबी ने पूछा।
 “समय के अविकल्प में। कभी वह उदासी बहुत बन जाती है वह वह किसी को अपने सामने नहीं जाने देते।”

“उन्हें कोई रोग तो नहीं है ?”

“रोग ? रोग का क्या काम ? पुंर स्वास्थ और व्यवस्था की देखभाल परम महोदर।” महाराज ने कहा।

“और उन्हें समाज किसी वस्तु का नहीं ?” औरबी ने पूछा।
 “नहीं, किसी वस्तु का समाज नहीं, इच्छा ही नहीं है उनकी।”

प्रजावती बोली।
 “यही विवाह नहीं हुआ है उनका ?”

“नहीं।”

“विवाह-योग्य अवस्था हा नहीं होती ?”

प्रजावती ने कहा—“हाँ।”

सब-की-सब गीत-कुमारिकाँ किञ्चिद्विचित्र हैं नहीं।
 कमलिन होकर प्रजावती ने पूछा—“परों, क्या बात है ?”

“उन्हें नहीं महाराज। हमें सुखराज की पिया का काया हाव हो गया। व्यवस्था, कृपा करेंगे, तो हम उनका अब कहना देंगे। हम बीच-बिच विचरों की बाजारें हैं। पहले तो सभी सुखराज के मन

को अभिहित कर लेंगी, नहीं तो एक अक्षर ही उन्हें बरत में कर लेगी।" मैरबी बोली।

महाराजी ने कहा—“बूढ़ मनु, तुम्हें का मनुमद करने बनी हैं। ऐसा कोई भी पुण्य नहीं है हमारे दरबार में।”

“कस्तूरी।”

“वही।”

मैरबी को कुछ पार पड़ा। उसने हँसकर कहा—“बढ़ मेरी बीबी बहन होयी। इसके घोंग से सुर्गिष निकलती है इनी से इसका नाम सुरभि है।”

महाराजी उसके स्मरण गई, उसका मस्तक हँसकर बोली—

“सुमनुर सुर्गिष द्रव्य है।”

“नहीं महाराजी।” सुरभि ने कहा।

“अपका महाराज, हमें आज्ञा दीजिए। हम राजकुमार को देखने के लिये आया है। हम जानेंगी।” मैरबी ने कहा।

“अपनी बसुएँ तो बयास्याव रखवा दो।”

“हम भी तो चलेंगे कि तुम्हें सुबरात्र का प्रथम दर्शन संकोच-विहीन हो।” महाराज ने कहा।

“वही, हम स्वयं ही बनने मिलेंगी। हम संकोच नहीं जानती।” मैरबी बोली—“क्यों।”

पौर्णमासी के दोड़ गई। मार्ग में एक ने बीबा बहा बी। एक ने करताब। उपवन में जाकर उन्होंने दूर से सुबरात्र को देख लिया। वे सब एक समान कुँब के भीतर ब्रिज गई। मिश्राप्य करने चिरन्तिय बासुन की बाबा में बैठे प। माय से उनका माई नंद पीर उनका सारपी तथा सत्ता ब्रह्म भी थे। ब्रह्म कर रहा था—“किर जाय मैर-बैसी से क्यों बाँटें क्यों कब जाय मिहामन पर विराजमान हो जानेंगी।”

‘क्यों ब्रह्म !’ पुनराज ने ब्रह्म की पीठ पर हाथ रखकर पूछा ।

‘क्योंकि आप महाराज हो जायेंगे । मंत्री और नायकमन्त्र ही बेरे रहेंगे आपको ।’ ब्रह्म ने कहा ।

‘क्यों, महाराज तो सिपाजी हैं न ?’ सिद्धार्थ ने पूछा ।

‘बह तुम्हें सीप होंगे राज्य ।’

‘और आप ?’

‘भाराचामी चले जायेंगे । कइ रहेंगे वे अभी उल्लूक ।’

सिद्धार्थ ने पूछा—‘क्यों राजकुमार नंद ?’

‘हाँ पुनराज, मैं भी सुना था ।’ नंद ने कहा ।

‘नहीं ब्रह्म, मुझे नहीं चाहिये राज्य । मैं देखे ही चाहता हूँ । जब रामे की इच्छा होती है, रो होता हूँ, और जब रामे को मग करना है, तब पाता हूँ ।’ एकएक भाव बदलकर सिद्धार्थ ने कहा—‘फिर भीत की बाढ़ आ गई मुझे ?’

‘केवल एक कल्पना पुनराज ।’ नंद ने कहा ।

‘कल्पना का भी तो मूल है नंद ?’ सिद्धार्थ ने उठकर कहा — ‘अनेक बार मैं बैठी कल्पना करता हूँ, ठीक वैसा ही बारम्बार कल्प में पाता हूँ—कल्पना जैसे सत्य का हाथ पकड़ लेती है । कई बार मैं स्वप्न में बैठा देखा, कल्प में बैठा ही पाया । अधिक नहीं होता ऐसा । केवल बीच-बीच में कभी । क्यों हाता है ऐसा नंद ?’

‘मैं नहीं कह सकता पुनराज ।’

‘तुम बता सकते हो ब्रह्म ?’

‘नहीं मैं भी नहीं बता सकता ।’

‘बह भीतर का जगत् बाहर के संसार से छटा हुआ है, हमें संदेह नहीं । पर कैसे, कहीं पर शू काटा है पता नहीं चल सकता ।’

पुनराज ने कहा ।

“राजकुमार ! चाब संज्या-समय तय-विहार क बिजे चहेंगे न ?”
बंदूक ने पूछा ।

“बीर-भिरकर फिर वहीं पर या जाना भी कोई विहार हुआ ?”

“धूमरी हीबार तक तो सायकन मार्ग सुख गया है न ?” बंदूक ने कहा ।

“तीसरी हीबार तक भी हा साया या में जब दिन हम के
न्याय क सिधे बह गया या । महाराज ने फिर बंदूक कर दिया वह
मेरे सिधे बंदूक ! इन पाँचों हीबारों से मार्ग निकालकर मुझे
बपर दिया जाओ न ?” खजानक मिहार्थ पुरकार होकर कुछ
सुनने लगा—“तुम नहीं सुन रहे हा नंद ?”

‘यह पायबपद होहा सुबराज ! कहीं भी कुछ नहीं सुनाई
द रहा है ।’ बंदूक ने कहा ।

“कदाचित् सपु-आर से कुछ कोई मजिमा का रही है तुमगुलाती
हुई ?” बंदूक ने कहा ।

“तुम शायो भा नहीं समझ सकत मेरी बेइना । बंदूक ! पंदरक !
मैं चकका ही वहीं पर कुछ दूर बैठना चाहता हूँ, तुम न
जायना ।”

हान्त उदरन चले गए । मिहार्थ जानें बंदूक कर बैठ गया वहीं पर ।
कुत्र में किसी हुई बाकियों का हटा-हटाकर चक रही थीं
पाँचों गीत-कुमारियाँ भिकार्य, बंदूक और नंद को ।

मिरबी बाकी—“प्रधान गई हो न तुम सब सुबराज का ?”

“हाँ क्यों नहीं ? हा व्यक्ति मुरार बखों में सुपजित है । एक
साधारण बेरा मैं है वह सुबराज नहीं है । जब जाना में एक जिसके
प्रति आदर और विभव प्रकट कर रहा है बाक-बाक में वह आदर
का बाध ही सुबराज है ।” एक ने कहा ।

‘अनुमान दीक है तुम्हारा ।’ मिरबी बाकी ।

“पर वह उदाम नहीं जात हो रही है ?” मुरारि ने कहा ।

‘अदम्यनीमता के बच होते हैं । रात्र-दिव बोड़े उद्याम रहते होती ।’ सुसरी ने कहा ।

‘बड़ा दर्शनीय है राजकुमार ।’ सुरभि ने कहा ।

‘विवाह करोगी तु उनके साथ ?’ मैरबी ने कहा ।

किसीबा गई सुरभि ।

बस कुंदक और बड़ मिंदार्य के पास से चले गए, ता मैरबी ने कहा—‘तुको, अब मुकराऊ दर्शत में हैं । अब उनके पास चले ।’

‘सब साथ नहीं एक-एक कर ।’ बड़ ने प्रस्ताव किया ।

‘अब तो वह अदम्य और चित्त में फिर गए जान सकते हैं ।’ सुरभि ने कहा ।

‘पहले बीच जावगा ?’ मैरबी ने पूछा ।

‘मैं जाऊँगी ।’ सुरभि ने कहा ।

‘सबसे जोड़ी ।’

‘परंतु सबसे बलवान् । बीच बीच मध्य है रस का मनुष्यों में ?’ सुरभि ने ठहर दिया ।

‘जदि मुकराऊ ने अपेक्षा कर दी तुम्हारी, तो फिर ? हमारा सारा बल बीच ही जावगा । वह जाति का अपमान होगा फिर हम सुख दिखाने-बोझ न रहेंगी ।’ मैरबी ने कहा ।

कमखिनी तीसरी बहल की संज्ञा थी ।

एक ने कहा—‘कमखिनी तु जा ।’

‘नहीं ।’ कमखिनी बोली—‘जो सुरभि पर विजयी है, उस पर मेरा कुछ नहीं बल सकता ।’

‘भिर ?’

‘सुरभि, तुम जावो ।’ कमखिनी ने कहा ।

‘मैं वहीं से एक पर एक बल सकती हूँ ।’ सुरभि ने कहा ।

‘चित्रा ! तुम जावो ।’ मैरबी ने कहा ।

विद्या मैत्री से जारी बहान का नाम था ।

विद्या हँसी—“मैं जानें ? पर बुधराज जानें बंद किए हुए
पान में कुछ देना रहे हैं ।”

“कमलिनी का हाथ ले जाओ । बंद करने लगे से बुधराज का
नाम थाइ इगी कि तुम्हारा माहू बहाना था ।” सुमित्र ने कहा ।

“अच्छा, कोई भी न जानता । हम यहीं से बिपदर कोई गीत
गाते । हल्ले, बसका प्रभाव केता पड़ता है हम बुधराज पर ।
मैत्री ने निर्धार किया ।

गीत-कुमारियों ने गीत प्रारंभ किया—

दूर तक था, ईश्वर मानव कोकर व,
परो तुम्हें यह रिश्ता हुआ है निरव-मर वै ।
मीन बन पाकर गीत दिन बना,
एक चारागाह के पर कुछ था ।
जब जगत में एक ही एक निरव वै,
दूर तक था, एक मानव कोकर वै ।

संग ने प्रेमियाँ बीच ही । कुछ चारों में खर गये, पते पवन में
रिक्त हो गए, पत्नी शान्ताओं में धीरे धीरे चरती वा । निहार्य का
स्वप्न दूर गया ।

बद चरकर गया, जवन जानें जहान हुए-उप-इका—‘छि
वही गीत ! हम बार बिबुद्ध ही निरव । मेरे माता-पिता इसे मेरा
प्रम करते हैं । मेरे सखा-सहोदर इसे मेरा जम्मा बजाते हैं ।
कीन हा तुम ? कहीं से गाते हो ? किम उद्देश से गाते हा ?
‘मैं तुम्हारे इस स्वप्न से प्रीति करता हूँ । जब तुम्हारा गीत नहीं सुनाई
देता, तो धीरे भी निरव हा जाता हूँ ।”

बेबुद्ध रवाणी द्वारा कुमारियों ने गीत बंद कर दिया था । वे सभी
की धार से जानें जानें सिद्धार्थ का । जगते जगें सिद्धार्थ होकर

हजर-हजर हूँ बड़े हुए देखा । सब-की-सब सब-ही-सब मरण हो बहीं ।

“दिकाई क्यों नहीं देते तुम ? किस खोक से गा रहे हो ? मैं तुम्हें देखना चाहता हूँ । पहले दूर भिमी गहराई से तुम गाते थे । आज मैंने बहुत ही निम्न सुन । इसी से खण्ड मर हो उठे क्या गीत में ? फिर गाओ, तुमने क्यों मौन धारण कर लिया ?”

गीत-कुमारियों बिजल के दर्प में एक दूसरे का मुक देखकर मुनकराये कहीं ।

“देखो एक गीत के ही आका में रँज गए कुमार !” मेरवी बोली ।

“हीही ! फिर गावें न ? कैसी आकुलता से कुमार उस बीच में ही लंग दिए हुए गीत का मिरा खोज रहे हैं !” सुप्रधि ने कहा ।

“क्यों, नहीं कहना यदव गाई है तेरे मानस में बुधराज के खिसे ।” मेरवी ने कहा ।

“कहना कैसी ! गेलों से जबका मनोर बन करने के खिसे तो आई है हम वहाँ ।” सुप्रधि ने कहा ।

“एक माव ही समस्त गीत गा देने से राजकुमार की रम-मृष्टि हो जावगी, और हमारी बहीकन जाती रहेगी ।”

सिद्धार्थ फिर बोला—“फिर गाओ न ।”

“जैसे बहुत दिनों का परिचय है हमसे हमारे साथ, वह तो इस प्रकार हमें संभावित कर रहे हैं । हमसे पहले का सुना हमने ही हमारा गीत ?”

गीत-कुमारियों ने फिर गाया—

अप रणों का वहाँ कुतूहल बिजाय

कप-रस है राख-गेलों का बिजल ।

हे रही देखन मरी सुबाधर से

हूँ उड़ ना हूँ मावस गोरार से ।

मेरवी ने मंजित कर फिर चुप करा दिया सबको—“कस, हजमा ही ।”

यमु की गृहस्था

सिद्धार्थ ने कहा — समझ में आता । बहुत दिनों में हम वारा !
 बीट बज रहे इस मानस सरोवर में — क्या तुम्हारा अर्थ हम हमें है,
 जो मेरे पास आकर मुझे दया करना सिखा गया । वह तो बीट
 बजने की शक्ति या यही तो वह है उसे हम मुझ आकाश में उड़ा
 दिया था । हजर, उधर ही से सुनाई दे रही थी । आस मुझे दिखा का
 आस हुआ है । आस तुम्हारे स्वर्ग में उड़ रहे हैं । मैं हूँ
 ही सुँगा तुम्हें ।”

मेरवी ने कहा — “बुराब हजर ही आ रहे हैं अब हम दिख
 नहीं सकती । बच्चा, गाड़ी हुई गृह के बच्चे से उम्मीदें हैं ।
 सब-की-सब बाबती-गाती हुई कुछ के बाहर निष्कल आई थीर
 बन्दो सिद्धार्थ को चारों ओर से घेर लिया ।
 बुराब ने कहा — “आस हूँ द सका मैं तुम्हें ।

“हम आस ही तो आई है ।”
 “फिर वह बीज गाता था । बिजकुल तुम्हारे ही अनुस्य ।
 ‘हम नहीं जानती । हमें महाराज ने बुलावा है दूर देश से ।
 ‘तुम गीत-कुमारिणी हो ।’
 “हाँ ।”
 “यह वीर है मर हजर में ।”
 “कैसी राजकुमार !”

“वीर है, वह जानता है । क्यों है वह नहीं जानता ।”
 “हम आपकी वीर मित्र न सकेंगी, तो मुझा तो चरख ही
 होती ।” मेरवी ने कहा ।
 “बबो, तब सरोवर के निम्न हम जामुन के पेड़ के तले बबो ।”
 सब वहीं गए ।

सिद्धार्थ ने मेरवी से कहा — “तुम द — ये बड़ी हा !”

हाँ, मेरा नाम मेरवी है। मेरवी ने अपनी छोटी बहन को सिद्धार्थ के सम्मुख किया।

वह बोली—“मेरा नाम बिना है।”

“तुम सबसे अधिक दर्दपीन हो।”

बिना ने अपनी बहन को धागे दिया।

वह बोली—“मेरा नाम कमलिनी है मैं मेरवी की तीसरी बहन हूँ। उसने बीबी बहन को धागे का दिया।

सुरभि ने कहा—“मेरा नाम सुरभि है।”

सबसे छोटी ने कहा—“धीर पुराज, मेरा नाम सुखि है।”

‘तुम पाँचों बहनों के बीच मित्र-मित्र आकर रहें हैं। अपनी बात है, तुम्हारा स्वागत है। मेरा नाम सिद्धार्थ है। अपने ही भवन का बंदी एक राजकुमार हूँ मैं। इस साथ बीमारों से घिरे हुए पर्वत में। दो बीमारों में एक मित्र गया है मुझे। बीच बीमारों में है। तुम पाँचों बहनों मित्रकर उन्हें मुक्त कर दोगी, मेरे मित्रे।’

गोठ-कुमास्त्रियों की समझ में कुछ आया नहीं। वे चुप रहीं।

सिद्धार्थ की दृष्टि सरोवर के किनारे पर गई। एक मेंढक उबक-उबककर चित्तबिंदों को का रहा था।

सिद्धार्थ ने कहा—‘हैं। वह क्या वह मेंढक का गया उस छोटी सी चित्तबिंदी को।’

वह तो एक साधारण बात है राजकुमार! मेंढक का भोजन ही है वह। वह उसे खाए नहीं, तो फिर कैसे?’ बिना ने कहा।

‘पर मेरी दृष्टि आक ही गई इस पर। क्या कुछ धीर पत्नी-बास काकर नहीं भी सकता वह?’ पुराज ने पूछा।

कमलिनी बिना बोली—“अपे। सर्व।”

सब एक धीरे की हडकर साबधान हो गए। सर्व ने उस मेंढक को निगल दिया।

गीत और गीत-कुमारियों का चापल्ल सुनकर नंद, बंदक और कुछ दास-दासी भी वहाँ जा गए थे। एक सेवक ने साँप को मारने के लिये फयर उठाया। सिद्धार्थ ने उसे बाध कर दिया।

इसने मैं कुछ रपेव पकी आकाश-मारों से आया और उस सर्प को अपनी चौंच में उठाकर उड़ गया।

‘क्या देखा वह? नेहक का साँप ने भिन्न किया, और साँप को रपेव उठा ले गया। कैसी हिंसा सिरी हुई है, इस प्रकृति के शांत आचरण में बाध लगाए। वह के लिये यह पर और यह के लिये आकाश पर।’ सिद्धार्थ ने धीकों में आँसू मरकर कहा।

‘वह तो प्रकृति का राक्षस-दिन का केव है युवराज। धीरवी ने सोचवा देते हुए कहा।

‘पर मैंने आज ही देखा। एक का जीवन दूसरे के जीवन पर कहर डुपा है क्या?’ सिद्धार्थ ने पूछा।

‘हाँ,’ धीरवी ने कहा—‘जीव डुपा हो, भव और वास हुई तो क्या? यह एक शुद्धता है—’ वह सहम गई।

‘एक अदृष्ट पुरुष की श्रुति है क्या? जहाँ एक दृष्टि जाती है, उससे भी दूर! अनुमान की सीमा—उससे भी दूर! आह! कभी वीरता है कभी अज्ञाति है।’ सिद्धार्थ धूमि पर मस्तक चढ़कर बैठ गया।

‘मस्तक पर से हाथ हटाओ युवराज। इससे अज्ञाति और भी बढ़ जाएगी।’

‘अपना मैं उठ जाऊँगा। मेरे मरन का उल्लेखोमी?’ युवराज धीरवी का गार-अपेक्ष हाथ पकड़ने लगा।

धीरवी ने सिद्धार्थ को सहज ही दूर किया—‘हम गीत-कुमा-

रिपी है। हमारे धंग दरंग से दोनों में से किसी का भी बिना भविष्य नहीं हो सकता।" उसने हाथ बढ़ाकर पुनराज को उठा लिया। "क्या प्रश्न है तुम्हारा?"

"बह न कहा किसी है?"

मैरवी को लीपटते निमित्त की पाह का गढ़ भी। उसने बाक-बूझकर मृगु के नाम को बिना दिया था। उसने दूसरा शब्द सोचने में विफल नहीं लगाया—'बह दिन और रात की न कहा है।"

सिद्धार्थ ईसने जगा—'क्यों, उसे मृगु की न कहा करने में तुम्हें क्यों भय लग रहा है?"

मैरवी ने सिद्धार्थ का दूसरा हाथ भी पकड़ लिया। उसने अपनी बहनों का कुछ स्केच किया। वह ईसकर बोली—'बह स्वर और गीत की न कहा है पुनराज। इस स्वर को हर नहीं सकती, डक लेगी।

पुनराज ने स्थिर हाकर कहा—'डक को फिर। बाट में कब को धंधकार को। उसकी विस्तृति हो। मैंने तुम्हें सीप दिया अपना मय।"

गाव-कुमारियों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़कर घेर लिया सिद्धार्थ को।

मैरवी ने कहा—'पुनराज, वह है वह न कहा।"

सिद्धार्थ ने प्रसन्न होकर एक-एक के निकट जाकर कहा—'मैरवी, बिना, कमबिनी, मुरलि और मुल्लि। सात माहीरों के भीतर तुमने एक और एक बना दिया वह। गाओ, गाओ फिर वही गीत।"

गाव-कुमारियाँ पुनराज को घेरेकर बाजने-जाने लगीं।

राजमहल से दरवाजे की भीड़ छाग गई वहाँ। उनमें प्रमद
विश्व महाराज और महाराजी भी थीं।

६ प्रेम के पाठ

कुमारियों की वह उदात्त मनुकता गई तो नहीं, पर गीत-कुमारियों ने अपने राग में उसे बिपा दिया। जब उसे पिता बेसी, गीत-बाजाएँ अपने-अपने धाकदौड़ से सिन्धुर्ब का ध्यान बुर स्थान से हटकर दूसरी जगह स्थापित कर देती। नुबराज के मन का सांसारिकता में छटक दिया उन्होंने, इससे राजमन्य में वे बड़े आदर और सम्मान से देखी जाने लगीं।

नुबराज जिस गीत को मन में चुनते थे, वह उनके मन, मांगल्य और उपवास में सजीव हो उठ। पहले कुछ दिव तक वह कम भीतर के और बाहर के दीप में अंतर समझते रहे फिर जब वंशकुमारियों की भाषा में मूढ़ गढ़। वह ज्यादा रात के नीचे बच गई।

कुमारियों जब के काख से नहीं आई थी वहाँ। उनके देह में कोई सिखा नहीं पकता था। वे कभी बूझ-वर्णों को जोड़कर किसी बात से अलङ्कृत न होती थीं। वे लनों को चमकीले पत्थर प्यती थीं।

एक सज्जन की प्रियता से ही वे वहाँ आई थीं। राजा का बूढ़ मित्र था गंवर-देह में उसी ने उन्हें वहाँ भेजा था। इस मित्रवार्ध भाव से और भी उनका महत्व बढ़ गया। कभी-कभी महाराजा प्रजापती दासियों को पीछे जोड़कर उन गीत-कुमारियों की प्रमोदधर के निचे आने लड़ जाती थीं।

उसी जामुन के बूढ़ के नीचे, सरोवर के किनारे राख्खावा लुकी। मिथिअएँ पाँच और ज्ञान केरल एक।

विद्वान् ने कहा—“मैंने शास्त्रों का अध्ययन किया है।”

“इस तुम्हें एक नवीन शास्त्र पढ़ावेगी।” मेरवी ने कहा।

“कौन-सा ?”

“इस तुम्हें प्रेम सिखावेगी।”

“क्या हुआ प्रेम ? मैं प्रेम करता तो हूँ।

‘नहीं पुनराज ! यह इतना सरल नहीं है, जितना तुम समझते हो।’

“क्या हुआ प्रेम ?”

‘धीरे-धीरे ही तो सीखोये। एक ही क्षण में कोई नहीं सिखा सकता।’

‘सबसे पहले क्या करना होगा ?’ पुनराज ने पूछा।

“पहले राम की वृत्ति जागरित करनी होगी मन के भीतर।”

मेरवी ने कहा।

“राम क्या हुआ ?”

“आनन्द की भावना। हमक जिये तुम्हें मन की उदासी का विह्वल भाव करना होगा। कप पर निश्चना होगा।”

“तुम नहीं मुँह ही मेरवी ! कब का परिचय है तुमसे, नहीं जानता। जितने दिनों से तुम मुझे ब्रह्मण्य में बह गीत सुना रही थी का अब तुम्हें सामने पाकर और भी प्रसन्न हो उठा है। स्वर के ध्रुव में पकड़कर तुम मुझे नीचकर ले जा रही हो ! नहीं ? तुम्हारे सा आनन्द से मेरे माते कीभारों और भी रूढ़ हो गई हैं। पहले बाहर क्या है इसे जानने की आकांक्षा थी, वह अब विस्मय हो गई है। मेरवी !” विद्वान् उभरकर हाथ पकड़ने को कहने लगा।

‘नहीं पुनराज !’ मेरवी पीछे हटने लगी।

“क्यों ?”

“पेसा ही किया जायगा।”

“उस समय हम पुनराज के विरुद्ध ही रहेंगी। हम पुनराज के भाव और उनकी चेष्टाओं से उनके हृदय की चाह से सेंगी और आपकी पुनराज की मनोवीर कुमारी को बता देंगी।”

पुनराज की मेरवी बही प्रिय जान पड़ी, धारम के बहुत दिनों तक। उसके हृदय में जित स्वर्णों की संस्कार थी उनकी प्रतिध्वनि पुनराज की मेरवी के कद में मिली। जब उसके मन का गीत मेरवी ने मौलिक वाग्य में सृष्ट कर दिया, फिर मेरवी से हठकर उसका विचार विचार की ओर बढ़ा।

“विचार तुम अक्षुण्ण सुंदरी हो।” सिद्धार्थ ने कहा एक दिन।

विचार ने स्मित-वदन कहा—“आज ही क्या स्मृति-सी हुई है तुम्हें? इतने महीनों से हम साक्षिण्य में हैं।”

“विचार और अक्षुण्ण से हमें सत्य दिखाई देता है।”

“पहले तुम मेरवी से ही अधिक बोलते थे। उसी ने तुम्हारे विचार आकर्षित कर लिये थे।

“अब जान पड़ता है, वह अधिक अभित कर देती है। उसका स्वर सुहर है, इसमें कोई संदेह नहीं पर नेत्रों के लिये तुम धुस्म हो, बहुत स्पष्ट हो। गीत एक स्वप्न की भाँति अधिक मोह रक्ता है, पर वास्तविकता कम है उसमें। तुम्हीं जब कला-कुओं की ओट से देखता हुआ वाता है तो एक कज्जुत रोमांच से भर उठता है।” सिद्धार्थ उसकी ओर लगे लगा।

विचार भाग करी हुई।

“विचार।

“अब तो पुनराज तुम्हें एक काम है।

“क्या?”

नहीं बताया विचार ने। कभी देर में उसने प्रत्यावर्तन किया।

“बिना, तुम हम प्रकार कटोर होकर बिना बोले ही चली गई । मैं सब से निरंतर तुम्हारे ही चिंतन में हूँ । सब जगो तो मैं तुम्हारी आदर पर ही मौन हो रहा हूँ । तुम कहाँ चली गई थी ?”

“जाम बना गई थी ।

“मैं समझा था, तुम रिमा गई !”

“नहीं सुबराज ! इतने दिनों से बेच ही रहे हो । हम स्निह करना जानती ही नहीं । जो कृप्य हुआ स्पष्ट कह देती हूँ । किसी को पुरा करो, चाहे मर्यादा ।” बिना ने कहा ।

“बिना तुम अर्पण मुंदर हो ।”

“हम हम स्तुति के वाक्यों से अभ्यस्त हैं सुबराज, और हमसे हमारा भाव अधिक ही रहता है ।”

“निरंतर तुम्हारी संगति में समस्त प्रतिपादित करने की इच्छा होती है ।” करते हुए सिद्धार्थ ने उसकी ओर हाथ बढ़ाया ।

“अब तो सुबराज ! तुम प्रतिज्ञा मूल्य रहे हो !

“कौन-सी ?” सुबराज ने हाथ रोककर उसकी ओर देखा, जिस में भरकर ।

“वही कि तुम हमारा स्पर्श न करो ।”

“पर तुम्हें तो मरना स्पर्श करने की स्वतंत्रता है न ?”

“फिर क्या हुआ ?”

“एक ही बात तो हुई । अगर क्या रहा ? मैंने तुम्हारा स्पर्श किया, या तुमने मेरा । अब प्रतिज्ञा में कोई तर्क नहीं रह जाता हमसे मैं उसका त्याग करता हूँ ।”

“नहीं सुबराज कहानि नहीं । सबके सामने ही तुम्हें यह प्रतिज्ञा दोबारी पड़ेगी, क्योंकि सबके सामने ही तुमने यह वचन दिया था ।”

“बेचक तुम्हारे ही सामने लौकता हूँ ।”

“नहीं सुबराज !”

“सोमा ही तो स्वर्ग है।”

“एक में तुम्हारी कामना है दूसरी में सेरी।”

“मैं अपनी कामना को भी प्रणव चाहता हूँ।”

“नहीं।”

“बिना, तुम अनुपम हो।”

“हम सब समान ही हैं पुनरात्म।”

“नहीं तुम सर्वश्रेष्ठ हो। जिस पर्वत में मैं कबल अपने विचारों के ही साथ रहता था वहीं अब तुम्हारा साथ आहूँ। तुम इतनी कठोर क्यों हो ? देख।”

बिना बैठ गई।

“और भी किन्तु।”

“तुम्हारी इन कामना का कोई अंत ही न होय। इसी से तो हमने उसके बीच में एक रेखा खींची है—एक सोमा बनाई है।”

“अच्छा वहीं बैठी रहो। इस संसार में और कुछ न करूँगा।”

“यदि कहा, तो फिर मैं कभी तुम्हारा साथ पर्वत में नहीं करूँगी।” बिना ने कहा।

“बिना ! बिना !” मैरबी ने पुनरात्म कहीं छोड़ डे।

“हाँ, जाई।” कहकर वह उठ खड़ी हुई। उसने पुनरात्म से आजा आही। वह खड़ी थी।

सिद्धार्थ सोचने लगे—“बिना भी मैरबी के ही समान है। उन्होंने जो अनुपम सिखाया है मुझे, उसके वो पक्ष हैं—एक में वे मेरे समीप रहती हैं दूसरे में दूर।”

“क्या विचार कर रहे हो पुनरात्म” कहती हुई मैरबी आई वहीं पर।

“वही कि तुमने जो प्रेम सिखाया है, उसके दो पक्ष हैं क्या ?”

हँसकर मैरबी ने कहा—“हाँ-हाँ।”

“क्यों ?”

“क्योंकि जिस बस्तु से तुम प्रेम करते हो, उसमें वीरता परिभाषित है—बहुत सख्त है।”

“एक ही पक्ष क्यों नहीं है ?”

“बलवान् वाचक है। विरह के कारण ही मित्रता है, और मित्रता में ही विरह को उपजाया है। विरह से भी प्रेम करो सुभद्रा !”

“मैं नहीं समझती तुम्हारी बात तुम परिहास कर रही हो।”

“तुम्हें सत्य किता है प्रकट करने तुम पर। नहीं समझते तुम अभी। जब अनुभव परिपूर्ण होगा सभी, तब तक नहीं।”

“मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।”

“तो वीर तुम्हें पारण करता है इससे, ?”

“और तुम क्यों नहीं करती ?”

“बहुत हमारी वस्तु है। उसके बिना तुम्हारा इतना और सामर्थ्य होता अधिक नहीं है।”

“मैं अपने प्रेम की प्रतिष्ठा चाहता हूँ।”

“हमारे पास न मिलेगी वह।”

“और तुमने क्यों मुझे प्रेम सिखाया ?”

“हमने कहाँ सिखाया ?”

सुंदर ये वे दिन ! केवल सुख ही था। मेरा जानू इस प्राचीन-मण्डप की छोट में था। इस राजमहल और उपवन पर मैं अपनी पक्षों में गिरा हुआ था। तुमने वह भीत में मन के भीतर से निकालकर उसे मेरे सामने प्रतिष्ठित कर दिया।”

“क्या तुम किया ?”

“कदाचित् वह मेरे मन में था, और तुम मुझसे दूर हो।”

मेरी हँसकर कहने लगी—“दूर नहीं है सुभद्रा ! क्या तुम्हारी हँसना या ही हम सदैव गाती और गायती नहीं है ?”

“तुम्हारे ऐसे विचार हैं, तो हम नहीं जाएँ।

सिद्धार्थ बहराकर उठा—“नहीं, ऐसा न कहो।”

एक दिन सिद्धार्थ जब उपवन में चलेखे ही थे। उन्होंने एक कोमल फंद की चीलार सुनी। सरोवर की ओर से आई थी वह ध्वनि। दौड़कर बहर जाकर देखा, कमलिनी जल में डूबकर रही थी।

“बचाओ-बचाओ।” कमलिनी चिल्लाई।

“तुम्हारा स्पर्श!” सिद्धार्थ ने जल में धँसकर पूछा।

“हाँ-हाँ मुझे लींचकर बचा लो बुधराज! मैं तुम्हारी धाकपस खाती रहूँगी।”

सिद्धार्थ ने उसके हाथ पकड़कर उसे जल से बाहर लींच लिया—“कैसे गिर पड़ीं तुम जल में?”

“तूफ़ान पड़ा रही थी। पैर फिसल गया, उस खोपान पर काई चमी हुई थी।”

“अब क्या होगा?” सिद्धार्थ ने उसका हाथ पकड़े हुए ही कहा।

“कैसा क्या?”

“हमारा बत दूट गया।”

“क्याहि नहीं।”

“क्यों? मैंने तुम्हारा स्पर्श कर तुम्हें तट पर लींचा।”

“नहीं बुधराज मेरी ही इच्छा जो भी बह। मैंने तुमसे कहा न?”

“तो मैं अब अपनी इच्छा से पकड़े हुए हूँ तुम्हारा हाथ।”

सिद्धार्थ ने नहीं छोड़ा था उसका हाथ अभी तक।

“नहीं इस पर अभी मेरा ही अधिकार है।”

“फिर भी यह स्पर्श किन्तु कोमल और कमलीय प्रतीत हो रहा है। मेरी कामना है कैसे नहीं इस पर?”

‘इस बार छोड़ देने पर फिर सब प्रार्थना करोगे तब होगी ।’
 सिद्धार्थ ने फिर एकदम के बिचे अपना हाथ छोड़ दिया ।
 कमलिनी भाग गई दूर ।

‘कमलिनी ।’

‘नहीं पुनराज ! भैरवी देख लेगी ।’

कमलिनी भाग गई ।

सिद्धार्थ सोचने लगे— ‘ये पाँचों बहनें एक ही तन्त्र की बनी
 हुई हैं । ये प्रेम मिलाती हैं, पर प्रेम करने से भागती हैं ।’

भैरवी आकर बोली— ‘क्या सोच रहे हो पुनराज ।’

‘यही कि तुम प्रेम करना नहीं जानती ।’

‘तुम्हीं क्यों जानते हो ।’

‘क्यों नहीं जानता मैं ।’

‘क्या हमी को प्रेम कहते हैं ? कभी तुम मेरे प्रति अनुराग
 दिखाते हो कभी विद्रोह के, कभी कमलिनी के कभी सुरभि के
 और कभी सुरभि के । यह विभ्रम है प्रेम की वृत्ति है इसका
 नाम प्रेम नहीं है ।’

‘फिर प्रेम कितने कहते हैं ।’

‘प्रेम सत्य को लेकर ही सब और विद्रोह होता है ।’

‘प्रेम में सत्य का समावेश कैसे होता है ।’

‘अनेकता से नहीं, एकता से ।’

‘कैसी एकता ।’

‘कदाएँ एक से ही प्रेम करना । केवल एक ही का चित्त और
 सभी के बिचे व्याकुलता ।’

‘नहीं भैरवी ! मैं तो समस्त विरह-संसार से प्रेम करना चाहता
 हूँ । उसमें सब बीज, पशु-पक्षी, जन्तु-मृज, मिट्टी-कागज, नर-नारी,
 प्रद-नपत्र सब सम्मिश्रित हैं । मैं इन सबसे प्रेम करना चाहता हूँ ।’

“मैं नहीं समझ रही हूँ पुनरात्म, तुम क्या कह रहे हो ?”

“क्या मैं हम सबसे प्रेम नहीं कर सकता ?”

“असंभव ही तो यह प्रत्यक्ष हो सकेगा । आरंभ में केवल एक को ही प्रिय समझना होगा पुनरात्म । एक ही से तो अनन्त बनता है न ।”

“यह एक कीम है ? तुम ?”

“नहीं हममें से कोई भी नहीं ।”

“फिर ?”

“तुम सबसे ही हूँ क जाने कसे ।”

“कह ?”

“बहुत शीघ्र । उससे तुम्हारा विवाह होगा ।”

“विवाह क्या हुआ ?”

“वही एकता का बंधन है ।”

“पर मैं मुक्ति चाहता हूँ । पाप शीघ्रांत के बंदी सिद्धार्थ को तुम और एक प्राचीर में क्यों जेर देना चाहती हो ?”

“मुक्ति बंधन पर ही तो उदरी है । जब बंधन ही नहीं, तो फिर मुक्ति कैसी ? बंधन से मुक्ति, मुक्ति से बंधन, तभी तो चर्हि का चक्र पूरा होता है ।”

“तुम्हारा तब समझ में आया है मेरी । मैं विवाह करूँगा ।” सिद्धार्थ ने कहा ।

“यह एकता का बंधन है, पर जल्प में उलझे नयेस्ता है ।”

“सुंदर ?”

“वही तुम्हारे पर्वत की झाड़-सहचरी होकर रहेगी । वही तुम्हारी हथ्था कर बंधन अनुसरण करेगी पुनरात्म । इस तो अपनी हथ्था से बजती हैं अपनी ही आवाजों से स्मिर होती हैं, और फिर अपने ही विचार पर चक्र देती हैं ।”

“बेल ही रहा हूँ तुम्हें इतने दिन से।” मिश्रा ने हँसकर कहा।

“हम तुम्हें केवल मेम का मार्ग दिखाने चाहे हैं मेम बन नहीं सकती। प्रणय बढ़ी करेगी।”

“कौन ?

“वही। आक्रमण भद्रांगिणी बनाने की पवित्र शपथ खोले बिना पानिप्रदण कर।”

“भद्रांगिणी ?

“हाँ, नारी के चापे धंग से पूर्व हाथ है बह। बिना चापा धंग इसे समर्पित किए बसकर बिचार स्थिर नहीं होता। बिना बिचार स्थिर हुए मनुष्य की उन्नति नहीं होती।”

“चापा धंग कैसी समर्पित किया जायगा इसे ?” मिश्रा ने पूछा।

“बस्तुतः समर्पण नहीं बह सच्चे होने, विनिमय पुनराज। अपने चापे धंग में नारी के चापे धंग की प्रतिष्ठा।”

“तुम्हारी बात समझ में नहीं आती धैरवी। विनिमय तो क्या बस्तु से हो सकता है, जो हमारे धंग से निष्ठ है। अपने धंग के एक भाग का हमारे के धंग के एक भाग से वैसा विनिमय ?” पुनराज ने पूछा।

“बह जान-बगल की बात है नीतिज्ञ उपक्रम केवल संकेत-मात्र है। सभी न समझ सकेगी तुम्हें, नेहा भी न सकेगी। धीरे-धीरे स्वयं ही समझ जाओगे पुनराज। सभी तुम्हारा नारी-भाव सारे बगल पर विस्तीर्ण है। उभै-उभै बह तुम्हारे भजन में प्रतिष्ठित होगा, और वहाँ से फिर तुम्हारे धंग में ही। मन की बहिष्कृती गति फिर बंजु की हा जायगी पुनराज।”

“पर विवाह का संकेत वैवाहिक है वा नीतिक ?” पुनराज ने पूछा—“हमसे से बिना बचावा हुआ ?”

"होनों में से कदाचित् किसी का भी बचाया नहीं। विवाह के उसे स्वयं ही बचाया है, सरिता के मार्ग की भाँति।" मैत्री ने कहा।

पुत्रराज के मोहहर्षे जन्म-दिव का उत्सव निश्चय आया। बड़े समारोह से यह मनाया गया। राज्य-भर के समस्त शीन-शुश्रूषकों को घण्ट, बख और हथ्य वितरित किया गया। राज्य के कर्मचारियों को, इन्ह-मित्रों का सुहृद मोत्र दिया गया। पुत्रराज के बीचबीचन की कामवा की गई, उन्हें बधाई दी गई। देवी-देवताओं से उनके बिसे प्रार्थना की गई, पुत्रराजों से उनके बिसे आशीर्वाद प्राप्त किए गए। नृप-पीठ की अविराम धारा से सारा राजमन्त्र परिष्कारित हो उठा।

राज्य के अतिर-बन्ध की समस्त सुंदरी कुमारियाँ निर्मन्त्रित गई। वे एक-एक कर पुत्रराज के समीप उन्हीं बधाई देने को आई, और पुत्रराज उन्हीं एक-एक आलोक-मोह उपहार देते गए। बख से परिवर्ष एक बर्तन का वह उसमें मंगल-सूचक एक-एक आलोक की मंत्रा डाली गई थी, और एक-एक आलोक भी रक्ता गया था।

पौषों गीत कुमारियाँ लेकर खड़ी थीं राजकुमार को। वे बड़ी सावधानी से पुत्रराज की एक-एक भाव-गति और एक-एक मुद्रा-वेहा का विरीचन कर रही थीं।

जनेक सुंदरी राजकुमारियाँ पुत्रराज के हावों से उपहार ब कर लकी, किसी की और उबका प्याव आहूत न हुआ। दो बार राजकुमारियों को तो पुत्रराज ने आँख उठाकर देखा भी नहीं। किन्तु नेत्रों से ही उन्होंने गीत-कुमारी के हाव से आलोक-मोह बिना और उन्ही प्रकार उसे राजकुमारियों को दे दिया।

गीत-कुमारिणी पुचराज की इस बहासीयता को देखकर चकर में पड़ गईं।

धीरे एक राजकुमारी आई—अन-गर्विता। उसके चारों के रस में उसकी मंजीर-ध्वनि दूबी हुई थी, उसकी छाया से ही चकरा उठा पुचराज।

उसका ध्यान आकृष्ट करने के लिये मैत्री ने कहा—
“पुचराज !”

पर पुचराज ने और भी अन्वयजन की छिट।

राजकुमारी के श्रंग पर के समस्त आभूषण बजाकर हाथ छोड़े और कहा—“पुचराज ! मैं आपके जन्म-दिन के लिये मंगल कामनाएँ लेकर आई हूँ। मैं चातुमा की राजकुमारी हूँ, मेरा नाम कौञ्चनमाळा है।” उसने अपने साथ की दामी के हाथ से फल और पुष्पों की मेढ़ लेकर सिद्धार्थ के समीप रक्खी।

कौञ्चनमाळा निस्पर्दिह अमित्र कन्यत्री थी। सिद्धार्थ उसे देखकर मुग्ध ही जागा, ऐसा विरहान लेकर बह आई थी। पर पुचराज की शक्ति दृष्टकर उसके मुक्त-मंजुष में बिना की छाया पड़ गई। पुचराज की उल्लास उसे गहने छली। वह अमिमान के मद् में पृथ्वी पर पैर पटकना ही चाहती थी कि—

पुचराज ने उसकी ओर दृष्टा। मंद मुस्कार के साथ कहा—
“कौञ्चनमाळा ! तुम परम सुंदरी हो। तुमसे अपने जन्म-दिन की बधाई पाकर मैं खूब हुआ हूँ।

मैत्री ने जान-बूझकर कौञ्चनमाळा का उपहार राक छिपा करने पाप कि पुचराज उससे बातचीत करे। उसने बातचीत का सिरा धागे बझाने को चुना—
“कौञ्चनमाळा ! चातुमा-नाम किंचित है ?”

कौञ्चनमाळा ताबी—
“अद्विज-वस्तु की सीमा पर ही। अनामा-नदी के इस पार। ऊपर फिर महात्म्य की सीमा है।”

५५

सिंहार्य बोला—“परंतु अर्चनमाका ! इन संस्थाओं में मेरे बिना कुछ भी परिणाम नहीं है। इस सात प्राचीनों के भीतर का बंदी एक राजकुमार ! संसार से सर्वथा अलग है। अगर बीच आकाश, नीचे हरित ज़रती का एक दुकान, जिसके चारों ओर दिशाओं को अपनी सुदृढ़ जंभाई में विप्राय हुए वे शिखारंड—इन्होंने मुझे र्जवा नहीं बना सकता है क्या ?”

अर्चन खुद स्वर में बोली—“आप शास्त्र-वंश के परम उग्रज नवज हैं। नवी सात भीरु आर्चनवालों के बीच में आपका शासन पावन हुआ है। आप आधी महाराज हैं। साधारण मनुष्य की शक्ति आप जैसी-सी ज़रती पर विचार नहीं कर सकते। समस्त प्रजा आपके दर्शनो को आती है। आपको नहीं आने-जाने की क्या आवश्यकता है ?”

“अबोमा-नदी ! पहले क्या इसका नाम सुना या मैंने भेरी !” सिंहार्य ने भेरी की ओर देखा।

“वही राजकुमार ! मैंने कभी नहीं किया बसकर जल्दबाजी। मैं तो आज ही सुच रही हूँ उसका नाम।” भेरी ने कहा।

“अधिराजती से एक शाका काटकर हमारे उपवन से होकर बहाई गई है। सुनता हूँ, नदी उससे बहुत नदी होती है।” सिंहार्य ने कहा।

“हाँ नुबराज !” भेरी ने कहा।

सिंहार्य ने अरोक-आंड के बिये उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया।

“अरो नुबराज, अर्चन विपमायिनी है। वह अपनी कुछ देर भीरु माफ़ करके के योग्य है।” भेरी बोली।

“हाँ अर्चन, एक बात बताओ। इस गाँवों बहनों ने मेरे सीमित ज्ञान में नदी-वही विभिन्न बातें मार दी हैं। ये कहती हैं, अरोक

न कुछ सुदरी नारी की ओकर से संजलित हाता है। तुमने कमी
क्या है उसे ?" सिद्धार्थ ने पूछा।

"हाँ पुत्रराज ! पर मैं निरिच्छत रूप से नहीं कहती, वह मेरी
ओकर से बिछा।" कंचन बोली।

"क्यों ?"

"इसारे उपरान्त मैं एक और भी कूँठों से मरा घण्टाक रिक्तार्थ
रिपा मुझे, जिस पर कमी मेरी माया भी नहीं बड़ी थी।" कंचन ने
कहा।

"अब वह किसी और की ओकर बड़ी होवी ?" लज्जत ही बिना
बोझ उठी।

"इस बार अब मैं एक घण्टाक का पीला अपने हाथ से उपरान्त
के एक गुप्त स्थान में लगाऊँगी, वहाँ हूँ कुमारियों के दर्शन न
होने हूँगा उसको।" सिद्धार्थ ने हँसकर कहा।

"अब वह किस जापगा ता मैं भी उसे इसका घाँसी बुधराज ?"
अपने हाथ के एक बल्ल के अपने हाथ से सुमात्री हुई कंचन
बोली।

"बढ़ि निज गया, तो अपना कमिमान छोड़ जाती न ?"
सिद्धार्थ ने सहज भाव से कहा।

पर कंचन को यह सहन न हुआ। अपने धूम्रगुण में प्रवि
ष्टकर कहा— "कमिमान कैसा बुधराज ?"

मेरवी बोझ उठी— "यही कि नारी की ओकर पाकर निजगा है
घण्टाक।"

"तुम्हारी नारी की शरीर-वर्णन हीन ही पर और जाने के
जिसे चपल हो रही है बार-बार कंचन। जाना ही बाहिर तुम्हें
अब। मेरवी ! घण्टाक-माँह दा न। सिद्धार्थ ने मेरवी की ओर
मुँह कर कहा।

मैरबी ने निरुक्ति के नाच से अण्ठो-भाँड़ पुबराज को दिया ।
अचनमसदा उसे ग्रहण कर नहीं गई ।

“अप्रतिम सींहर्यशाहिनी है कोचन पुबराज । तुमने ध्याव ही नहीं
दिवा । वह तुम्हारे मेम के बिये है ।” मैरबी बोली— ‘क्यों बिचा ?’

“इसमें संदिह नहीं कुछ ।” बिचा ने प्रपुच्छ में कहा ।

‘जब हम का अभिमान हो गया, तो कम नहीं रहा ।’ सिंहर्य
ने कहा ।

‘सभी बस्तुएँ पूर्ण मात्रा में एक ही स्थान पर नहीं मिलती ।
अधिक अथवा की कृति स्वभाव का दोष है ।’

‘मेम करने के बिये दूसरे में भी तो मेम बाढ़िये । तुम्हीं ने एक
दिन बराबरा का ।’ पुबराज ने मेम मेम नहीं । जब-जब किया हुआ मेम
भी-भी-भी नहीं होता ।’ सिंहर्य ने कहा— ‘तुम्हारा और मेरा मेम
इसी-जैसे तो नहीं हुआ । तुम बाक्य-कर्म तो हो भाव-विषय नहीं
होती ।’

‘अप्रतिम-सींहर्य आदि के बाहर बिचाह नहीं करते पुबराज, और
इसे आदि के भीतर भी वह संभव स्वीकार नहीं । तुम तो केवल
उर्ध्व-दिश हो उठे हो । बिचा, का देख, किसी राजकुमारी का भी
और दोष है । अण्ठो-भाँड़ कम तो नहीं पर बाँटने ?’ मैरबी
न कहा ।

बिचा ने कहा— ‘जल्द देखती हूँ । राजमन्त्र के सब भाँड़
यहाँ से बाँट दिसाई ।’ बिचा नहीं गई ।

एक और राजकुमारी बाई और उपहार लेकर बिचा हुई ।

बिचा ने और पाकर कहा— ‘इस राजकुमारी का दोष है यह
केवल । दो अण्ठो-भाँड़ कम हैं, दासी का रही है ।’

एक-एक कर के सभी राजकुमारियाँ भी अपने-अपने उपहार लेकर
नहीं गई, और सिंहर्य के मग में कोई भी अपने भाँड़ न छोड़ सके ।

अंतिम राजकुमारी के जाने पर मैरवी ने कहा—“सुभरात्र, तुम किस विद्या-यात्रा के लक्ष्य विषय हुए हो। सुंदरी राजकुमारियों की पूरी सेना तुम्हारे आगे से होकर निकल गई। किम्वदंत्त रूप, बीजन, गुण गीत तुम्हारे चित्तन का कारण बना ? बरामो न ।”

“किमी का भी नहीं ।”

“फिर क्या होगा ?” मैरवी ने आकाश की ओर देखकर कहा ।

“कैसा क्या ?”

“तुम्हारा विवाह ?”

“जाने दो उसे । मैं केवल तुमसे प्रेम करूँगा ।

‘हमें अपना देव जाड़े बहुत दिन हो गए । हम निज एक ही रवाना में नहीं रह सकतीं सुभरात्र । तुम्हारे विवाह तक यहाँ रहने की प्रतिज्ञा की है हमने ।” मैरवी ने कहा ।

‘वह कीमत का रहा है ?’ सिद्धार्थ ने उपवास की ओर संकेत कर दिखावा—“हपी चार मास में वा हाविर्षी भी हैं । कैपी मंद गति ने । चार्न बरली में गरी हुई, जैसे कुप कोत्र रही हैं ।”

मैरवी कहने लगी—“एक राजकुमारी और खेप रह गई क्या ? चित्रा ! तुने मिलती में मूख की ।”

“नहीं तो, वह कहीं और जाह बैठी होंगी ।” —चित्रा बोली । सिद्धार्थ टम्पकी बाँजे ऊपर देखा रहा था । राजकुमारी उन्नी ओर था रही थी ।

मैरवी ने सुरचाप चित्रा को कुछ दूर से जाकर उनके कान में कहा—“हम चार वंश में था पदे सुभरात्र कराचिन् ।”

चित्रा ने हँसते हुए मैरवी के हाथ-पर हाथ रखा—‘हाँ-हाँ, निस्संदेह !’

“मैं समझती थी हउने दिनों का रचा हुआ यह जाह ध्यर्ष ही गवा ।”

आपमलारीबा राजकुमारी सिंघार्य के बहुत निकट था पहुँची थी। दोनों बहनें सिंघार्य के निकट और बहनों के साथ मित्र गईं। पिता ने सबको संकेत में मैरबी का कड़ा हुआ रहस्य बता दिया।

राजकुमारी सिंघार्य के सामने कुछ दूरी पर एक गड्ढा। उसके दाबो हाथ कुछ जुड़े हुए और कुछ जुड़े हुए उसके बच-बेच पर स्थित थे। वह अपनी नीची छवि से गहरा निराकर मृमि पर कुछ भी नहीं देख रही थी।

उसकी भेट लेकर उसकी दासी पुनराज के निकट गयी—
“महाराज ईश—”

पुनराज ने उसे घायले कुछ करने नहीं दिया—“वही दासी, तुम चुप रहा। सब राजकुमारियों ने अपना परिचय स्वयं ही दिया है। पिता के नाम और पण के वर्णन में किसी बच्चा। मैं वह भेट भी सिंघार्यी है, हमी के हाथ से प्रहस्य करेगा।”
दासी बिहिसती-सकुचाती भेट की पाखी लेकर राजकुमारी के पास गयी गई।

सुरमि ने हाथों से संकेत कर, पुनराज की ओर में मैरबी से कहा—“बराक-मोड!”

मैरबी ने एक हाथ से उसकी बाँह पकड़कर, दूसरे हाथ की उँगली से अपने अंगर-पल्लव हवाकर कहा—“चुप रह!”
बामी ने जाकर राजकुमारी की ओर पाखी बढ़ाई, कहा—“बे राजकुमारी यह अपनी भेट स्वयं ही जाकर दो।”

राजकुमारी अर्न्त संश्लेष में भर डडी।

दासी ने कहा—“बा से इतनी दूर तो घाई हो राजकुमार बरान के जिये। समीप जाकर न-जाने क्या सब जाने वाली हो किज्नी देर से तुमसे बड़ो-बड़ो कर रही थी। सब राजकुमारियों

आपने क परचाव नहीं कसिना से अब आई हो । अब भी क्या केना संकोच हो गया तुम्हें ? जो अपनी बाबी ।’

“कुछ बच रहा दानी ।” कहकर राजकुमारी ने अपने हाथों के आभूषण ठीक किए, रंग पर नम बस सँभावा - “राजकुमार किस ओर दब रहे हैं ?”

“तुम्हारा बिश्व अबरन ही उनके कौतूहल को बना देगा ।’ दासी ने कहा ।

कमलिनी ने इस राजकुमारी को संकट में देखा गया । वह डबीसूट हो खड़ी । राजकुमारी के पास तुरंत ही खड़ी हुई नहीं आई । बड़े प्रेम और चिरपरिचय के साथ से अपने इसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा—“बधा बात हो गई बहन ! कुछ भूख आई हो क्या ?”

‘नहीं । साइस में मरकर राजकुमारी बोली ।

“मैं तो जानूँगी तुम्हारी भेट । जबो बुधराज तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।” कमलिनी ने दानी के हाथ से पाखी ले ली । दूसरे हाथ से उसे सहारा देकर ले खड़ी वह ।

अधर-बिहीन अंध और बिमि-बिहीन नेत्रों से बुधराज उस राजकुमारी को देख रहा था । उसके मन की ओर पीछे में सिद्धार्थ के हृदय में अधिकार कर दिया यह तरह प्रकट हो गया ।

बुधराज के निरुद्ध पहुँचकर कमलिनी ने बाकी राजकुमारी को देकर कहा—“छा, अपने कर्तों से ही समर्पित करो ।”

राजकुमारी ने कपिते हुए हाथों से वह भेट सिद्धार्थ के चरणों पर रखी ।

‘कुछ क्यों भी तो ।’ और भी बोली ।

विगत-वस्तु राजकुमारी ने कहा—“अस्म-विधि के राजकुमार के किये—’

पाँचों बहनें आह्लास कर खड़ी।

मिहिराव की तन्मयता खत्म हुई—“क्या हुआ ?”

भैरवी ने कहा—“अम्भ-रिति के राजकुमार या राजकुमार की अम्भ-रिति ! यवराजो नहीं राजकुमारी। यहाँ कोई भी बाहरी व्यक्ति नहीं है।”

राजकुमारी खड़ी कठिक्ता के फिर बोली—“यह मेरी बहुत मेद है।”

“कौन हो तुम ?”

“महाराज इंदुपाणि की कन्या हूँ।” उसकी बनी हुई बाबी और भी मजबूर हो खड़ी।

“तुम्हारा क्या नाम है ?”

“मुझे यशोवरा कहते हैं।”

‘य-शो-व-रा ! क्या मुँह का नाम ! मुँह ऊपर करो यशोवरा ! तुम्हें किस बात का संकोच हो रहा है ?’

यशोवरा ने मुँह ऊपर किया। उसके कज्जाएँ कपोलों ने उसकी कंठि बहा दी।

पाँचों बहनें बरसत कलकलती करने लगीं। उन्होंने यशोवरा की हाँसी को भी अपने साथ डूबा दिया।

“मुझे बड़ी देर से बह की व्यास आती है।” कहकर सुरभि वहाँ से बह गई।

“मुझे भी हाँ।” कहकर सुरभि ने उसका अनुसरण किया।

कमलिनी बोली—“मैंने अपनी बोली खुद में सुनाने के लिये हाँकी थी, उसे सँभाल आती हूँ।” वह भी गई।

भैरवी ने कहा—“यशोव-शोड नहीं है। देखती हूँ जाकर। वहाँ एक मित्र जाय, तो काम चले।”

“मैं भी चलींगी। मैं यशोव की संखी तोड़कर ले पाऊँगी उसके लिये।” बिचा ने कहा।

प्रेम के पाठ

“दासी ! आओ तुम भी । हम तुम्हें अपना निवास दिया
 देंगे ।” मैरबी ने दासी के कान में कहा ।
 तीनों भी चली गईं । सिद्धार्थ और परशोषरा उन दोनों में से
 किसी को भी बात न हुआ ।

“बसोचरा ! मैं तुम्हारे यहाँ कभी नहीं आया । तुम पहले भी
 कभी यहाँ आई थी क्या ?”

“नहीं, पुनराज !” उसने फिर दृष्टि नीची कर ली ।

“फिर तुम फिर और परीक्षित-नी दिखाई दे रही हो । कहाँ देखा
 तुम्हें ?”

“मैं नहीं जानती ।”

“फिर क्यों तुम्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम आज बहुत दिनों
 से मिली हो मुझे । सुरभि ! तुम कहती थी—‘पुनराज ने सुरभि
 की ओर दृष्टि डुलाई ।’”

“हैं तो न या नहीं ।

सिद्धार्थ ने कहा—“तुम सब बड़े गढ़ क्या ? क्यों ?”

परशोषरा झुकझुकाकर बोली—“मेरी दासी भी चली गई ।”

“क्यों, तुम भयभीत क्यों होने लगी ? फिर सिद्धार्थ अपने
 हाथों में शक्ति भी रक्ता है ।”

“दासी ! दासी ! परशोषरा ने ऊँचे स्वर में पुकारा ।

“मैं कहता हूँ, इतना धीरे-धीरे होने की क्या परी है ।

“क्यों क्या कहेंगे ? पुनराज !”

“किसलिए ?”

“हमें यहाँ पर्यटन में देवदत्त ।”

“मैं नहीं समझ पाया परशोषरा तुम्हारी बात । इतनी
 राजकुमारियों में तुमसे बड़ी बेरतक बातें करने की इच्छा
 मैं नहीं जानता, मेरे मन में क्यों ऐसा विचार है ।”

सुरभि बिना के साथ लुप्त-होकर जाती है, और एक बड़ा झूठ की ओट से बनकी बातें सुनने लगती है।

“बुधराज, मुझे पश्चात् में असहाय पाकर आपको बहुत संकम पूर्वक मुझ कोकना चाहिये।”

“क्यों ?”

“हमारे गीत को आपात न पहुँचे।”

“मैं इस पश्चात् का अधिक समय भीत-कुमारियों के साथ ही व्यतीत करता हूँ। मैंने कभी कोई बात उससे नहीं कही, जिससे उनके गीत को आपात पहुँचा हो।”

“दासी ! दासी ! परमेश्वर ने फिर बिह्वल होकर पुकारा।

“मैं तुमसे कुछ करना चाहता हूँ।”

“कहाँ, मैं कुछ न सुनूँगी।” कहकर परमेश्वर वहाँ से जाने लगी।

बुधराज आसन छोड़कर उठ गया—“मैं तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हें रोक दूँगा।

“नहीं बुधराज तुम मेरा अंग-स्पर्श नहीं कर सकते।”

“क्यों ?”

“क्यों कि वह पाप है।”

“भीत-कुमारियाँ भी मुझे बर्जित करती हैं। पर उन्होंने इसे पाप की संज्ञा नहीं दी। पाप किसे कहते हैं परमेश्वर ?” सिद्धार्थ ने कीर्तिहर के साथ पूछा।

“दासी ! दासी !” कदम के स्पर्श में परमेश्वर ने पुकारा।

“क्या हुआ ! क्या हुआ ?” कहती हुई भैरवी दीदी हुई बिना के साथ—“क्या हुआ ! तुम इतनी डरी हुई—सी क्यों हो गई हो ?”

परमेश्वर चुप रही। पर उसे बेचैन प्राप्त हो गया था और बसक भय बसा गया था।

भैरवी ने सिद्धार्थ की ओर देखा—“क्या हुआ बुधराज ?”

"कुछ नहीं मैरबी ! राजकुमारी अपने आप करने लगी, मैं नहीं जानता, क्यों ।"

"तुमने कुछ कह दिया ?" मैरबी ने पूछा ।

"कबल यही कि यशोवरा तुम अर्चन सुंदर हो मैं तुमसे प्रेम करता हूँ । तुमने बताया था प्रेम विरह-विजयी मंत्र है ।"

मैरबी ने हँसते हुए कहा — "राजकुमारी, वह तो कोई मय की बात नहीं है ।"

"दासी कहाँ गई मेरी ?"

"जब पीने गई है, कौटकर घाटी ही हामी ।"

"मैरबी ! तुमने कहा था, इन राजकुमारियों में से मैं ब्रिपका जाऊँ, उसका हाथ पकड़ सकता हूँ ।"

मैरबी बोली — "तुम बड़े चपल हो गए हो राजकुमार ! पहले देखे नहीं थे । राजकुमारी का हाथ पकड़न का उठे तुम ?"

"हाँ ।" मिहार्ब ने सामान्य भाव से कहा ।

"तभी तो ।" मैरबी ने कुछ अनुमान किया ।

राजकुमारी मुँह फिरोकर कही हो गई थी ।

मैरबी बोली — "पहले तुम्हें राजकुमारी से विवाह करना होगा । उसे मुक्त-मुक्त की चिर-महली बनाने की पवित्र प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी ।"

"अच्छी बात है ।"

"हामी का नाम विवाह है ।"

"मैं मस्तुत हूँ । परंतु प्रेम ?"

"यह प्रेम का मुरद बचक ही तो विवाह है ।"

शेष गीत-कुमारियों के साथ यशोवरा की हामी भी आ पहुँची ।

यशोवरा ने बीरे-बीरे कहा इससे — "तू बिना मुझ पर अवगत किए ही कहाँ चली गई थी, दासी !"

“जब पीने । वहाँ से सारथी से एक प्राप्तुत करने के लिये कह भाई ।”

“आज यहीं रहोगी राजकुमारी ।” भैरवी ने कहा ।

“यहाँ । माता-पिता चितित हो जायेंगे । उन्होंने आज ही बौट जाने के लिये कहा है ।” कसोबरा ने कहा ।

“पुत्रराज ।” भैरवी ने सिद्धार्थ की ओर मुग्न कर कहा ।

“कहा है भैरवी ।” सिद्धार्थ ने अपने विचार में धति लेकर कहा ।

“राजकुमारी विदा चाहती है । किंतु इन्हें तुम उपहार में क्या दोगे ? अण्डो-भांड सब समाप्त हो गए ।”

“कोई चिन्ता नहीं मैं इन्हें अपना इष्ट उपहार में देता हूँ ।”

कसोबरा ने साहस कर मुख खोला—“वह कबल एक कोरी कपड़ा है पुत्रराज । सब राजकुमारियाँ आपसे उपहार लेकर ही गई हैं । मुझे रिक्त हाथ लौटते हुए देखकर वे सब क्या कहेंगी ? माता-पिता ने बहिष्कार मेरी व्यवसायना समझी तो ?”

भैरवी बोली—“हीन बात है । मैं ईश्वर से जाती हूँ एक ।”

सिद्धार्थ ने अपनी ऊँखी से भँगड़ी निकाल ली थी—“रहने ली हो । इस इष्ट-भांड को सामरस्य करने के लिये जो राजकुमारों, वह मेरी भँगड़ी ।

राजकुमारी कसोबरा ने सहर्ष उस उपहार को ग्रहण किया ।

“धीर ली तो ।” सिद्धार्थ अपने लम्बे से उपहार निकालने लगा ।

“नहीं पुत्रराज । मुझे आपको अर्द्धकार-विहीन करने का काम नहीं है । धीर कुछ नहीं चाहिये मुझे ।”

चिन्ता करने लगी—“हमारे राजकुमार का इष्ट लेकर जो तुम यह जा रही हो, बड़े बल से हमकी रक्षा करना राजकुमारी ।”

कसोबरा सकुचकर चले जाती ।

“धभी कुछ बच गइरा पछोपरा ।” कहकर सिद्धार्थ कुछ सोचने लगा । पर उसके मुख से एक भी शब्द न निकला ।

कुछ समय बीत गया । सब निस्तब्ध रहे ।

दासी ने कहा—“बहो राजकुमारी, दर हा रही है ।”

राजकुमारी बोली—“बन्ना ।”

दोना चली गई । सिद्धार्थ ऐसे गहरे विचार में पड़ गया था कि उसे भान ही न रहा पछोपरा उसके समीप ही खड़ी है या चली गई ।

कुछ दूर जाकर पछोपरा रुक गई—“कुछ भूल तो नहीं आई दासी ।”

“नहीं दासी ।”

पछोपरा ने सिद्धार्थ की ओर देखा—“नहीं, कहावित कुछ भी नहीं ।”

दासी ने कहा—“छोटा भी किया करते हैं । मुझे तो बुधराज पर्यंत सु दूर जान पड़े ।”

पछोपरा ने फिर औरकर बुधराज को देखा, अपनी प्रकार स्थित हो गई ।

पाँचों बहनों ने परस्पर संमन्वय कर पुकारा—“मानवी की जय ।”

पछोपरा अपनी मस्ती के साथ झोट में चली गई थी ।

सिद्धार्थ का ध्यान हुआ उस विद्वत्-व्यक्ति से—“पछोपरा चली गई ।” उसने विरह-व्यथित दासी से पूछा ।

हँसकर गीत-कुमारियों ने कहा—“हाँ ।” उन्होंने फिर मिलकर जय घोष किया—“मानवी की जय ।”

“मानवी की जय ।” सिद्धार्थ ने पूछा, फिर स्वयं ही उत्तर दिया—“मैरवी की जय ।”

“भैरवी मावकी नहीं है पुबराज ।” भैरवी ने कहा—“यव
 अपना निर्यय हो पुबराज । सबसे सुंदर, सर्वांग-सुंदर राजकुमारी
 कीमत खरी तुम्हें ?”

“मैं नहीं बताऊँगा ।”

“हमने जान लिया ।” भैरवी बोली ।

गीत-कुमारियाँ गाने लगीं—

मावको तुम्हारी जय हो ।

अमर बंदिनी इस विहर में आये मानव की जय हो ।

हो रहस्य-शी बिने आन्तरिक, शून्य दुम्हाण परिवर्ष हो ।

शमी बरकर रहो स्यादिनी, निःसंशय निर्मल हो ।

मावकी तुम्हारी जय हो ।

“मिने अभी तुम्हें सावधान किया था । क्या वह भूख जाने की बात है ? आज इस सभा में तुम्हारा कोई पक्षपात नहीं चलेगा । राजकुमारी यशोवरा के बराबरी होकर आए हो तुम यहाँ ? गीत-कुमारियों के बीच में क्या कभी यशुवराज का भार भी उठाने का अवसर मिला तुम्हें ?”

“मैं क्या कहूँ राजकुमार !” बड़ी गम्भीरता से सिद्धार्थ ने कहा—
“तुम्हारे शत्रुओं में इतना कटु क्या कहेंगे ?”

“आज अपिषत्तु की साठों दीवारों चुन गई क्या तुम्हारे बिये ? आँखों में पट्टी बाँधकर आए होंगे रात में । वहाँ भी देखना हूँ, इस स्पर्शर की सभा में तुम्हारी दृष्टि के बिये धूल-पूरा प्रवेश किया गया है । पर यशोवरा को विजित कर ले नहीं जा सकते तुम ।” देववृत्त ने कहा ।

उसकी बातों का अचिन्तित समझ में नहीं आया यशुवराज के । वह चुप रहा । जीट गया देववृत्त के पास से ।

स्पर्शर-सभा में राजकुमारों की वीरता का प्रदर्शन आरंभ हुआ । देववृत्त के दृष्ट-कीलक की सारी सभा प्रशंसा करने लगी । सिद्धार्थ सबके अंत में परीक्षा देने के बिये बडे । उन्होंने देववृत्त के समस्त प्रदर्शन उपसे भी अधिक दृष्टता से कर दिखाए । उससे अतिरिक्त और भी अनेक बातें कर दिखाई, जिससे सारी सभा चकित रह गई । यशोवरा ने धार्मिक में भस्कर सिद्धार्थ के गले में जवमाख डाल दी । देववृत्त कोर की शक्ति अपना दुर्ग-भरा मस्तक दिखाकर ब-जाने किन्न समय वहाँ से विरक्त गया ।

यशोवरा का सिद्धार्थ से विवाह हुआ वह अपिषत्तु में थाई । ऐसी कर, गुह्य और भी-संपन्न बहू की यशोवरा कि समस्त राज-महल जयमगा उठा उसकी शोचि से । सब जाग यशुवराज के इस बोदे को मधि-कर्म-संबोध करने लगे । यशोवरा ने अपनी जव-

हार से नष्ट सर्वस्वियों, हास-हासियों, सभी को विमादित कर दिया। वहीं क्यों, पशु-वही भी उसके पैरों में पड़ पड़।

और सिद्धार्थ! सिद्धार्थ के जीवन-परिधि की वह केंद्र बन गई। उनके समस्त विचार और कर्म की पछोपछा सुषुप्त प्रेरणा बन गई। उसी के कम और ध्यान में पुनराज निम्न रहने लगा। वह गीत-कुमारियों को भी नृप बना। वे सब-की-सब उसे पछोपछा में विधीन हुईं मिल गई।

विवाह के परचाह ही-कारों निमित्तों का रहस्य उस पर प्रकट कर दिया गया। उसको कई बार सावधान कर दिया गया कि वह उनकी कभी पुनराज से न करे।

वह उस पछोपछा को बड़ा भार प्रतीत होने लगा। पुनराज जब कभी जीवन के प्रकाश में आने की क्षाया देखने लगता जीवन के रूप में मरने के बिना की कल्पना करने लगता, उस पछोपछा को बड़े बड़े झटका से दियता पड़ता। बहुतों मृत होकर पड़ता। इस मृत का कभी बचा कष्ट होता, इसे सोचकर वह विधा में पड़ जाती।

पछोपछा का पाकर राजपुत्र के भीतर और बाहर, दोनों स्थानों में सिद्धार्थ का मन हम गया। उन मात ही-कारों के बाहर कुछ दे मरे या नहीं, यह विज्ञाता उसकी विमादित हो गई।

उन दिन पुनराज पछोपछा के साथ उपवन में बैठे हुए थे।

‘इसी आसुष की क्षाया में पछोपछा! मैं प्रमात और संप्रा की संधि कर देता था। मन में अनेक विचारों के बराबर बादल उठित होते थे। एक के धरंतर दूसरा कोई चंग ही नहीं था बलक। किसी ठके और किसी हल से मैं उन पर विजय पा ही नहीं सकता था। गीत-कुमारियों ने अचरित मेरे मन को नृत्य स्था किया, वे वे मेरी धार्मिकता का लेकर बह जाती थीं। मैं कभी उनके जीवन

को ब पा सका । तुम्हें पा जाने से बेहता जान पड़ता है, जैसे मुझे सब कुछ मिला गया । सारे कामाच परित्यक्त हो गए ।”

परोपरा को वह स्तुति चक्रवर्ते बारी । उसने बात हाथ देने के लिये कहा—“गीत-कुमारियाँ कइती हैं, उनका कार्य पूरा हो गया ।”

“हाँ, उन्होंने तुम्हारी प्रतिष्ठा के लिये मेरे हृदय में आसन बनाया है ।”

“वे अब भी ही अपने देश की बहो जाना चाहती हैं ।”

“तुम्हारे अस्तव्य अब उनका समाच बहुत बड़ा होमा, पर अबका कुछ-भीत स्मृति का परमोत्सव बन होकर रहेंगे ।”

“वे वहाँ भीर भी बहुत दिनों तक क्यों नहीं रहती ?”

“उन पर हमारा कोई बरा नहीं है लिये ! ब किसी भी सामाजिक लोग को नहीं रहती । हमारे मन्त्रि-मुखा उनके घरे में बंधन नहीं बांध सकते । वे अपनी ही इच्छा से बिचरती हैं । उन्हें कोई रोक नहीं सकता । भीर, तुम्हें विवाह के बंधन में बाँध दिया है लिये । तुम क्यों आ नहीं सकती ।”

परोपरा मुनकनाटे-मुसकनाटे उदास हो गई ।

“क्यों-क्यों, तुम क्यों चिंता में पड़ गई ?”

चारों विमल परोपरा के मन में दिखाई देने लगे । उसे ज्योति हीही की मन्त्रि-बायी स्मरण हुई—“नहीं तो पुनराज की-पुन, पैदा-भावा राज मुकुट, सबको त्यागकर बचवासी हो जावगा ।

सिवाय वे फिर पूछा—“परोपरे ?”

“नहीं पुनराज ! कुछ नहीं ।”

“विस्तारित तुम्हारे मन में कोई चिंता उमड़ ली है । तुम्हें उसे जाना चाहिए मुझे । बताओ ।”

“मैं तुम्हारी सेवा हूँ पुनराज । तुम्हारी शरण छोड़ने का विचार

नी मेरे किये मवानक नरक के समान है, पर ।" पणोबरा चुप हो गई । उसके दोनों नेत्रों के कोने सख्त हो गए ।

'फिर मुझ क्यों मर्दान पद गया तुम्हारा ।" आरबामन बेते हुए उसके कंधे पर हाथ रखकर पुनराज ने पूछा ।

'मिषतम ।" उसका कंठ रुक हो गया ।

'क्यों सा मर व्यापने लगा तुम्हें ? कइती क्यों नहीं ।'

'मिषतम । तुम ?—

'क्यों, क्या ।'

'तुम न चाहोगे मुझे ।'

'क्यों—क्यों छोड़ूँगा तुम्हें । क्या मेरे विवाह के मंडप में मैंने तुम्हारा महार रहने की प्रतिज्ञा नहीं की है । मुझे उससे दुहराने की फिर आवश्यकता ही क्या है । तुम्हें मेरा विरहाम हाना चाहिए वह कुछ बैरबती प्रतीत होने लगी ।

'बह देता, मेरवी बखी था रही है, तुलुवाती हुई हमी पार । हमने तुम्हें अनेक गीत मिला दिए हैं । अब अब पद बखी चाहोगी, ता—'

मेरवी निरुद्ध आकर चुपचाप मूढ़ मुसकान अपने अघर और कपड़ों पर मेकर अपनी चर्चा सुनने लगी ।

विद्वान् कहने का रहे ये—'तुम इनके अभाव में इनके गीत गाओगी । पार में ममकूँगा मेरवी नहीं किसी पात्र-कानन में दिए गए हैं ।'

'अच्छा यही ता पुनराज हमारी विदाई क किये प्रभुन हाकर बैठे हैं । मैं साबली थी, पुनराज से कैसे कहूँ कि अब हम जाना चाहती हैं ।'

'अब तुम हमारी बरखर्तिनी नहीं हो ता हमारे कुछ कहने से काम ही क्या ? महाराज हमारे किये बड़बुद्धों के चहुँदब सीव

प्रमोद-मनन क्या रहे हैं। उनके मन जाने के पश्चात् जाती, तो कैसा होगा ?”

“हमें इस अनुकूलता में प्रतिफलता का अनुभव होता है। हमें प्रकृति का संसर्ग ही अधिक मिल है। इतिमता हमें सुमने लगती है। भगवान् ने तुम्हारे लक्ष के अनुसार सब कुछ ही है। हमारी अब वहाँ कोई आवश्यकता नहीं है बुधराज !”

अब फिर क्या आलोपी ?”

“अब क्यों जाने जाती नहीं।”

“कभी नहीं ?”

धैरवी कुछ साबने जाती—“कदाचित् ।” उसने आगे कुछ नहीं कहा।

“कदाचित् अब ?” बुधराज ने पूछा।

“हम पाँचों बहनों ने अपने-अपने विशेष गुणों से बुधराजी को विभूषित किया है। मैंने उन्हें गीत सिखाया है। भिन्ना ने उन्हें सब का रहस्य दिया है। कमलिनी ने कोमल स्पर्श सुरभि ने घंघ ही है। सुरभि ने उन्हें पाक-शास्त्र की शिक्षा दी है। उन पाँचों गुणों में हमारी उपस्थिति है बुधराज। यदि किसी दिन तुमने उन पाँचों गुणों की खोज कर दी तो उस दिन फिर आपा पड़ेगा हमें।”

बुधराज हँसने लगी—“किसी प्रकार जाने की प्रतिज्ञा तो की तुमने।”

“बसोधरा को आदर और प्रेम से रक्खा बुधराज।

सिद्धार्थ हँसने लगे। बसोधरा ने मुँह झिंझा दिया।

नियत तिथि को वे पाँचों बहनें बिदा हो गईं अपने-अपने को। महाराज कबल वाली और माच से ही उनकी सम्मर्पण कर सके। उन्होंने पारिवर्तिक या सेंट क सब कोई भी परार्थ स्वीकार नहीं किया।

सुषार्थ-सिंहर

परोपरा को गीत-कुमारियाँ के बड़े बाने पर कई दिन तक बड़ी शान्धता प्रतीत हुई, पर मिथ्या को परोपरा की सहचरिता से कुछ अनुभव न हुआ।

जीवन और ज्ञान में पुनराज का जो रङ्ग का दूसरा चित्र दिखाई देने लगा था, उस पर स्व का आचरण पर गया। संश्लि संस्कार दृष्ट गये। वे दुःख और संयम के दरप को पुनराज की चिता उपजा दते थे, वहाँ पर पविता परोपरा अपने निर्विकार स्व और सहज-सुख गुणों को लेकर खड़ी हो गई थी।

प्रीत्य बर्षा और हेमंत ऋतुओं के अनुकूल महाराज पुनराज ने नव सप्त और पञ्चतक प्रमोद-मन्त्रों का निर्माण किया पुनराज के किये। वे समस्त ज्ञान की विकास-सत्ता से विमूर्षित किन् गये। दुःख और विषाद के दरप और माव मिथ्या की छत्र के पथ से नव दृष्ट गये, जो नहीं दृष्टा जा सके उन पर पारा डाल दिया गया।

अनेक नर्तकियाँ और रागिनी विपुल हुई अब प्रमोद के मन्त्रों में उनके मन्त्राङ्ग और सेवा के किये। वे मन्त्र रित में पूर्व की क्रियाओं से और राग को दीपान्वित होकर प्रकाशित होने। दिन-रात पुन्य और भूत से सुसंघित रहने। समय-ममय वा नर्तकियाँ अपने गीत और नृत्य में आनंद और उन्नत की पारा बढ़ाती।

प्रीत्य के मन्त्र में रात को रागिनी भूत पर नीचे रूप से पावी खींची, और उसे चक्रानियों में बाधकर पुनराज उपजाती। रागिनी की जेबेट से एक मधुर-मधुर ध्वनि उपजाने जिससे मेघों की गरज का प्रेम होता। मन्त्रों की शिल्पाई हम चक्रानता से चमकाई जाती कि बिजली का प्रकाश प्राप्त होता। नर्तकियाँ मेघ-राग के किये अनुकूल वातावरण पाती, और मिथ्या परोपरा के प्रेम में आनंद उस कृत्रिमता में जोए रहते।

इसी प्रकार हेमंत के मदन में हृष्यानुसार माना उपक्रमों से वसंत का प्रवेश उपजा दिया जाता था। एक के परवश दूसरे मनोरंजन की धामनी पुनरावृत्ति के मन का कीच लेती। व उन्हें व्यवस्था ही नहीं देती कि वह किसी भावना की चिन्ता करते।

महाराज और महारानी पुनरावृत्ति को इस सांसारिकता में आनंद केवल प्रमत्त रहते। वे दोनों सोचते जब मित्रार्थ के मन में वैराग्य उत्पन्न न होगा। वे भयवश से उनकी सत्यता के सिधे प्रार्थना करते। वनका विचार था, संसार का प्रेम मित्रार्थ व अनुराग के पाश का और भी सुरक्षित रहेगा।

जब वसंत के पारस्परिक प्रेम में वर्ष दिनों की भाँति पीतले जगे। एक दूसरे की क्षाया-सी जात होते वह। केवल शक्ति के सिधे वह था थे। एक ही हृदय के स्वयं में मार्गों से हो प्राचीन करते-पीते, हँसते-बोझते जकड़ते फिरते, काँवा और विनोद करते एवं साँचे और विचारते थे। दो सत्त्वार्थ जैसे एक दूसरे में अपने-अपने ममत्व को काँकर एक हो गई थी। वह वाक्य कवि और अंतर्मन का कि वसंते व्यक्ति का अंतर कहाँ पर था।

एक दिन पुनरावृत्ति ने बरोबरता से कहा। वह उपक्रम में उस कामुन व वृद्ध के नीचे था—“प्रिये प्रमोद-मदन में मूढ़ जाता हूँ। इस कामुन व वृद्ध के बिना कभी-कभी बार था जाती हो” हृदय विचारते लगा वह।

क्या ?”

“यही कि वह पुनरावृत्ति जग, पूर्व और पश्चिम की चिन्तों का चारक कर मित्रों के पत्र धार्मिक पत्र से नृत्परीति होते हैं। उमर नीचे फिटकी घनी क्षाया है।”

“क्षाय से मम में चिन्ता के उत्पन्न की क्या आवश्यकता है प्रियतम ?”

‘हामी न चाहिय, पर वह मुझे जगत के दूसरे सिरे की ओर संकेत करता है। वह बसंत के विद्यमान में हेमन्त का विनाश दिखाता है। मुझे संकेत होने लगती है, क्या हमारा जीवन बिगड़ित हमारा सभी हाथ रहेगा ?

क्योंकरा नुर रही।

“अनुमान नहीं करता है पराधरे ! जिस प्रकार कर्म को प्रीति मुरका रहा है और राम का शीत भी-हीन कर रहा है, सभी प्रकार, प्रेयसी, क्या उसी प्रकार—”

बराधरा ने आगे नहीं करने दिया उन्हें—“आमरण के बिना विनाश चाहिये सुबराह ! अनु चकर पत्रक में जो जाती है, और फिर नबीना होकर बसंत में जाग उठती है। ऐसे ही दिन के साथ बमुधरा पर कर्म समस्त जीवन रात्रि की निद्रा में अपना कम मिला जा रहा है, और जब प्रभात में नबीन शुरु से भर उठता है।”

“हाँ, ये हाँ क्यों हुए ? एक ही क्यों नहीं ? कबल जागरण फिर भीर अतहीन जागरण, स्थिरकृत बसंत के ऊपर पराधरे निद्रा और निद्रा से चिह्नित ये दोनों नेत्र ! दिन और रात की अमेयता में मैं तुम्हारे इन अक्षर का का दर्शन करता ही रहता।”

‘येमा भी क्या संभव है ? जिस वस्तु का धारम होगा, उसका अक्षर ही अंत भी होगा।’ कहने को तो कह गई पराधरा अंतबाहक राम पर बराह उठी न-जाने सुबराह किम ओर तक का नीच से जायें।

‘सबने बही व्यापकता बही है सृष्टि में !’

सुबराह हुई। पराधरा ने दूसरी संज्ञाओं से काम लिया—

“यदि केवल पृष्ठ ही होती, तो फिर सारी सृष्टि नष्ट न हो जाती। आकाश बर्फ मिला है जिसका, दूसरा ओर है ध्वजक। इन

होशो क होने से ही जीवन है, जम है और है संघर्ष : केवल आशोक होने से बहुत बड़ा काटी और नहीं केवल असीम प्रसन्न-कार के राज से भी ।’

“किसी निर्दय पर नहीं पहुँचा सकता कोई । इस मिराजा से बार-बार निरन्तर करता है, जब कभी इस विषय में उन्हें मिलने न करूँगा । पर यह मन बजाए अगर ही आकर्षित हो जाता है ।” सिद्धार्थ ने कहा ।

अयोध्या अपने मन में सोचने लगी—“इस जातुन के वृक्ष के नीचे वृक्षराज ने बहुत समय तक विचार को बसीमूत कर जमा किया है । यह जब इसके संघर्ष में आता है, तब वह इनकी वस्तु स्थिति को जगा देता है ।”

“तुम क्या विचारने लगी अयोध्या ?”

“वही कि यदि इस जातुन के वृक्ष के खाल पर एक बार-बार मजबूत कर जाता, तो हम वर्तमान में इस संघर्ष में बहुत ही हारों की शोभा देखते ।”

“इस वृक्ष को काट देने का विचार है क्या ?”

“हाँ, जातुन के वृक्षों की कोई कमी नहीं है इस उपवन में ।”

“तुम्हें क्यों इस वृक्ष के बिचे लक्ष्म-याव हो गया । नहीं पसोका । यह वृक्ष मेरे जीवन से बहुत बलिष्ठ संघर्ष रखता है । तब तुम नहीं थी वहाँ । मेरे राज्य पक्षों का वही सहज रहा बहुत दिनों । इसी के नीचे मैंने जीवन और जगत् की खुशिया पाई है । यह सत्य है, मैं जम समस्या को जमी तक सुझाया नहीं सका हूँ, पर एक दिन अचानक ही सुझाया हुआ ।”

“ऐसे ही मेरे मुँह से एक बात निकल गई । मुझे नहीं माल था, तुम्हें इस वृक्ष से इच्छा देस है ।”

“पर मैं तुम्हारी इच्छा की भी कबोना नहीं कर सकता । इस

सुख-विहार

को काटे बिना भी तो यहाँ पर मजन बन सकता है।" मिश्रायें ने कहा।

"वही, कोई धाँवरपकड़ा नहीं है।" वही तीव्र गति से मिश्रायें के विवाह के वस वस चीत गए। प्रामोद-प्रमोद, मोग-विहाम नृत्य-संगीत के बीच-बीच में जब कभी-कभी बुझाव का प्यास हड़ जाता और उनकी चेहा से ऐसा प्रतीत होता जैसे उनका कुछ को गया है, और वह उसे हँसने की चेष्टा कर रहे हैं।

हँसते-हासते वह एक-एक चुप हो जाते। हाँसते-हासते उनका हाथ जहाँ-कहाँ ही रह जाता। सोते-सोते वह दृष्टाएक बीच-बीच में उठ बैठे एक दिन।

पत्नीपरा ने घसीट होकर पूछा—“क्या हुआ? स्वामी!” जैसे किसी ने हाथ पकड़कर बीच बिपा मुझे तुम्हारे प्रेम की गूँथ में से।”

“स्वप्न में।”

“दीक-दीक वही कह सकता स्वप्न में कि जागृति में।

“जागृति में? हम दोनों के अस्तित्व और बीच है हम कब में?”

“फिर क्या स्वप्न स्वप्न का वह पत्नीपरा! मैं जब तक अपने हाथ में उनका सारा अनुभव कर रहा हूँ।”

“केवल एक अमिष कल्पना मात्र।”

“तुम जो भी करो।”

फिर एक दिन सपने-सोते ही बुझाव करने लगे—“हस राज-मजन के सुन को सोचकर जहाँ जाओ कर रहे हो तुम?”

पत्नीपरा बाग ही रही थी। उपचाप सुनने लगी।

कुछ बहों की दृष्टि देखकर मिश्रायें फिर बोले—“नामा प्रभार के दुःखों और पीड़ाओं से सारा जानू जाहि-जाहि कर रहा है,

और मैं बेचक अपने ही मुँह में मग्न हूँ। हाँ, एमरल हुआ मुझे, तुम सब कह रहे हो। उहरी, मैं जाता हूँ।”

बड़ी बिठा के साथ बराबरा उस स्वप्न के प्रकाश को सुन रही थी। उसने बड़करी दीएक की शिखा को अधिक उज्ज्वल किया।

फिर कुछ स्तब्धता के अवतर सिद्धार्थ ने कहा आरंभ किया—
“माता-पिता, उन्होंने जन्म लेकर प्रतिपादन किया अबसे किया पूरे ही।”

परोवरा सिद्धार्थ के बिना आधर उगल मुँह मुँह-संझ की निहारने लगी। उसने देखा मारी का तुमुक संभाम हो रहा था वहाँ।

सिद्धार्थ फिर कहने लगे—“और वह प्रियतमा बराबरा। प्रियता-पूर्ण किसे जीव-संघिरी बताया है। उससे भी न पूछें।”

जन्मा नाम मुकुर सदन डी बराबरी। उसने सिद्धार्थ का हाथ पकड़ लिया।

फिर भी भीड़ न टूटी उगली। वह बोले—“फिर मेरा हाथ पकड़ लिया तुमने।”

परोवरा ने उन्हें धकपोरा।

सिद्धार्थ ने चाँहें मक-मककर बोलीं। परोवरा ने जमी तक उबका हाथ छोड़ा न था।

सिन्हे। कहीं से जाना चाह रही हो

जन्मा देखा तुमने।”

से चीखकर किसी

ही मेरी। क्यों

“मैं बोझों के ढेरों का सोने-ही-सोते ! किससे ?”

“मैं नहीं जानती ! मुझे भय लगने लगा !”

कई समय व्यतीत होने के अनंतर एक दिन आधी रात का समय होगा। पक्कपक पक्कपक की आवाजें सुनाई देने लगीं। उसने देखा, पीछे प्रकाश से दीपक जल रहे थे। पुत्रराज की शय्या की ओर झुकी हुई थी। वह गूँघरी थी। नींद में ही सो रही थी। बाहर से आती आवाजें सुनाई देने लगीं—“कहाँ गए ?” द्वार की ओर देखा—“कहाँ गए ?” उन्होंने ही जोका इसे। बाहर गए ? कहाँ ?” बराबर द्वार खोलकर बाहर आई।

शय्या पर सो रही थी। किसी का नहीं लगाया समय। मोरान-जैसी का प्रतिबिम्ब का प्रकाश में आई वह। प्रहरी भी सो रहे थे। कहाँ का द्वार भी सुन्न था। बड़ी तीव्र गति से दौड़ी हुई जहाँ गई वह। बिना के दर पर विराम पा गई। मिह-द्वार भी खुला पड़ा था।

बिना कोई मोच-दिवार किए ही वह बाहर निकल गई, नज़र पर, भुल गई। उसका मुँह खुल गया और वह कहने लगी उसका वक्तव्य में मैं कहने लगा। एक द्वार से बाहर का भीर वृक्ष से जोड़ी मैलावटी हुई पारों के बड़े हुए आकाश के नीचे खड़ी गई वह।

बातों की ओर दृष्टि कर देना समय। तोरण के मार्ग में किसी को जाने हुए देना। बाबा की मूर्ति-पी, इसके आकाश की वृष्ट-भूमि पर बसाया की रक्षा वहजानी—पुत्रराज ही थे। पुत्रराज अपने बचका अनुपराध किया।

मिहार्थ सीधे माथीर के आकाश पर पहुँचे। प्रहरी जाग रहा था। अपने हाथों से पुत्रराज—“कहाँ ?”

‘तुम जाग रहे हो प्रहरी ! मैं तुम्हारा पुत्रराज हूँ !’

‘पुत्रराज ?’ सारथी पूछा प्रहरी ने।

“हाँ।” बुधाराज उसके निकट पहुँच गये।—

“और बसोचरी भी तुम्हारे-द्विपते जगसे तुम्हें बुरी जर जल्दी बाध सुनने लगी।

“इस-कमरों और मवाबनी रात में आप क्यों जाग रहे हैं ? मैं समझता था आप हाँपोजासिय राजमन्त्र में पूँखों की कोमल स्निग्ध शब्दों पर विचार कर रहे होंगे।”

“कविजगद्गुरु के पुत्रराज के मन में जैन नहीं है प्रहरी। वह धो नहीं सकता था।”

“क्यों ? आप क्यों फिर रहे हैं ?”

“शक्ति का रूढ़ रहा हूँ। तुम सहायक नहीं हो सकोगे।”

“मैं खेदक ही हूँ आपका। मेरी पुच्छ शक्ति और साधना आपके कार्यों पर ही समर्पित है।”

“आपकी बात है। मैं तुम्हारे डककर का बड़का बहूँपा नहीं, हार मुक्त कर दो प्रहरी।”

“हार मुक्त कर हूँ।” चौककर प्रहरी बोला—“इस घामसी रात में आप काँसे क्यों ?”

“वह नहीं जानता प्रहरी। मैं तुम्हारी कविजगद्गुरु का सबसे बूझी पाँखी हूँ। मेरी सहायता करो, कोड़े डुका रहा है मुझे वहाँ के।”

“कहाँ के ?”

“यह भी नहीं जानता।”

“बुधाराज ! आपको क्या हो गया। हार नहीं कुछ सकता इत जलम में। मुझे जमा करो। चक्रिय, मैं आपके राजमन्त्र तक पहुँचा जाऊँगा।”

“बोझ दो प्रहरी ! महाराज मुक्त नहीं करेंगे। मैं शीघ्र ही बँट जाऊँगा। मैं साथ रत्न जटिल कीर्तिप्रीति जाँचो हूँ। सातों-बीघारों के

१) हाथों को ग्राह्य देने क छिये उपहार-स्वरूप । आ, इनमें से तुम एक
 चार लो ।" विद्वान् ने रँगुड़ियों से मरा हुआ हाथ ग्रहरी की ओर
 १) निकाला । ११० । १५ ।

ग्रहरी रु रुट गया— 'नहीं सुभराज ! बिना महाराज की आज्ञा
 १) के, आपक छिये यह द्वार मुक्त नहीं किया जायगा ।"

१) "क्यों ? !"

१) "नह में नहीं जानता । महाराज से पूछिए । मैं हाथ आकर
 आपके चारों में प्रार्थना करता हूँ । मेरा छात्रवत्तन मेरी
 १) कर्तव्य-व्यपश्रुता, से विमुक्त न कीजिए मुझे । यदि मैं लीफा से
 निष्काश दिया गया, तो फिर करने कुर्तुव का कैसे पावन
 १) करूँगा ?"

१) १) यशोवराज मल-हीन्य ग्रहरी की दृष्टि और स्वामियक्ति की
 १) प्रशंसा की ।

"अच्छा, मैं छोड़ गया ग्रहरी ! यह राज-ध्वज मेरा कारागार
 १) है । मैं अपना जीवन-बन्दी हूँ, इसे मैं जानता हूँ । यह मेरे छिये
 १) कुछ नहीं लज्जा, इसे तुम जानते हो । पर मेरा धरातल क्या है,
 इसे कोई नहीं जानता ।" विद्वान् छोड़ गए ।

१) १) उन्हें प्रार्थना देल बसोपाय कुछ पेह की ओर में हो गई । सुभराज
 १) क आगे बढ़ जान पर वह ग्रहरी के पास गई ।

१) १) "ओ, ग्रहरी, यह तुम्हारा पुत्र-हार ।" कहकर अपने ग्रहरी की ओर
 १) हाथ बढ़ाया ।

१) "क्या है यह ?"

१) "रँगुड़ी मणि ।"

१) १) "नहीं-नहीं !", पूर चला गया ग्रहरी । "मैं कोई पुत्र-हार नहीं
 ग्रहण करता । कीन हो तुम दय-वाक्यान्वी ?"

१) १) "तब क्यों नहीं ? यह द्वार खोल देने क छिये नहीं है । उसे

अपत्य ही रख सके, इसलिये है। तुम्हारे कर्तव्य की रक्ष पावना की अभ्यर्थना के लिये है।”

महरी जबर बसा—“कौन हो तुम ? ऐसी शून्य मिठा में तुम भी भय से अपराधिता हो ?”

“मैं हूँ तुम्हारी पुबराजी पलोभरा। डरो नहीं, जाती पर भी हूँ, अपत्य-अन्ध मित्रि-पति नहीं हूँ कोई। नहीं पहचाना मुझे ?”

“जब हा पुबराजी की जग हो।” जब स्वर में यह उदा महरी—
“तबो नहीं पहचाना।”

“तु रहो, बीरे बीरे दोहो। स्वयं मिठा ने घोर भी कँचा कर दिया तुम्हारे स्वर को।” जलोभरा ने कहा—“कोई सुनेगा।”

घोर दूर पर बीरठ हुए पुबराज ने सुना। मन्-बी-मन् हुबरापा उन्होंने—“पुबराजी की जग हो।” वह बीरे फिर धोरन की घोर।

महरी ने हाथ जोड़कर खैरूनी से की। पलोभरा मिठा हो गई राजमन्त्र को।

१. महरी उपहार के दर्ब के साथ पुबराज घोर पुबराजी के इस प्रकार पक्षित रात में बाहर निकल जाने के लक्ष्य को मित्राकर देखने लगा। उस बीरठी हुई जलोभरा को। जब वह दूर पर के जलकार या वृक्षों के मुरझुह में भी गई, तो उसने अपने हाथ पर की खैरूनी का देखा—“परम सुदर ! कैसी जमक रही है ?” उसने उसकी हाथ में उड़ाकर उसका भार जाल किया। मुँह पर संतोष प्रकट कर बोला—“ठीक है। यदि निकलकर रख खैरूना। आगामी मङ्गल-सम में आसन्न का जल जल जावगा।” उसने फिर दूर पर पर दृष्टि बाँधी—“कसे गल ?” उसने अपने मांसे के बीह-बीह सिर से बरती करकई—“मैं समझ गया। जब समझ गया। हमारे पुबराज की वह मान-बीका एक रही है।”

महरी जाकर अपने आसन्न पर बैठ गया, कुछ रोंका कर भार लेकर।

सुवर्ण-सिंहा

माया रत्न दिया भूमि पर, हाथ दिखाव ही कैसे पा से। विपुल
 पर हाथ रखकर मोचने लगा—“परंतु सुवर्ण का विवाह हुए
 अब दस-बारह वर्ष व्यतीत हो गए। मान और कोप के रिक्त कहीं
 रहे? कुछ भी हो, माया का सर्वत संपन्न दंड से व्यतीत होगा।”

मंद स्मित मुखों में चंचल के बीच से मार्ग निकालती हुई
 वह रही थी करोबरा। जवानक सिंहा को देखकर रुक गई।

“कीन, कटापरा! तुम कैसे यहीं आई हो, यह नहीं पता। तुम्हारा
 अब साथ किसने किया? वह बताओ।”

“जसी माली ने, जिसे तुम अपने यकीन न कर सके।” सुदु हास्य
 के साथ कटापरा बोली।

“बधा वह तुम्हारे किए हुए लोभ देने को मलुत हो गया।”

“वहीं वह अपने कर्तव्य पर अचल-अटल था। शिने उसे उमड़ी
 प्रकृति के जिये अपनी रीढ़ी उपहार में दे दी जो जय-घोष का
 कारण बनी।”

“बकी, तुम भी नहीं मुका सकी वह अचल-अटल। महाराज—
 केवल महाराज। न लका ऊर्ध्व की आशाओं से बनी है। बकी
 कीट बनें।”

करोबरा ने वही कल्प असहायता से सिंहा के हाथ पकड़
 लिए। वह दोनों हुरने देकर जब बृद्धि-मधुघ्न घाटी पर बैठ गई।
 वह केवल इतना ही कह सकी—“प्रियतम! रबामी!” कंद माया

तिरक से दूर हो गया, और जलित आँसुओं में बहा उठी।
 सिंहा ने करोबरा को भूमि पर से उठाकर अपनी मुखाओं में
 भर लिया—“क्यों-क्यों? देवी बिना का कारण क्या हो गया।”

“देवी बार बिना में मुझे जोड़कर तुम क्यों चले आए।”

“तुमसे क्या कहूँ? न करोमी तुम बिरबाम। वहसे मैं इन सब
 बातों का एक जल-ममकता था, परंतु अब समझने लगा हूँ, भय ही वह

८ तीन निमित्त

सुबह-सुबह धीरे भी बोल गये। पुत्रराज के मर के भीतर का वह गीत फिर जाग पड़ा, और उन्हें बाहर कर्मियों की स्तर-श्रद्धा विरम जान पड़ने लगी। उस अंतर-गीत की देवद्वार आत्मा उन्हें सुन पड़नी। उन्हें नहीं मरने समझने वह भले प्रकार। इधर कुछ दिन से कुछ देखने भी करते वह। पहले स्वयं में प्रस्ता वह। छोटा उसे उनका दृष्टि-विषय कहते। जब कठोरपरा ने भी उस पर अभिरुचि किया, तो वह फिर उसे मन में ही रखकर रह गए।

विश्वार्थ का फिर वहका-या स्वभाव हो जाने के कारण प्रजापती की बिना बह गई थी पर वह कभी-कभी आता बोल गई थी। कठोरपरा गर्भवती थी, और महारानी पिछार करती पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर कदाचित् पुत्रराज के सार्वभौमिक बंधन फिर रह जा सके।

कठोरपरा के कारण राजकुमार मंद ही विश्वार्थ के सुख-दुख का साथी था। मंद कभी-कभी महाराज के गोपनीय मंदिर के भीतर उनके निकट संबंधियों तथा नायक-अभिनेताओं के साथ एक पुरुष जाता था, साथ में गहरी और राजकुमार के लिए। यह सब विश्वार्थ से प्यारा जाना था। बीबी दीवार तक गया था मंद कबल भोगे था पौबही दीवार से परिवर्तित।

कभी एक-दो बार अगर देखने का हठ किया था राजकुमार मंद के महाराज के नामने नहीं महारानी प्रजापती के समक्ष।

एक दिन मंद के ऐसे ही हठ पर प्रजापती ने उससे कहा—

“देखा राजकुमार, तुम्हें नुबराज का ध्यान होना चाहिए। कसिबबलु तुम्हारे छिपे इतनी अवकल नहीं है, बिल्ली उनके छिपे। तुम्हें उनके इस बंधन के लिये समझेना होनी चाहिए। तुम्हारी बिल्ली बिल्ला रहती है उन्हें। सबसे ज़ाने बड़ जाने की सब काम-बाजों की बलि देनी चाहिए। अभी तुम कम ही तो दूर-दूर तक हमसे गए थे।”

“अपने छिपे नहीं, मैं नुबराज के छिपे ही कम रहा हूँ। इस प्रकार आँखें बंद कर एक दिशा है तुमने कसिबबलु के मापी महा-राज को। महाराज से कहो न, एक दिन उन्हें नगर-भ्रमण की आज्ञा दे दें। निदिष्ट कर ही जहाँ सबके पास ही से स्वयं निर्मल विमिर्षों की चौकसी के छिपे प्रसन्न कर दिया जाय। फिर क्या कर है।” नंद ने कहा।

प्रजापति बोली—“कर रहे हैं, महाराज शीघ्र ही इसका प्रबंध।”

नंद ने वह समाचार शीघ्र ही जाकर नुबराज को सुनाया।

पर सिद्धार्थ उस समय अन्य विचार में थे। बंद कर समाचार विचक्षित न कर सका उन्हें। उन्होंने कहा—“बंद, कई दिन से तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।”

नंद उनके निकट जाकर बैठ गया।

सिद्धार्थ कहने लगे—“बोली जलसा में मेरा विवाह कर दिया गया। मैं यह तो नहीं कहता कि यह एक जलसामाजिक बलु है। पर जैसे न जलसामों में देखा हुआ, राजमन के कार्य में जलसा हुआ हमी फिर बल-पर्वतों में भाल जाने के लिये कल्पना उठता है। ऐसी ही कुछ रहा मेरी हो गई। ये राजमन की सातों दीवारें पृथ्वी हैं, मैं इनके ऊपर से उड़ सकता हूँ। पर, पर स्वयंसेबी बली का मुच-मस, जहाँ, वह जलसेय बंधन है—दूर भी नहीं सकता, दूर भी नहीं।”

नंद मिर बीबा कर भुवराज की बात सुन रहा था।

“तुम्हारे विचार की चर्चा खर रही है। मैं अपने अनुभव में से तुम्हें दूँगा।” मिश्रायें चुप हो गए।

नंद बीठहक में मर पड़ा।

कुछ वक्त विचारकर फिर कहने लगे वह—“तुम कह दो राजकुमार, मैं विचार नहीं करता।”

नंद को ऐसा शांत हुआ माना भुवराज ने उसकी समृद्ध बलु पीन की कोई। वह बहुत विचार के सागर में डूब गया।

मिश्रायें ने इसे चुप देखकर कहा—“तुम्हारी मौजूदगी पर मैं बह-भूतक अपना वह अनुयायन चाहता नहीं चाहता। मेरे विचार में महमति हाने से ही राजकुमार। मैं तुमसे प्रीति नहीं करना चाहता कोई। विचार करना हम बात पर।”

“हाँ मैं विचार करूँगा।” नंद ने उत्तर दिया।

राजकुमार देवदत्त के मन में मिश्रायें ही नहीं, सारी बरिज बलु और राज्यों के उस समस्त गण-संघ के जिने वृथा डूबने लगे। आठों पान वह अनेक वर्षों से वहीं से दूर जाकर रहने का विचार और प्रयास कर रहा था।

अंत में अपने अपने विना को सम्मिल कर दिया। मगध की राजधानी राजगृह में महाराज विविचार की राजमहल में राजकुमार देवदत्त के आनुष्ठानिकी प्रीति का वद पाए हुए थे। उनके मतान नहीं थी कोई। उन्होंने की प्रपञ्च-वृद्ध देवदत्त का राजगृह में बुका दिया।

धीरे-धीरे देवदत्त का राजगृह के राजमहल में प्रवेश हो गया। देवदत्त और बीठ-भूत का वर था बहुत और बूट। मगध के भुवराज अनाच्छात्र का आन आकर्षित कर दिया उसने। धीरे-धीरे

अज्ञातशत्रु से इसका परिचय मित्रता में परिवर्त हो गया और मित्रता अभिलेखपत्र में परिचरित हो गई ।

दोनों की प्रकृति मित्रता-हृदयी थी । वेबद्वय ने अज्ञातशत्रु का ऐसा मंत्र पढ़ा, ऐसी मोहिली छाड़ी कि उसे बिना वेबद्वय को देखे पैर ही न पहना । अमरिभक्त में वेबद्वय समय के राजमन्त्र का अंतर्गत निवासी हो गया । वह राजमन्त्र में ही आकर रहने लगा ।

वेबद्वय के भाव की ठाठिका चमक उठी । वह सिद्धार्थ के प्रति आत्मा की हुई प्रतिहिंसा का दिन-दिन परिशुद्ध करने लगा । उसने अज्ञातशत्रु के जब ये भी कविचरित्र के बुभारज के द्विजे हुआ का बीज बो दिया ।

जंग में एक दिन महाराज टाइरोह्व को बुभारज सिद्धार्थ के मन्त्र-जमण का प्रवेश करना पड़ा । नगर का पूर्वीय भाग परिलुप्त किया गया । बुभार और विपार की वयुक्ति विकसलमेवात्रे समस्त ररर हटा दिए गए । कई दिन से नगर में राजाशा प्रचारित की गई कि नगर के इस भाग में कई बूढ़, रोगी प्रवेष्ट न करने पावे । वहाँ के सब बूढ़ रोगी, बूढ़क और बुझी बोगों को कई दिन पहले से ही अपने-आपने बरों के भीतर बंद रहना पड़ा । स्वाम-स्वाम पर प्रहरियों की विवृति की गई । वे निरोध मरुतकता से इन राजाशा के प्रतिपादन में सज्ज हो गए ।

सिद्धार्थ के समय के साथ के द्विजे राजकुमार नंद भी प्रलुप्त किए गए । सारा भार सीपा गया सारही बंधक का । निपट विधि की निपट बही पर बंधक के सुसज्जित सब राजमन्त्र के द्वार पर हा लगाया ।

दो घरबारोही बाबक भी उनके साथ जावे के द्विजे सज्ज थे—
बूढ़ बगली ; बाबा के अमयाम में बूढ़ा नजक ८ अनुमन्त्र कर्मा

हुआ। चारों दिमिचों से पुचराज की रक्षा करना उनका उद्देश था।
स्नान और भोजन के अनंतर।

दोनों राजकुमार चक्रवार और शरिचान चारचक्र महाराज
और महाराणी से बिदा ले रहे थे।

चरोचरा का सरल-कोमल हृदय चिता से विकस हो उठा।
राजमहल के हम रहस्य-विचार से कि पुचराज संन्यासी होकर अपने
कार्यो वह सिधुने कई दिनों से चिता-वर्जित होने लगी।

बह बड़ी माचकारी से बंदर के पाम छाई, और बड़ी
दीनता से बोली—“मारपी। रथ-सूत्र तुम्हारे हाथ में हैं। देको
पुचराज नहीं जाने न पायें।

बंदर ने धारवात्म्य पाम कीर गई वह कटाकमुत्ती। सिद्धार्थ
और नर को रथ में बिठाकर बंदर ने सूत्र पँमाते, बाइों को
चढ़ने का सकल दिया। रथ चक्र पड़ा।

पाँचों प्राचीरों पर क तोरण घाज मुक्त वे सिद्धार्थ की प्रगति
के धिये। प्रहरीगण मार्ग छोड़कर दिनत-बदन कड़े वे एक ओर।
विद्वार्थ ने अनुमन किया, बाचक माधक हो कठे घाज।

एक-एक कर पाँचों तोरणों का अटिष्ठमन कर विद्वार्थ ने नगर
में प्रवेश किया। चक्र-सुपजिन सकल पर अनुप्य घामंद और
हम्याह से पुचराज की धम्मर्भदा और बच-बोच कर रहे थे। चिपों
घासविकाधा पर से उनक ऊपर चञ्चल। और पुण्यों की वृद्धि कर रही
थी। महु-महु ररों में उनके रचागत के भीत गा रही थीं। उनकी,
धारती कर रही थीं।

“देसे मय और घाजका के कई बिद्ध नहीं पुत्र रहा हैं राज
कुमार नर। फिर क्यों यह नगर इतने दिनों तक हमारी चान्तों की
घाट में रथ दिया गया। प्रजा बड़ी, प्रमथ चित और सुत्री प्रतीत
हो रही है। बंदर, क्या वे सिधु इनी प्रचार करते हैं?”

“बुधराज के चारुवर्ष वरुण इन्हें आम हुए हैं, इसी से वरुण का पालन नहीं है।” ब्रह्म ने अरु को ब्रिपते कहा।

“मैं इनका पुत्रराज, इन्का सुखी नहीं हूँ।”

एक बौद्ध-सा ब्राह्मण “बुधराज की जय हो।” कहता हुआ एक पूरुष की माका लेकर रथ के दिक्कुल संपर्क में ही आ गया। अरुणियों की चीख बचाकर।

“है। है। अरुणी ब्राह्मण।” कहते हुए ब्रह्म ने बड़े क्रोध से रथ रोक दिया—“अभी रथ के चक्र के बीचों में आ गए हो। कैसे जाया-पिया है तुम्हारे।”

“नहीं-नहीं ब्रह्म। ऐसे कबे अरुण व भिक्षुको मुक्त से। तुम्हारे दिक्कुली पाकर भी ब्राह्मण का अन्ताह चीख नहीं हुआ है। वरुण का हुआ ही रहने दो, मुझे यह ब्राह्मण बड़ा मिय मतीव हो रहा है। इसकी आका पूर्ण हो जाने दो। यह माका मुझे बहाना चाहता है अपने ही हाथों से।”

बुधराज से अमर पाकर ब्राह्मण अरुणी धोर बढ़ गया, आरुणिक ब्रह्मचर्य हुआ।

“आओ आओ, मैं तुम्हें गोद में लूँगा।” बुधराज ने अरु ब्राह्मण को रथ पर अरुण अरुणी गोद में ले लिया।

ब्राह्मण ने बड़ी विमर्षता से अपनी पीठ बुधराज के गर्भ में पहना दी।

“बड़ा सुंदर ब्राह्मण है यह।” ब्रह्मर्षि ने कहा।

ब्रह्म रथ पर से नीचे उतर पड़ा था। उस ब्राह्मण को रथ से नीचे उतार देने के लिये हाथ बढ़ाते हुए बोला।

बोला—“मायाव की कृपा होगी, वो लीम ही बुधराज को अरुण होया इससे भी बड़ी सुंदर पुत्र-लव।”

“तुमने अन्ध्र उद्देश्य के यह वाक्य कहा। पर मैं विकल हो रहा हूँ हमसे बँधक।” पुनराज बोले।

“आओ, अब उतर पड़ो बाइक, हमें विनय हो रहा है।” बँधक ने कहा।

‘रथ में वापस करने पर भी फूट-फूट की राशि एकत्र हो गई है। बँधक हममें से हम बाइक को दे दो।’

बँधक ने उस बाइक का रथ पर से घूमि पर उतारकर उसके अन्तरीय में बहुत-से फूट बाँधकर उसे दे दिए।

रथ आगे बढ़ा। वही कठिनाई से प्रहरी भीड़ को रैमासे हुए थे। रथ बहुत धीरे-धीरे मार्ग में बढ़ रहा था। पुनराज के हृदय में भगवद्-दर्शन की अनुभूति बहुत थी, पर दर्शन का संतोष तब-मात्र ही नहीं दिखाई पड़ा उनके मुख पर।

श्रीगुरु से मरे हुए वह न-जाने क्या सोच रहे थे। किसी क्षिपे धीरे एक हुए को, जैसे उसका साथ उनका बहुत दिनों का परिचय है। कोई भी बलु असाधारण न दिखाई दी उन्हें। वह मन में सोचने लगे—“किन्हीं किम्वदित्तों मेरे मन में इतना आग्रह उत्पन्न हुआ। वहाँ तो बड़ी जगत् है, जैसा राजमन्त्र की बीमार से बिरा हुआ। केवल आकार-रूप में कुछ दिखाई। उन्होंने बँधक से कहा—‘बँधक, तुमने मेरे धर्म का उत्तर नहीं दिया?’

हाथ जोड़कर वह बोला—“किन्हीं धर्म का उत्तर पुनराज।”

‘क्या वह प्रश्न सदैव ऐसी प्रश्न और परितुष्ट रहती है?’

‘सदैव प्रश्न कीन रहता है। प्रत्येक बलु का जोर है, सीमा है। एक द्वार से दूसरे द्वार तक का आकर्षण धीरे-धीरे प्रत्यावर्तन जगत् ही रहता है—इसी का नाम जीवन है। सुख के अनन्तर दुःख, दिन की अनुमरण-कारिणी रात्रि, हर्ष के पीछे विषाद जीवन में जगत् ही हुआ है।’

“भैंस, हे भैंसक ! मैंने बसंत की, कृमिमत्ता, बहुत देव एक
हे मुझे दूसरा सिरा दिखाओ। यह पथ कहाँ को गया है ?”

“यह एक गली है।”

“कहाँ से चलो ?”

“गली संकीर्ण है बुधराज, भीड़ से भरी। रथ से किसी के
घोर जग जायगी।”

“कहाँ, हम पैदल ही चलो।”

“वहीं बुधराज पैदल नहीं जा सकते, भीड़ में मिथकर।”

“कहाँ ?”

“महाराज की आज्ञा और एक प्रचलित प्रथा।”

सिंहार्य उदास हो गए।

भैंस ने कुछ दूर भीर जाकर रथ रोक दिया—“बुधराज,
हमारी यात्रा यहाँ पर समाप्त होती है। आज्ञा दीजिए कि
रथ राजमहल की ओर खींचा जाय।”

“खींचा हो।” बड़ी उदासीनता से बुधराज ने कहा।

भैंस ने रथ खींचा। बाँधों ने राजमहल की ओर पैर बढ़ाए।

“तुम्हारे मुख पर प्रचलित भाव कह रहे हैं, तुम इस भ्रमण
से संतुष्ट हुए हो।” भैंस की ओर सकोपन का बुधराज बोले।

भैंस ने मिथ्या मुस्करान की रेखाएँ प्रकट कीं मुख पर।

पथ के दाँवों और एकत्र जन-समूह के बीच से, जविराम जय-
बाज में फूलों की वर्षा के होकर भैंस रथ से जा रहा था। इस
बार पहलू की धपेछा कुछ तीव्र गति से। रथ चार की जीवरी
दीवार के प्रवेष्ट पर आया। भैंस ने न-जाने क्यों रथ का पैर
जमिक कर दिया।

— इत्यत् बुधराज बिह्वत्—“बढ़ते सारथी, खींचा हो रथ।”

उन्होंने पीछे की ओर प्रवेष्ट कर कहा—“वहाँ-वर ल चलो।

फिती ने मुझे पुकारा वही समझती बाड़ी मैं। वह वहाँ पर हलचल ही नहीं है। वहाँ से चलो। मैं देखूँगा, बड़ कीज है।”

उस भीड़ में प्रहरी एक मनुष्य को धक्का देकर पीछे की ओर कर रहे थे।

“वहाँ से घा सरा वह वहाँ। हटा पीछे।” एक प्रहरी ने कहा।

दूसरे ने उसका हाथ पकड़ पीछे की ओर खिंचा।

उस मनुष्य के बाट छग गई। वह वही कमल कीकार बन गया।

सिद्धिक का हम खींचकर वहाँ पर जाया गया।

“वह, इहो तुम क्यों मार रहे हो इस व्यक्ति का। हमने क्या अपराध किया। इसे मेरे सम्मुख लाओ।”

वह व्यक्ति सिद्धिक के समीप जाया जाने लगा।

सिद्धिक ने बड़े भय और चिन्ता के साथ मेरे शिर की ओर देखाकर कहा—“बड़क, वह कैसा अद्भुत मनुष्य है। हमके चेहरे की हमलु सब श्रेष्ठ हैं। मुझ सुनिधि से मारा हुआ, कमल देही, वही अद्भुतता से काँटी के सहारे मेरे पाम तक आ रहा है।

बड़क चिन्तित-विमूढ़ होकर, कुछ हाँ लावने लगा—“क्या बल है हमें। वह पहला मिमिच, इतनी सावधानी करते वर भी वहाँ से कुछ पड़ा वहाँ।”

उस मनुष्य ने अवलोकित हुए पुत्राज के सामने आकर हाथ जोड़ कहा, अत्यन्त और दृढ़-मृदु बाणी में—“पुत्राज की वर।”

“है। इतना सारा जग कर्त्तव्य है, बाकी भी सत्य नहीं। जान पड़ता है, धर्मों से भी कम दिखाई देता है।”

“हाँ पुत्राज, धर्मों से भी कम दिखाई देता है। एक छोटे मित्रपुत्र ही मृत गई।” उस व्यक्ति ने हवीय स्वरों में कहा।

“बंदक !” सिद्धार्थ ने सारथी की ओर मुँह किया ।

बंदक के घोंग हैं कपड़े, तो रुक नहीं । उसने सोचकर भिल किया कि अब जब निमित्त सामने हो गया है, तो उसे बाग़बाज धं रुक देना सूझता हागी । बंदक बोला—“हाँ मुबराज !

“बंदक ! वह भी क्या मनुष्य है ?”

“हाँ मुबराज ! वह बूढ़ मनुष्य है ।”

“कहा मज्जुत ! क्या विधि । आज तक नहीं देखा मैं कभी कोई ऐसा ! ऐसा चीख, ऐसा दुर्बल, इतना निरीह और इतना निर्यास !”

“भगवान् का निष्कम मुबराज ! एक दिन सभी को इस जर्म पर धाला है ।” बूढ़ ने कमर पकड़कर निर्यास छोड़ी ।

“बंदक ! वह मनुष्य क्या सब बोझ रहा है ?”

“हाँ महाराज !”

“क्या मैं एक दिन ऐसा ही जर्जर, चीख वंगु और धंका हो जाऊँगा ?”

बंदक ने धीरे-धीरे कहा—“इसे बुढावस्था कहते हैं मुबराज ! बुढावस्था के परवान् सभी की देह धीरे-धीरे चीख होने लगती है ।”

“क्या बरौबरा भी एक दिन ऐसी ही हो जावगी ?”

“सृष्टि के इस निधम का अन्तर्भाव कोई भी नहीं है । एक से लेकर राजा तक मूर्ख से लेकर पंडित तक, बूढ़ बोलते-ले कीट से लेकर मनुष्य तक, सभी को इस बरा के समीप जगित होना पक्य है ।

“आरचर्च ! ऐसे सुंदर बीरव की कसि से भरे हुए शरीर का ऐसा परिचाम ! कैसा हाँक रहा है वह मनुष्य ! सारा शरीर सूख गया है, स्थिर होकर गया नहीं हो सक रहा है । पक्य निष्कम है,

धौत भी सब हूँ गढ़ जान पड़ते हैं ! केवल इष्टियों का एक निगर !
 बँदक ! मुझे अब क्या पता है ।”

प्रहरी उस हूँ को इशारे धरो ।

‘नहीं-वही इन्हें मेरे सामने रहने दो जमी । मैंने बहुत दिनों के
 परखात इन्हें देखा है । इन्हीं को देखने के लिये तो मैं आया हूँ यहाँ ।’

हूँ ने फिर विडम्बित बाणी में कहा — “सु-ब-ना-ज की जगह हो ।”

‘तुम क्या चाहते हो ?’ सिद्धारथ ने पूछा ।

‘कीन द सज्जा है ?’ हूँ ने कहा ।

‘मैं प्रबल करूँगा ।’

‘नहीं दे सकते । बुधराज, येरी छुटी चीज में दे सकते हो
 ज्योति ?’

बुधराज ने समझाव होकर पहर की घोर देखा — ‘नहीं ही का
 सज्जा ज्योति ! किसी प्रकार नहीं ?’

‘नहीं बुधराज, किसी प्रकार नहीं ।’ बँदक बोला ।

‘मैंने पहले ही कह दिया था बुधराज !’ हूँ बोला ।

‘कितनी सरसता है तुम्हारी बाणी और चेष्टा में !’ बुधराज
 ने कहा ।

‘वात्स्यायन्या और बृहदायत्या की तुलना कर कहा जाता है, वे
 समानता से नहीं हैं ।’ बँदक बोला ।

‘जबल एक चीज है ।’ हूँ ने कमर पर हाथ रख वहीं कठिनता
 से फिर बड़ाकर कहा — “वात्स्यायन्या में प्रकृति से जल विभा
 जाता है, और बृहदायत्या इसे बुका देने का समर्थ है । अब मुझे
 पता हो ।” हूँ बाड़ी टेक-टेककर जाने लगा ।

‘प्रहरी, इन्हें इनक पर एक बँदक हो ।’ सिद्धारथ ने कहा ।

हूँ प्रहरी मीन बसावा हुआ, हुआ उस हूँ का हाथ बलबल
 उभे से कहा ।

बदल ने दोनों की सामझोर खींची ।

“बुरक ! और भी ऐसे बुर हैं, कितने ?”

“अनेक ।”

“फिर मैंने औरों को क्यों नहीं देखा ?”

“बुरक और असहाय होने के कारण भीड़ में क्यों आते ?”

रथ पीछों प्राचीरों के छोरों को पार कर राजमहल में जा पहुँच

महाराज ने पूछा—“अगस्त-अमल क्या बुकराज ?”

बुरक सकस्य पुनः मैं रहस्य को विशाकर बुकराज ने कहा—

महाराज, अगर देखा ।”

बुरक अपराधी-सा, रथ द्वार पर उतरकर खड़ा हो गया महाराज के सामने ।

नंद के मुँह पर भी प्रसन्नता न थी । मुँह बरकाप बह । कहा था बुकराज के पारबें में ।

प्रजापति ने पूछा—“सकते अनेक कीच-सी बसु बधिकर हु तुम्हें बुकराज ?”

“अब के बह बुर-कीच बुर, जो पीचन का अपरिहार्य बुर है । मुझे उत बुर बुर—

“बुर-” महाराज दुर्बोधन में आये कीच और आये परबाबा में गरकर बुर कीसे होयो हाथ मले, और बुरक की ओर देखा ।

बुरक ने आकरत की ओर संक्षिप्त कर कहा—“महाबाह की हथ्वा सलसे प्रबल है महाराज ।”

सिवाय बगोकरा के बुर में चले गए । दुर्बोधन राजकुमार नंद के पूछने लगे—“कहाँ, कब और कैसे बह बुकरा जा गया । बह किसकी आसाबबानी से बह सूख हुई, इसकी शोच मैं लगे ।

“बगोबरे, मैं इस बुर और कीचन की शोमा के बुरान कर आया हूँ बरम खंदर । बरम मनोहर ।” सिद्धार्थ ने कहा ।

एक पहेली-भी हल करने लगी बग़ावत । वह गर्म के भार से प्रमत्ता, कोमलामिनी पुष्पराज की अन्धमयरकता से और भी बिगम-मग्ना हो गई थी दूसरे कई मास से ।

पुष्पराज ने कहा—“आश्चर्य है, मैंने आज तक उसे नहीं देखा । वह बिपा बिपा गया मुझ से हठने दिनों !”

बग़ावत जोर उठी ! समझ गई कि पुष्पराज का आज किसी निमित्त का इरादा हो गए ।

“बपों, तुम क्यों जाँच रही ? क्या तुमने कभी कोई बुरा देखा है ? और फिर दरवाज़े में खड़ी प्रतिष्ठादि दखकर वह भी बिचार दिया है कि वह क्या देखा मैं रखने हुए कुछ की भाँति एक दिन वह जावता !” मित्रार्थ ने कहा ।

बग़ावत अर्धत विरुद्ध हो उठी ।

मित्रार्थ ने फिर कहा—“बीचन का बही करण है, या वह मिरा यमी और कुछ बुर तक गया है ?”

इसके परचाए पुष्पराज एक दिन जगत् की खिन्न दिशा में प्रमत्त के स्थिते गए । वहाँ उन्होंने दूसरा निमित्त भी देखा । राज्य की सारी सत्तर्कता और प्रबल घरे ही रह गए ।

‘वह कैसा मनुष्य है मगराही ? क्या वह भी बुरा है ? पुष्पराज ने पूछा ।

“नहीं वह बुरा नहीं है ।” दरुक्त में उत्तर दिया ।

“फिर ? वह तो भूमि पर पड़ा है, बह भी नहीं मरता । बड़े चारों स्तर में कराह रहा है ।”

“वह पुष्पराज ही है राग में हलकी पैदा हुआ कर रही है ।”

“क्या बीचन का एक राग हीर है वह रोग ?”

“किसी बीचन का ही नहीं, प्रत्येक अक्षरका का ।”

“और प्रत्येक मनुष्य का भी ?”

"हाँ।"

"मेरा भी ?"

"हाँ पुराण।"

"कब ?"

"जिन्ही समय भी। वह शरीर बीच तलों से निर्मित है। तलों के स्पर्शमान होने पर रोग दबा लेता है।"

"कितना कुस्म और मज्जित हो गया है वह। चारों ओर कफ एक-एककर हस्तों पर बिछा है। मज्जित्वाँ भिन्नभिन्न रही हैं और दुर्गन्धि आ रही है।"

"हसीकिये तो मैंने तब हस्तों दूर-दूर रोका है।" बंदक ने उत्तर दिया— "छीट चढ़े चप।"

"तुम्हारी इच्छा बंदक ?" सिद्धार्थ ने कहा— "तुम्हारा हस्तों पर बिछा कफ शरीर और रोग इसके चप-चप का बैरी। और हम इसे भूख आने का परिश्रम कर रहे हैं। चप में कब तक ?"

बंदक तब राजमहल की ओर से आने लगा, और मन में सोचने लगा— "अब भी जो कितना दिवाया गया था, उल्टा ही प्रकट हो गया।"

"बंदक ! कहीं दूर नहीं से आ सकते तब ?"

"कहाँ पुराण ?"

"दूर-दूर—कहीं दूर, बंदक ! जरा और रोग से दूर।"

"देता स्थाय कहीं नहीं है पुराण ?"

"होगा। सूर्य की परिरिति से बाहर कहीं। वहाँ बीच-बीचों की बाट से बीच नहीं हो जाता। दुर्गन्धि नहीं आता है, कोई देमा स्थान।"

"कहाँ ?"

"मैं भी नहीं जानता। तब चलो, राजमहल को ही चलो। कहीं कब

तीव्र निमित्त

आर बीरन को धीरे-धीरे समय के इंतज़ार में बिगड़ होता हुआ देखेगा। जिसको अपना धीर दिव्य समझा है, उन्हें रोय में समझायें होकर मृमि पर तड़पने देंगे। बड़ा मारबि, मृत बैग से बड़ा।” हमके परचाए फिर एक दिन मिहारी नगर के पश्चिम भाग का परिश्रम करने के बिये निकले।

बंदक पर ही से उन्माद-हीन था। महाराज भी पुत्रराज के हा निमित्तों को दख लेने के कारण अपनी शक्ति का विरहाम का लुक थे।

“बह क्या बंदक! वह क्या से जा रहे हैं अपने कभी पर लखर? का काबाहक करते हुए। लुक जाता दूर भी कर रहे हैं। उधर से बसो रप। है ये ता हवा ही जा रहे हैं। रब तक ही दूरक! मैं देखूँगा, वह क्या है।”

“देखा क्या देखने पाय है वह। पागे बड़े पुत्रराज!” पुत्रराज ने लुक पर ही बंदक के हाथ में के—“बंदक कभी धक्का नहीं की है तुमने मेरी। उधर। मैं अचरित देखूँगा इसे।” बंदक ने बड़ी गंभीर के साथ रब रोक दिया।

“क्या है वह? बर-यात्रा है? लेकिन ये दककर क्या से जा रहे हैं।”

“बह दख-यात्रा है।” दूरक का बाप्य होकर रहल लाजना पड़ा।

“शब क्या हुआ?”

“मनुष्य-शरीर। जिसके बाप्य एत गये हों, जिसकी मनुष्य हा गये हों।”

“मनुष्य! जानता हूँ इसे। क्या मनुष्य की भी मनुष्य हा जाना है?”

“बीर-यात्रा का यही परिणाम है।”

“यह सम्भव, रोग और मर के साधन इसी की सिद्धि है !”

शव-यात्रा निकट ही आ गई थी ।

एक बूढ़-वृषपति रो रहे थे—“हाव हमारा कुछ !”

एक बाबूक झिझका रहा था—“हाव मेरे लिए !”

बाबू-बिकारे एक पुबटी तिर दीवत रही थी—“हाव मेरे पति !”

“अहो मुझे भी एक लेने दो ।” बड़कर सिद्धार्थ ने उन लोगों को रोक दिया ।

शव का मुक्त कोखा गया । सिद्धार्थ ने उसे भले प्रकार देखा और वे लोग आगे चले गये ।

‘कैसा मिस्त्रेन और बिचर्य मुक्त, एक दिन वह हमारी ही भाँति होगा । इंसानों में बेहार्न और मर में संकल्प किए हुए !’

“हाँ बुधराज !

‘और एक दिन हम भी ऐसे ही हो जाएंगे !’

‘अवरणमेव !’

‘बन, बह कीर्ति और बुद्धि कोई भी न बचा सकेगी !’

‘वही बुधराज, कोई भी न बचा सकेगी !’

सिद्धार्थ ने वहीं गहरी साँस छोड़कर कहा—‘हमारे मुक्त के स्वप्न वहाँ पर आकर परवर्धित होते हैं । हमारे विश्वास के अर्थों की मूल-मिति वहाँ पर है ! वह शव अब किसी काम का नहीं रहा !’

“वही बुधराज !”

‘‘वे कहाँ से आ रहे हैं उसे !’

‘‘रमणान में से आकर उसे भस्मीभूत कर देंगे !’

‘‘वही अंत है हमारे इस अर्धत बह और बुद्धार से आश्रित-पाश्रित दुह का ! एक मायब, बड़ी सावधानी से तु भूमि पर चल रहा है । हमबिचे नहीं कि कहीं कोई छुमि-छिन्ने कुछ बचावना,

का इसलिये कि तेरे पैर में कहीं कोई खेद न हो, कोई दुःख-बुदबुद न तुम बाध ! और यह क्या होगा ! जब अग्नि की शिखारें अपनी अक्षयपाती हुई शिखारों के तेरी लम्बा को खेदकर तेरा रक्त-पान करेंगी, जब बाह-बाह घोंगाती पर तेरी इष्टियों का पंजर अक्षयपाती, यह क्या होगा ! जब को अक्षय के सब हीट आर्सेन के को ! क्यों बंदक !”

“हाँ महाराज !”

“और वे सब फिर एक करिष्य पुन-विक्रम हास्य-रंग में मिश्र होकर अपनी मृत्यु की स्थिति को एक होंगे, एक के ऊपर दूसरा आधरव दाखकर ।”

“ममी जानते हैं पुनराज ! मृत्यु अक्षयपाती है ।”

“मही बंदक, कोई नहीं जानता ! मृत्यु की यह मायुगी कैसी क्षिपा ही गई मुझसे ! मैं जान गया था अभी दिन, फिर दिन मिले फिर कुछ पुन को भूमि पर अक्षय पर दाख था । मृत्यु के अक्षय विषय और कोई वस्तु नहीं है मेरे । फिर उसे क्षिपा के क्षिपे इतनी हीनारों का आपोवन मित्रा गया ।”

“मुझा है, वे हीनारों परसे ही से भी पुनराज, हमारे अक्षय से भी पूर्व ।”

“आ कुप हो, मैंने अक्षय का यह एक मोर आज देखा और पहचाना । इसका दूसरा जोर !—”

इसी समय राजमहल से एक अरबातोही रथ के समीप पहुँचा, और उसने हाथ जोड़कर विवेक किया—“पुनराज को बधाई है ! पुनराजी ने अभी-अभी एक मुहर दाख का अक्षय दिया है ! यह आज और करिष्य के क्षिपे अक्षयपाती हो ! महाराज को बधाईय राजमहल में जीमाह की अवस्थिति बाधनीय है ।”

बंदूक बोझा—“आ ही यह जब तो राजमहल के निकट :
 एक ही हीबार और बार करती है ।”

महाराज और महारानी बुधराज का स्वागत करने के लिये
 और उन्हें पुत्र-वन्धन का सुसमाचार सुनाने के लिये सिंहास पर
 उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे । पर सिंहास वूसरे ही मार्ग का
 अतिक्रमण कर विचरप-हरप और दिनठ-मस्तक से अपने कंध
 में चले गए ।

महाराज समझते थे, पुत्र के जैसे मोह में मैं आबर हूँ, पुत्र
 के कल्पक होने पर ऐसे ही ममत्व के बाव में सिंहास भी चले
 जाएंगे । पर ऐसा न हुआ ।



६ महाभिनिष्क्रमण

हृदय

न निमित्तों के दर्शन कर लेने पर बुधराज की बड़ी विचित्र दशा हो गई ! जगत् की गहराई मूर्तिमती होकर, विषर और अचक होकर उनके सामने खड़ी हो गई । ऐसे विचित्र और विह्वल मिन्नार्थ पहले कभी नहीं देखे गए !

महाराज और महारानी ने जब यह सुना कि बुधराज ने सीमरा निमित्त भी देना दिया, तो उनके मन्त्रियों पर भी अचानक बरपाव हो गया ! वह बड़े बिरादू आपाइन से पीछे का सम्मान्यता बना रहे थे पर पुत्र की धार से एक पछाव आराध्य शक्ति की भाँति उनके हृदय का घेरने लगी थी ।

सूत्रिका-गृह में बसोबस का हुल्लाह मीन जानता है । प्रियत की बेइया और पति की धोर से अचानक बिठा । रात की कुरे-कुरे लय दिलाई दिए उसे, दिव-नर दरावनी कल्पनाओं ने घेर लिया उसे ।

बड़ी धीर और गंभीर पति से बुधराज ने प्रमृति गृह में प्रवेश किया । जीवन का एक मिरा दल तुझे ये वह दिन में दूमा दिया देखने के लिये पर बढ़ाया ।

मारा राजमन्त्र अचानक से प्रतिप्रस्थित गुजरित और जलमगा रहा था । निरा-माता के आग्रह की अपेक्षा कम ही थी उन्होंने । बुद्धि के अर्धतर लयः बहर जाने के लिये पैर बढ़ गए ।

प्रमृति-गृह समस्त हर्ष और आनंद का केंद्र बना हुआ था, मिन्नार्थ ने उनके भीतर प्रवेश कर देना । अनेक दामिनों के बीच

में बिनी हुई महाराणी प्रजापती अपने हाथों से नवजात बाल की परिचर्या में संलग्न थीं। बगोचरा दुग्ध केन-निम दूध और कोमल शब्दा पर एक हल्की कबान बादर से मुँह उलझ सो रही थी।

सिद्धार्थ को देखते ही विशेष आदर प्रकट कर दासियों ने दूध और की हाथ भरती जोर दिया। उनका ध्यान बसाए सहचर्मिणी की ओर ही खिंचा, पर शिष्टता ने पैरों में बेचिपाई डाल दी।

प्रजापती ने बुधराज की ओर शिष्ट को बढ़ाकर कहा—“ओ, भगवान् की इस नवीन सृष्टि के दर्शन करो।”

बुधराज को बड़ी अविष्टा से कबर देखना पड़ा। दसरा, छे कबर छवि स्थिर हो गई। जीवन के हेतु आकाशित, उस असहाय और भेतना-विरहित शिष्ट की चेष्टाएँ उनके हृदय में बर कर गईं।

“ओ इन्हें माद में ओ।” कहा महाराणी ने।

हाथ बाँधे हुए बड़े से समी तक सिद्धार्थ, लुल पड़े। दुग्ध के भार के मध्य उस शिष्ट को उन्होंने अपनी गोद में खिंचा—“अम्म और अरुण के इन दो सिरों में बड़े हुए का नाम बीच है। क्या बही मनुष्य का आरंभ है।”

“तुम्हारी इस लक्ष्मी का न वह समय है न हमें अकल्प। भगवान् से आर्यना करती हैं, और तुम हमें को अमरीर्षि देती हैं कि विशाल रहो।”

“आज तुम्हारे मुँह से यह विशाल-माप्ति का कैसा आर्यर्षि सुना जीवन में पहिलेपहिल।” सिद्धार्थ ने कहा।

“अन न की तुम्हारे दीर्घ जीवन की कामना।”

“अन में आज ही।” सिद्धार्थ ने शिष्ट माता की ओर बढ़ाया।

प्रजापती ने शिष्ट का करवी रक्षा में ले खिंचा।

सिद्धान्त ने कहा—“निमित्त-द्वय के परचाए म-त्राये कितनी शब्दावधिर्पाँ कियी हुई गुहाओं में से निम्न-निम्नजन मेरे सम्मुख आ रही हैं।”

प्रजापती ने चौंकर कहा—“कैसा निमित्त-द्वय ?”

“मैं स्वयं ही तुमसे पूछना चाहता था निमित्त-द्वय क्या हुआ ?”

“किससे कहा ?”

“मैंने महाराज को कहते हुए सुना। वह प्रदरिओं पर क्रोध हो रहे थे कि उन्होंने मुझे बीसरा निमित्त भी दिखा दिया।”

“निमित्त कारण से कहते हैं ? और क्या हुआ ?”

“किसका कारण ?”

“शिवी बल्लु का भी। जैसे दिन का कारण सूर्य है।”

“क्या रात नहीं ?”

प्रजापती के मुख पर कुछ उद्विग्न प्रकटी। वह बोली—“मैं नहीं जानती।”

“जैसे धनु का कारण अन्न है ?” सिद्धान्त ने कुछ विचारकर फिर पूछा।

प्रजापती ने पर्यट उद्विग्न होकर कहा—“नहीं। युवराज, हम तुम्हें हम प्रसूति-गृह के भीतर ऐसे अमंगल शब्दों का उच्चारण न करने देंगी। यदि तुम कोई दूसरा प्रकरण नहीं देख सकते तो बीच रहकर हमारी बातें सुनो।”

युवराज ने फिर परीक्षा की पार देखा। वह अभी तक नहीं आती थी, अभी प्रकार मो रही थी।

सिद्धान्त के मुख-मंडल पर चिंता का अल्प संकेत कर महाराज बोली—“अगर अस्वस्थ है प्रसूता का। वही गहरी श्वासे में आ रही है। तुम्हें क्या कुछ करना है तबले ?”

इस अनुमति-सी मुझ पर दिक्कत सिद्धाच ने कहा—“नहीं।”
 “उन्हें विनाश देने देना चाहिए हमें।” प्रजापती ने
 कहा। मिहार्थ खौट गए।

आधी रात के आसपास जब आसप सुप्त हो गया था, राजभवन
 में जब केवल प्रदीपक ही जल रहे थे, तब अनामक-नयन कुशराज
 भी नींदन और मरुत के विचारों में डूबे हुए थे। आज उनकी
 गति-विधि पर अनुशासन रखने वाली पराजय अनुपस्थित थी।

कभी कब में उठते। कभी कुछ हुए गवाह से बाहर
 किया की सुन्दरता में डूबे हुए होते। कभी मंच पर बैठ जाते, दीर्घ
 रसास लेते, और कभी फिर शय्या पर पड़ जाते। किसी प्रकार
 चैन नहीं कहीं पर लायि नहीं।

वही विरवास-याद और बहुत समझ-बुझकर कथावता ने हो
 दासिनी मिहार्थ की सेवा के बिना के बिना लेख रखी थी। बसोपरा
 ने वही विनय और आग्रह से उनसे सबकुछ बोल लेने के बिना
 कहा लगा था। दिक्कत की यही हुई बेचारी, शीघ्र ही
 उनकी जानों में नींद पड़ गई थी, और सोने आदि भर रही थी।

कुशराज द्वार जोरकर बपन की ओर जाने के उद्देश्य से बाहर
 निकल आए। प्यारी की आँख बचाकर सीधे अपने द्वार और
 चित्त-परिचित बालुच के बेड़ के नीचे चले गए।

प्रकृति में सर्वत्र ही बैठ सुन्दरता आई हुई थी। कभी-कभी
 पवन की मंद गति हुए के पत्रों पर सरसराहट बपन रही थी।

मिहार्थ ने कुछ के लगे का सहारा दिया और मन में विचारने
 लगे—“फिर केवल एक ही क्यों धनु के बंध से निकल हो
 गया। बसते विनय होकर सभी चैन की नींद ले रहे हैं। मैं
 नहीं सो सका। मैं इस सुधीनेय संस्कार को औरक उतर्क
 कोई मार्ग निकालना चाहता हूँ। निष्ठा की नींद में जोड़ हुए

जानू! मैं तेरी ही पीड़ा से विकसित हूँ। तू सो रह, मैं जागकर तेरी पीड़ा की ओर ध्यान करूँगा।"

किन्हीं के पैरों की आहट झटक हुई। उसके परचाट ही वह बिड़बुड़ समीप का गया मिहार्चक। हाँ-सीमा मूर्ति, अपने ही प्रकाश से बालक, उस चंचलता में स्वयं दिखाई देने लगा। वह कपास बरस पड़े हुए था। उसके मुख पर आनंद था, और उसके हाथ में एक मिठाई का पात्र।

"कीन हो तुम ? तुम भी जाग रहे हो इस मूक निरा में ? क्यों ? किसलिए ? पर ज्यादातरता का कोई चिह्न नहीं है तुम्हारे मुख और तुम्हारी गति में। कीन हो तुम ?"

"मैं एक क्षमक लम्बायी हूँ।" बड़ी मृदु और भीर बायी उस वह मनुष्य बोला।

"क्या तुम्हें अज्ञान नहीं, मारा जाना, व्याधि और मृत्यु के कठोर वेगों से द्रवित है ?"

"जानता हूँ। इसीलिए तो वह भीरव और वह निरा का पात्र आरम्भ किया है कि उस वस्तु की ओर कद, जिस पर जरा का प्रभाव नहीं, जो व्याधि से मुक्त है और जिसने मृत्यु पर विजय पाई है।"

प्रकाश होकर मिहार्चक ने पूछा—“मृत्यु का विजय कोण है ?"

"जिसने निर्वासन प्राप्त किया है, उसने मृत्यु पर ही नहीं, जन्म पर भी विजय पाई है।" क्षमक बोला।

मिहार्चक ने आश्चर्यपूर्वक पूछा—“तुमने पाई है वह विजय ?"

"नहीं, मैं केवल एक बायी-मात्र हूँ उस मार्ग का।"

"मैं वा स्मृता हूँ वही ?"

"मरण और शुद्ध परिष्कार जिसने किया, हमने अक्षरशः प्राप्त किया है।"

“मैं भी वह चीरव और मिचल का पात्र धारण करूँगा। मैं उस रूप को प्राप्त करूँगा, जिस पर जरा का प्रभाव नहीं है। मैं सुख की खोज करूँगा, स्वादि-हीन और अविनाशक। मैं इस अज्ञानमाय कल्प में अश्वत्थ, शम्भु और दुष्ट ज्ञान का अनुभवान करूँगा।” सिद्धार्थ असह्य-से होकर उस अंधकार में हब-उपर खोखले कर्णों—“पर विपर है यव ?”

“सर्वत्र ही है यव। जैसे सूर्य के मंडल में से किरणें फैलकर निकलती हैं वसी प्रसर उठने ही। केवल प्रम बोधकर एक ही दिशा में निरंतर प्राप्ति करते रहना ही यव की प्राप्ति है। प्रत्येक यव का माह नहीं पही प्रम है।”

“तुम्हें तमस्वर है अमल ! तुमने मेरा अश्वत्थ द्वार अश्वत्थ कर दिया ! किंतु—” पुनराश ने विचार करते-करते शिखा-युक्ता ग्रहण की। माता पिता, पत्नी, पुत्र सख्य, सहचर, मित्र, बंधनों के बंधन उनके चारों ओर नाचने लगे।

‘तुम सूँघ रह गए क्यों ? तुम टूट डूब हो। तुम्हारी बाकी मेव की गर्जना में अरांत और अमृत जगत् के अंधकार और अज्ञान में सत्त्व के सूर्य का प्रकाश कर्णों। कदा, प्रवृत्त होया।”

“राज्य-भाग, सुख-विकास, इसे सदा ही साधारण दृष्टि से देखा है, वस्तु सिव और अस्मिन् ?”

“जब जरा-मरव ने इसके बंधनों को दुर्बल नहीं कर सक्ता है ? सारा जगत् सूक्ष्म होकर तुम्हारे मन में सुप्त है। प्रत्यक्ष और आग के एक ही अस्मिता के दा सिरे हैं।”

“तुमने मुझे कभीन स्पर्श से भर दिया। मेरे मन के भीतर अमरते हुए तारक पर के समस्त आकाश हवा दिव। कीव हो तुम ?”

“मैं अमिताभ अदि का शिष्य हूँ। तुम्हारे पुत्र का आशीर्वाद

महासिद्धिचरित

देने आया था। मुझे रात ही में डरकर चले जाने की राजाज्ञा हुई थी। मैं जा रहा हूँ।" अर्थात् ने सिद्धार्थ को हाथ जोड़कर परिक्रमा की और चले गए।

"इस राजसिद्धि का नाम हमने सुन रक्खा है। इन आठ रथवालों की कविताओं को बड़ा-बड़ाकर हमने अपने बंधन क बंधे क्या गुरु कहार्य नहीं बोली है। केवल एक पात्र और एक वस्त्र और बाहिर ही क्या? मीनके से बंधे वस्त्र का जोर और जाने के हेतु पात्र।" वृत्ताएक उन्होंने पुनः और सोचा—“धर्मी क्यों न बचा गया मैं उन धर्मक की माय। उनके बंधे द्वार लोकमे की आशा मिथी होती। उनकी आशा में मिथकर क्या मेरी भी सिद्धांति नहीं हो सकती।” वह उवा को बग गए एक-दो रा। एक गए। “अर्थात् त्यागकर आया है उनसे क्या तो उचित है न।” राजसिद्धि की ओर फिर गए पुनरागत।

प्रसूति-गुरु में आकर वृत्ता, प्रसूता लपटा पर पड़ी हुई आग ही रही थी। सिद्धार्थ ने पुनरागत बाहर से देखा।

प्रसूता उनकी आहट पर गई बोली—“कौन।”
सिद्धार्थ भीतर अपने पास चले गए—“मैं हूँ बगवत! सिद्ध कहाँ है।”

ज्यापरा आठ पात्र उठ बेटी लपटा पर। मन में सोचा बसने—“हमारे बाधक की समता बीच आई हम बार क्या।” सिद्धार्थ से कहा अपने—“महाराजी की रक्षा में है। मेरी बीर में आया अपने के कारण वह उसे अपने कच में ले गई है।”

“फिर भी तुम आग ही रही हो। मैं पहले भी आया था, वह तुम बीर में प्रवेश थी।” सिद्धार्थ ने बहुत बीरे-बीरे कहा—“तुमने क्या करना चाहता हूँ।”

भूमि पर पड़ोसरा की सेवा के लिये नियत कई द्वाधिर्वा पड़ी हुई मां रही थीं ।

कुछ पक्ष मंतीवा करने पर भी जब सिद्धार्थ ने धारो जिह्वा को छोड़ी, तो बड़ोबारा ने पूछा—“क्या करना चाहते हो ?”

बड़े शांत और कसब भाव से पुनराज बोले—“बड़ा असाध्य स्वयं दिखाई पड़ा मुझे इस संसार का । हमारा समस्त सुख-विजास, सुहाग-न्याय, स्नेह-संबंध सब नाराजवा है । बल-शुद्धि पर पड़े हुए मूर्खता के प्रतिबिम्ब के समान जलिक । हम अपनी सारी विभूति और सारा ज्ञान जगाकर व अपने को बचा सकते हैं व अपने मित्र और परिवर्तों को ।”

बड़ोबारा ने हाथ जोड़कर मस्तक मुका दिवा मिथार्थ के चरणों की ओर ‘तुम्हारे चरणों की शरण हूँ पुनराज । मैंने रात में बड़ा मनानक स्वप्न देखा है ।”

‘मैंने भीषण पर अरा के दंश देखे हैं, मैंने सुख पर व्याधि का विषय-जालमय देखा है, और देखे हैं मैंने सन्तु के तीक्ष्ण और अमोह लक्षों पर भीषण के बीजदे ।”

“मुझे भय लगता है, तुम ऐसी चर्च और न करो पुनराज । मैं स्वयं ही उस स्वप्न की स्मृति से आकुल हूँ ।”

“क्या स्वप्न देखा तुमने ?”

‘मैंने देखा बड़े बड़ देव से घाँबी जड़ी, जीमकाय मेवों ने उलझ सारी धरती तक की । पृथ्वी दाहित केले के लते के समान परवराने लगी । ग्रह-नक्षत्र धरने-धरने केंद्रों से झुल होकर हृष्ट-उत्तर हट पड़ने लगे । उस प्रलय और भूधरा में मैंने देखा, प्राण्य सुकुट प्राण्ये मस्तक पर से गिर रहा, और लुब्धका हुआ भखा गया । मैं उसे बचाने का बीबी, उसकी गति को न पा सकी । वह विजास विजासों में उलझकर चूर-चूर हो गया ।”

बड़े मनोयोग से सिद्धार्य सुन रहे थे। ईसते हुए बोले— 'एक सरल सत्य है, वह केवल इतना ही है, तुमने कई शताब्दियों को क्यों में देखा। क्या विरंतर एक चीज़ नहीं बच रही है, प्रकृति जब और वैतन्य प्रकृति से हाकर। क्या काह के कराह कर ऊँची-ऊँची महाशक्तिओं की वृद्धि में नहीं मिटा रहे हैं। वहीं-वहीं राज्य-मया क्षिप्त, राज-वंश क्या उसका प्रमाण से नृसिमाय नहीं हो रहे हैं। बलते बर खगती है, बिगलते हुए दिनाई भी नहीं देते। एक तुम्हें मनुष्य, महाकाह की दृष्टि में एक बीटी से भी नागर्य सिद्धार्य, उसके मुकुट का जो तुमने पूर्व-विश्व-होते हुए देखा, वह क्या है। क्या समय का बाटे-से-बोझ पाग उसको पीछे करता हुआ वहीं बह रहा है या तो को।'

बसोबस धरों पर दीर्घ रवास थीर छाती पर हाथ लेकर दिया-विदियाओं में सपीरता से देखने लगी।

'धीरज को प्रसन्न हाथो क्योंपरे। वह सृष्टि का नियम है, एक के बिने नहीं, सभी के बिने है। फिर हमका क्या भव, क्या दुःख।'

बसोबस ने कुछ चमिष्ट होकर सिद्धार्य को देखा।

'हाँ-हाँ, मेरे है शोक, चिन्ता, धनु निरवास, जागरण थीर संतप के जब प्रकमित हो गए।'

बसोबस ने थीर भी लप्य होकर पुनराज पर दृष्टि गवाई।

'क्या देन नहीं रही हो। वहाँ संपन्न विद्वत् करता था, पात्र वहाँ प्रकम की जोर के बिने बसाह बच हो गया। जिन धर्मों में संसार की बरबरता के धाम थे, वे शारवत चित्तमता के दर्शन के बिने जागरण से भर गयी हैं। हे क्योंपरे। परिताप के पीछे प्रकृत शक्ति, हम संपन्न के पीछे प्रकृत ज्योति।'

'तुम्हारी प्रकृति में मैं अपनी समस्त देखा मूक गई। मगवान्

बड़े सदाच है। प्रायः मेरी आँखें बंद हो गई हैं।” बरोबर ने प्रसन्नता से कहा।

“परंतु यहाँ बैठे-बैठे कुछ नहीं हो सकता सुंदरी! कुछ बाने के बिना कुछ मोड़ना ही पड़ेगा।”

बरोबर के प्रसन्न-वीथ मुख पर भी मीलों में बल पड़े—“क्या, क्या, मैं फिर काँप उठी हूँ। तुम्हारा स्पर्श क्या है?”

“मुझे जाने दो।”

“कहाँ?” बरोबर ने डरता हाथ बढ़ा दिया।

“दूर जगह के संघर्ष के दूर, दूरत में।”

“क्यों? किसलिए?”

“दूर सत्य की शोध के लिये।” वह आशा-भरे स्वर से बुराब बोले—“मैं उसका अनुसरण करूँगा, वह मुझे मिलेगा। जब और कबलों के दूर दूरत में मैं उसके चरणों को चूँगा। महान और शून्य बस-पर्यंतों में मैं उसकी कृपा का घोर पकड़ूँगा।”

“नहीं, किसी प्रकार नहीं। मैं जाने न दूँगी।” अर्पण जबीर होकर बरोबर को बोली।

“वह तुम्हारा पुण्य मोह है। जरा संसार जरा व्याधि और मरणा से परितापित है। मैं उसकी क्रांति के उपाय ढूँढ़ने जा रहा हूँ। तुम्हें पति को इस महात्मा प्रवास पर व्याहित करना उचित है या इस प्रकार उसके बल को रोक लेना?” सियार्थ बोले।

“बुराब, तुमने मुझे जीवन-मरणा की संझौती कराया है, इसके लिये पवित्र प्रतिज्ञा की है। तुम मुझे मोह नहीं सकते।

“साथों प्राचीनों के दोष स्वयं ही कुछ गलत हैं बरोबर! मैंने चारों दिशाओं को देखा दिया है। जब भी मैं तुम्हें संघर्ष में रक सकता हूँ।”

“मुझे भी अपने हाथ से चलो।”

“नहीं, यह असंभव है।” सिद्धार्थ जाने लगे।

“सिद्ध के बड़े होने तक सभी नहीं जावे पाओगे।” बसोपरा ने डडकर जाते हुए सिद्धार्थ का हाथ पकड़ लिया।

रामियों की भीड़ दूर गई थी कोझाड़क सुनकर, पर वे जहाँ बंद किए ही, भीड़ का बहाना कर पड़ी रहीं।

“नहीं बसोपरे! जवन स्वार्थ का त्याग करा। सारा जगत्, आहुत तुम्हा से मेरी ओर देता रहा है, मैं उमड़ी लुहि के बिसे जमुत की लौह में जा रहा हूँ, जाने दो।”

“जा रहा हूँ?” दरम के स्वर में बसोपरा ने पूछा।

“हाँ, सीमातिथीभ। तुम्हें दम क बिसे कुछ भी स्पष्ट करना नहीं है।” बुबराज ने कहा।

बसोपरा ने रामियों को बढाते हुए कहा—“धीर तुम क्या जाता नहीं लयी हो, उदो डम, बुबराज का रहे है। रोष उन्हीं, न जाने दा।

रामियाँ जहाँ मकली हुई कहीं, और बबराज बोली—“क्या है बुबराजी?”

“आधो, तुममें से एक जाकर महाराज का सुचिंत करा। करो, बुबराज न-जावे कहीं को जा रहे है।” बसोपरा ने कहा।

सिद्धार्थ निश्च ही कड़े-कड़े हँस रहे थे।

बसोपरा कहती जा रही थी—“दुनरी जाकर महाराजी का सुचिंत करो। जाओ-जाओ दुर्ग क गहरी मचेत हा जाओ, और हार सबलह। शीघ्रता करो।”

बुबराज ने हँसकर जाती हुई रामियों को रोक लिया। उन्होंने बसोपरा से कहा—“क्या हो गया तुम्हें? ऐसी बगळी-सी क्या हो गई तुम? जमी चोड़े जा रहा हूँ मैं! महाराज से और महारानी से बराबर्य करना है, और उनकी आज्ञा लेनी है।”

बसोपरा को हनु भीरवं हुआ।

“बाधो, विनाश करो। हासिलो। तुम भी। मैं अपने कष्ट में चार्जंगा।” कहकर पुष्पराज अपने कष्ट को चले गए।

पुष्पराज के मन में शंक्ति कहीं? उसने हाथी से पूछा—“राज सिंहासी बीच गई?”

एक हासी बाहर जाकर आश्विन में ग्रहों की स्थिति देख लौटी, बोली—“अभी जाही राज है।”

सब सोने लगे, पर पुष्पराज की आँखों में नींद कहीं? उसने कुछ ही देर परचाए एक हासी को उठाकर कहा—“जा देख जा हासी पुष्पराज क्या कर रहे हैं। कहीं चले तो नहीं गए?”

“जायेंगे कहीं? हम सूर्य और तन की मरी राज हैं?” हासी बोली।

“यह मैं भी जानती हूँ। पर मेरा दुर्बल मन आशंकाओं से भर गया है। तुम्हें मेरे ऊपर दया करनी चाहिए हासी?”

हासी ने हाथ जोड़े—“झिरी बात बात क्या करती है स्वामिनी हम आपकी सेविका हैं।” वह पुष्पराज के कष्ट को चली गई।

पुष्पराज संकष्ट-विकल्पाँ में डहरते-डूबते जाग ही रहे वे अपने कष्ट में। बाहर कुछ आदर पाकर बोले—“जीन है?”

“मैं हूँ हासी। पुष्पराज ने मेरा है मुझे आपके पास।” पुष्पराज हासी बोली।

“मिमिचिने?”

“केवल देख जाने के लिये।”

हमने लगे मिमिचि।

दूसरे दिन मोर होते ही पुष्पराज महाराज के सामने जाकर बोले—
“महाराज, मैं चारों मिमिचि देख चुका हूँ।”

“जीवा मिमिचि थी?” बड़े आश्चर्य में महाराज ने पूछा।

“हाँ महाराज !”

सिर पीट दिया महाराज ने ।

“तुम्हारे कपड़े धोकर धोकर दे दूँगा । निमित्तों का दर्शन
से आपके पुत्र का कृष्ण भी ग्रहित नहीं हुआ ।”

“तुमने भीष्मा विधिवे देखा ? कहीं देखा ? क्या देखा ?” बड़ी
धीमे धीमे तुम्हारे स्वर में सुखोद्वेग ने गुंजा ।

“यही देखा महाराज ! बड़ा सौम्य सीर शीतल रूप । हृदय बर्षों
से जो मेरा हाथ लीककर हम राक्षसद्वार में से बाहर निकाल लेना
चाहता है, यही है महाराज !”

“है ! है ! तुम कह क्या कर रहे हो ?” कहकर विद्यार्थ का
हाथ पकड़ दिया बन्धने ।

“मैं जिसे बचकर बच सीर पर्वतों में निवास करना चाहता हूँ ।”
सुखोद्वेग ने सुवराज के चपेटों पर हाथ रख दिया — “नहीं,
नहीं, तुम हमारी वृद्धावस्था के आशोक हो ।”

“सारे जगत पर वृद्धावस्था में बड़ाई हुई है । सारा जगत
अंधकार में डूबा है । मैं आपके द्विजे ही नहीं सबके द्विजे ब्रह्मण
को जोड़ जाऊँगा ।”

“सुवराज ! विद्यार्थ ! तुम्हें हमारा त्याग क्षम्य नहीं है ।
तुम्हारी वह अवस्था योग-वैराग्य के द्विजे नहीं है ।”

“जब जीवन बरा से दूषित होकर अंतर्गत हो जायगा, तब
धिर क्या हो सकता है । मेरा अन्तर्मुख ही है महाराज ! अब
कई किमी प्रकार किमी से विस्मृत नहीं किया जा सकता ।”

“देख ! तुम्हारा यह बोधक शरीर कैसे विज्ञान के बर्षों को
धन करेगा ?”

“निरंतर अभ्यास से विज्ञानी ! हमारे अभ्यास में ही दुर्लभ में
अंतर्गत हो जायगा ।”

“तुम्हारे क्या अर्थात् है ? राज्य है, राज्यकोष है राज्यसर्व है सर्वगुण-संपन्न, सुखसखा सुखराही है, देवकुमारों-सा अंति-गुण का साक्षात् ये तुम्हें दिया है । माता-पिता हैं, सर्वैव तुम्हारे सुख के किये कियागीक, माई-बंशु है सेवा और सहायता के किये ।”

“मैं अपना सुख नहीं चाहता महाराज । मैं तो प्रकृति-भाव का सुख के किये विच्छिन्न हूँ । वे राज्य और सर्वत्र सब कश्चित्त है, मैं हूँ । मैं उस जगत् सुख को लोकात् चाहता हूँ, जिसे वस्त्र फिर भी किसी वस्तु की तुलना न होयेगी ।”

“वहाँ जो कुछ तुम चाहते हो मैं वहीं हूँगा ।”

“होगे आप ? तब मैं वहीं रहूँगा ।”

“हाँ हूँगा ।” आप में भरकर महाराज बोले ।

“दीक्षित, तब बरा-बिहीन भीषण दीक्षित, योग-सुख अपना दीक्षित और सुख-रहित जीवन । वे सकते हैं आप ?”

“कोन वे सकते हैं, हाथ तो प्रकृति का नियम है ।”

“बस तब ही गया महाराज । बस और वैभव जिस सुख को मैं नहीं कर सकता मैं उसी की कोश में जा रहा हूँ । आप जब तुम्हें वयस में नहीं रख सकते । वे छात्रों दीक्षारों आज मेरे सामने एक एक हँट होकर गिर पड़ी हैं ।”

सुखादन रुदन करने लगे—“हा वस ! तुम्हारा सुख देवदत्त—” अन्तर्गत बंध धरकर हो गया ।

उस कठिन वातावरण में बड़े जीरे जगों से प्रभावती ने प्रवेष्ट किया । पति का देवदत्त उसकी आँखों में धनु-मूर्ति हो गई । वो स्नेह-मूर्ति स्वर में बसने कहा—“सुखराज !”

“हाँ महाराजी !” पीठ किन्तु हुए सिद्धार्थ बाहर सुख प्रकृति के बैठ रहे थे । उसी प्रकार बोले ।

“तुम क्या करना चाहते हो ?”

“ओ हाथ धीबका-सकाण, बिछस-बिनाश, मिहान-बिरह हुआ-
मुच धीर कम्म-मरुत का चक्र चला रहे हैं, उनको पकड़ना चाहता
हूँ। यदि मेरी साधना सफल हुई, तो तुम धन्य होोगी। मेरे मन
में बाधा न हो।” सिद्धार्थ ने माता-रिता दोनों के चरणों का स्पर्श
किया—“मुझे प्रसन्न मन से आशीर्वाद देकर बिदा करो।”

प्रजापती उच खर से रोने लगी।

माता के आँसु अपने उच्छ्वास से बौझने हुए सिद्धार्थ ने कहा—
“कैसा दुःख स्वारस्य है तुम्हारा।”

प्रजापती ने उनके कंधे पर हाथ रखकर कहा—“सभी न जानो,
अपने पुत्र के बड़े होने तक न जानो।”

“विचार बहुत दूर होकर बहुत दूर चला गया है। कर्म की शक्ति
अनुमत्त करना ही रहेगा। प्राण के प्रत्येक तन्त्र की ओर से जीवन
की संधिर्षा दृष्टी पड़ी जा रही है। मैं धन खो नहीं सकता। मैं
धन जानूँ हूँ और बोधित्व को प्राप्त कर सारे संसार को
जगाऊँगा।” सिद्धार्थ बाहर की ओर चले गए।

महाराज ने कहा—“देखा देखा महाराणी! हमारा पुत्राज
जमी का नहीं चला जायगा।”

धर्मियों के वेग का सामकर महाराज राजमभा में गए, और
उन्होंने दुर्ग में चारों ओर के ग्रहियों को धर्मय साधना से काम
करने का आदेश भिजवाया।

महाराणी ने पुत्राज का कष्ट में जाते हुए देखा। उनका धनु
मरुत किया उनसे। एक क्षणी के चारों कर रहे थे वह।

रानी—“धन कहाँ जा रहे हैं।”

पुत्राज—“सभी तो जा रहे हैं, सब बिनाश की धार, सब मरुत
की दिशा में। जीवन और विकास केवल एक चक्र है। जिस चक्र
उपजती है, उसी में मिट जाती है।”

दासी—‘महाराज और महारानी को कुछ देना उचित नहीं थापके, और कुछ नहीं जानती मैं। सब सुना मैंने। और फिर वह मांझी-मांझी पुचराही और वह नवजात कुमार! पुचराह! बड़े कपड़े हो गए तुम, किसी की दहा-माया नहीं तुम्हें। वे सब तुम्हारे जाने पर किसीके आचार पर चिपेंगे।’

पुचराह—‘दासी शूनु अब कोई विरक्त नहीं है, इस बात को जानती हो न तुम?’

दासी—‘हाँ।’

‘कोई मनुष्य किसी समय भी शूनु को प्राप्त हो सकता है।’

‘हाँ।’

‘मैं जपवाद नहीं हूँ। पुचराह, महाराज, सम्राट कोई भी जपवाद नहीं होता। जाहंगीर ही, केवल एक शूनु रोक सकती है, और कोई नहीं। आज न जाहंगीर वह विरक्त है।’

दासी चली गई। भर्ता में बसे जाती हुई महारानी मिली। अपने बच्चा शूनुसारथ किया।

कुछ जब जपवाद जड़क के प्रवेश किया सिद्धार्थ के कम में।

‘आधो लंका! मित्रों का मेरा तुमने जोका शूनु पर। मान-सिद्ध जपव सब हूट गए हैं—य हार भी कुछ जानेंगे।’

सिद्धार्थ के हाथों में लंका के एक जंगली लकी।

‘क्या है वह?’ पूछा उन्होंने।

‘अमित जप के शिष्य ने वह जंगली धारकी दी है। बहुत सावधानी से निपटकर इसकी रक्षा करने को कहा है। वह आपके काम आयेगी। मैं रात उन्हें चुँबाये गया था।’

‘वह किस काम की है मेरे?’

‘वह राजमुद्रिका है। इसे निपटकर महारानी ने अपने बच्चे को दे दिया है।’

“मेरे मित्रे भी छोड़ देंगे ?”

“हाँ, इसे दिखाते पर ।”

“तुम बन्धु हो बंधक ! तुम मुझे भी पहुँचा दोगे इस अन्याय के बाहर ?”

“महाराज—”

“महाराज कुछ न कहेंगे । होम्हरा प्रबल है । तुम पाँचवें निमित्त हो ।”

“सेवक को क्या आज्ञा है ?”

“श्रीम बतार्हेगा बंधक ?”

पुरुषराज के पुत्र-जन्म के सातवें दिन की बात है । प्रभात-समय एक ज्योतिष-गीत ने सबकी नींद लोड़ी ।

कीर्ति गाविका गा रही थी, मनोहर लम्पवता के साथ—

विराट का दसो वैद्य-भार,

विराटों में है आराधन ।

कन का बरा, जन्म का मरु,

पर रहे हैं जल-जल अनुसरण ।

एक ज्ञान का है आचार्य

स्वयं है धारा जल प्रसार,

विराट का दसो वैद्य-भार ।

स्वर्ग-रत मानव हीन विवेक,

एक का शत्रु हुआ है एक ।

आप्त धर्म, पुत्र अतिरिक्त

ज्योत हो मन बहका के डार ।

विराट का दसो वैद्य-भार ।

“धीन गा रहा है वह ?” जान जाता है, केवल मेरे ही चरेर से ।” पुरुषराज ने बड़ी पड़ावता से यह नीति सुना । एक अचूक

कत्ताह उनके हाथ में कर गया। उनके मुख से सदा निकल
रहा—“सिद्धार्थ, तू आकर जाबगा।”

आज पीछ के जन्म के क्षणों दिव महात्मा ने विशेष कष्टों का
आपोगम कर रक्खा था। अमावस्य के ही राजमहल में बहुत
बहुत आरंभ हो गई थी।

गामिका का ही रही थी अभी—

बुद्धात् है तुमको इन-धर्म,
मण्डल बहुति, सत्य दर्शित।
दीन-दुखियों को रक्षित धर्म,
हुई है भेंट तुम्ह-तुम्ह।
मित्र का हरो वैराग्य-धर।

बुद्धात् ने कब के बाहर आकर देखा उस गामिका को। संकेत
से बुद्धात् अपने पास।

गामिका स्मितमुख से दीखती हुई कभी कभी बुद्धात् के हाथ,
धीरे हाथ जोड़कर कभी हो गई।

“कहा मनुष्य गीत गाया तुमने।”

गामिका ने गीत के धार से मस्तक विनम्र किया।

“कदाचित् आज ही प्रथम बार।”

गामिका ने सम्मति व्यक्त की मुँह सहकर ही।

“तुम नहीं तो नहीं हो, तुम्हें बुद्धात् का है बार-बार। फिर आज
ही तुमने गाया। क्या सीखा है वह गीत।” बुद्धात् ने पूछा।

“नहीं बुद्धात्। बहुत दिनों का कर्म किया हुआ है।”

“किसी ने कहा था तुम्हें गाते को।”

“नहीं, केवल धर्म-धर्म बुद्धात्।”

“अभी और गाते को कुछ देव है गीत।”

“हाँ।”

“आधा आधा, बड़ा सुंदर है।”

मायिका फिर गाने लगी—

प्रिया का तन हो वह सुन पाय

तन का अंत-पुर जायत ।

अन के श्रुत अंतर्गत मलय

सुख वन जायो रामभुम्बर,

नित्य का हरो देवना-नार ।

“आधा संयम गया । मैं ही जानूँ हूँ।”

“मैं नहीं जानती।”

मेरे मन पर और भी आधो-कबड़ा प्रिया-तुम्हार घीसने । मेरे मन में बहुत विरहास उत्पन्न हो गया मैं तन-तन होऊँगा उसे प्राप्त करने में । मेरे सारे बंधन बिछ हो गए, और मैं संसार के इन कटि-कटि शक्ति-धों की देवता इत्यदि करूँगा, जो बड़ी धारणा से मेरी आर देव रहे हैं। वहकर पुत्राज ने अपने गले का रत्नहार निकालकर श्व मायिका का उपहार में दे दिया ।

मायिका कुछ-कुछ हाकर चला गई ।

निर्दोष का देवा विदित होने लगा, जैसे वह दुर्ग वनका प्रवास है । न-आम किम अघात-अपरिचित राज्य वकील का वह अपना घर समझने लगे । बहुत दिनों के अंतर पर पर का छोड़ जान का का हर्ष किसी का हाता है, वैसा ही वह अनुभव करने लगे ।

दिन-नर बनी प्रसन्न मुद्रा में वह दुर्ग के एक-एक बंठा-बूढ़, एक-एक बटु-पक्षी से मूक विदा लेने लगे । इत्यदि, माई-बैठ, माता-पिता उनक हर्ष और उमंग का दृष्टकर समझने लगे कि निर्दोष के मन में दुष्ट का साह उत्पन्न हो गया ।

चंद्रक के पास जाकर निर्दोष ने कहा — “बैठक, वह तुम बनी का गये हैं आज ।

“अनन्तरी !”

“कब तुम मेरी स्थापना कराते। तुमने वचन दिया है, इसके लिये।”

बंदक बरसत होकर सूक हो गया।

“धेरे धीरे बोढ़े कंयक का डेकर हम तुर्ग के बाहर मेरी प्रतीक्षा करो बंधु ! संशय-भय सब दूर कर दो। बड़े उज्ज्वल भविष्य मे मुझे पुकारा। धीरे उठे सुषा और सम्राज और आज मैं उधरे निकल पड़ा जाऊँगा। प्रत्येक बंदक ने बुझकर मेरे मार्ग पर सूख लक्ष्य है, और प्रत्येक डेकर मेरे स्पर्श से दुर्ग में परिवर्तित हो गई। बड़े सुख का दिव है आज का बंदक। तुम बोलते क्यों नहीं ?”

बंदक ने उबड़बाई हुई घाँटों से बुधराज की ओर देखा।

“मैं भी तुम्हारे साथ चहुँगा। जहाँ-जहाँ आओगे वहाँ-वहाँ साथ रहूँगा।

“कुछ दूर तक चलोवे बंदक बचरव। जाओ मेरा धना मानो।” कहकर बुधराज ने उठे बिना किया।

धीरे-धीरे रात्रि उतरी कम उज्ज्वल से मुकलित राजभवन पर। सहजों दीप-किन्नारों से प्रामाद अनुभावित हो उठा। पल-मीन और जामोद-ममाद की चविराम बहर बहने लगी।

निमिषों का रोक-टोक हुआ भी नहीं था। राज्य के समस्त दीन-दुखियों को राज वृत्ति मुक्त हस्त से काट-बका लक्ष-लक्ष दान कर रहे थे।

भोजन के उपरांत बुधराज का कम शामिकाओं से भर गया। वे चरने हाव-भाव कृप-मुद्रा, गीत-गाय से जाना प्रभर के समोदीप्य की चेष्टाएँ कर रही थीं सिंहास के मग में। निहाई के अनुराज में विमल सिंहास बचरव ही उनके परिचय में मनोरंजित हो रहे थे। नर्तकिनी उन्हीं आलस्य समकलन उत्साह-मूर्त हो उठीं।

राज क दूसरे गहर के आरंभ होते-व-होते शान्तिवासी ने देखा, सुबराज गहरी भीड़ में चले गए ।

एक बाकी—“बिनका मसोरंजन कर रही थीं, वह तो सो गए ! सो गया था ।”

दूसरी ने कहा—“हाँ, जब धर्म के परिश्रम से क्या काम ? बड़ी नीरस-नृत्त जब जबक विभाम का वापस हो सकता है । हम भी तो बहुत पक गई हैं ।

धर्म विधाता भी थे । मिश्रार्थ की भीड़ ने तो सहसा विभाम का आवाज सुना दिया जब पर । उन्हीं वक्त और आवाजों में सो गई थे, भूमि पर के विचारण में । क्यों का जो दौड़ प्रकार से सीमाबद्ध करने की मुहिम न रही बन्नी । वे गहरी भीड़ में अचेत हो गई और वाक-मुक्त से ऊँचे-नीचे आवाजों पर के बहुत और लंबाई बढाने लगी ।

मिश्रार्थ की आँखों में भीड़ क्यों ? भेद भूँदकर सामाजिक आदर्श में वह अपने निजमय का मार्ग निकाल रहे थे । आँखें खोलकर उन्होंने देखा सब शांतिकार्य बतना काकर बेमुह रही है ।

भीरे भीरे उठे वह । कब वर छिड़ जाऊ अपने मन में बोले—“कैसा अवाक्य हरक है । अभी कुछ समय पहले वे अपने अंत-विशेष और व्याप-निषेध से अपनी समझौता बना रही थीं । पर अब हम समय छोड़ें बिचलना है किसी की कबरी ने निकलकर बसक्य बराबर बन बना दिया । किसी के मुँह से कार नू रही है, और जनक परीने में बलव्य है । कैसा भीमत्त हरक है । किसी के हाँठ कटकर रहे हैं, और किसी की नाक बल रही है । ओह ! क्या इसी शरीर पर हमने मनाहारी बन की बनपना की है ! नहीं, नहीं । और भी बरि सुख छिड़ से हम देखें या क्या यह काया सुन-गुनीष, कच-बूँद, एक और इज्जतों के समुच्चय का नाम नहीं

है। मानव ! तुमूह गया ! जीवन के अंतीस वर्ष एक रात के स्वप्न-से काख की तरंगिणी में डूबकर न-जाने कहाँ को वह गए !... जब नहीं ! वह कैसी निस्तम्भ रात्रि है ! यह जाना ही अश्वि है मुझे ।”

मित्रार्थ कक्ष के बाहर चले । मार्ग में सोचने लगे—“असे भी बेस खूँ जाते-जाते । न-जाने क्या फिर भेंट हो । होगी भी ना नहीं ? नहीं जानता ।”

प्रसूति-गृह के निष्कर जाकर विचारने लगे—“नहीं कोई बागण होगा । बेस खूँ खूँ ।” द्वार खुला था । बाहर ही से आँका—मो रही है, स्थलों में छोड़ें हुई ! नहीं जानती क्या हो रहा है ।... है, यह क्या ! मेरे मन में मोह बढ़ने लगा । मिष्ट को बेस छेने की इच्छा हो गई । पयोकरा से दो बातें कर लेने की कनवा उत्पन्न हो गई । नहीं, नहीं, नहीं ! मेरा संकल्प यह है, और इस रात की छाया में मेरे सारे बंधन मिथिल हो गए । पाठ-माध, सुत-बलिष्ठ, बंधु-बाँधव, दास-दासी, सबसे विद्या ! अपिबन्धु के विद्या ! जन्म-भूमि से विद्या । अब सारी बरती मेरी जन्म-भूमि हो उठेगी, और मेरे मातृ समस्त विरच में कैल जाँदगी ।”

कक्ष विद्या वह शून्य और अर्बुत का पवित्र । राजमणव के बाहर मार्ग पर जाया । अस्ने पीले फिरकर फिर नहीं देखा ।

“साथ हारों तक मेरा मार्ग विमिश्र है । वह मुद्रिका मुँह कर देगी उन्हीं । उसके परचाह !—विद्या कंधक से जायगा ।”

एक-एक कर सातों द्वार खुल पड़े ! मारी ऐसे मोह में न नच दे । उन्होंने जानेवाले को नहीं पहचाना, केवल रँगूड़ी पहचानी ।

दुर्ग क बाहर पहुँचते ही कंधक उब स्वर से हिमहिमा उभ ।

“हाँ, मैं था गया कंधक ।”

कंधक बोला—“पुनराज ।”

“अब कैसा राज और कैसा पुत्रराज बँदक ! हम बेग के बिले
 करते होंगे । वह भी उतर जाएगा । अब कोई क्या गँवाया नहीं
 है, बचो । अरुण सिन्हा ने घरबारोहल किया । आओ तुम
 भी बैठ आओ ।”

बँदक भी बोले के पिछले भाग में बैठ गया ।
 सकेत पाते ही बँदक हवा से चारों करने लगा ।



१० अनोमा-तट पर

कुम्भक-राज-राज में कुम्भक-राज-राज और वैष्णवी-राज
प्रतिक्रमण कर महा-राज की सीमा पर जा पहुँचा
अनोमा-नदी मार्ग में लगी। कुम्भक-राज-राज पार हो गया अपने
अनोमा के उस तट पर पहुँचकर सिद्धार्थ ने जोरा शोक दिया व
होमो बल गढ़। वे कपिलवस्तु को लगभग ३५ मील दूरी में
जाए थे।

बाहुका-राजि वर लड़े होकर सिद्धार्थ ने कुम्भक की पीठ व
कपल—“तुमने अपने माँको को तुम्हें सम्झकर जिस दिन से तु
वहाँ पहुँचाया वह स्तब्ध है। बहुत दूर जाकर तुमने मुझे
दिया। कपिलवस्तु के जो कर्मचारी तुम्हें ईश्वर वहाँ आये, उन
पक्षों ही में उनके शक्ति व बाहर होकर किसी प्रकार में जा
जाएगा।”

कुम्भक की माँको से लड़ाई जाँच फिरने लगे। वह हाथ जो
कर लड़ा था सिद्धार्थ के सामने।

“क्यों कुम्भक, इस सुहावनी प्रमाद-वेला में तुम क्यों मोह
भर डके हो? जो, वे मेरे सम्झकर। इन्हें देखकर कपिलवस्तु को भी
जाओ, और जाकर मेरे जाने के समाचार हो जारी राज-राज
विस्तीर्ण शोक-समा में लगी होगी।”

“यै वास्तव ही साथ पहुँचा बुधवार।”

“तुम फिर लड़े कुम्भक। बुधवार कपिलवस्तु में है।” सिद्धार्थ
ने अपने माँक का सुझाव दियाकर कुम्भक को देते हुए कहा—
“जो, बुधवार बड़ा होकर इस सुझाव को पढ़ेगा।”

परम ने बंजित कों में वह सुकृत समाधा ।

निर्द्वार ने कमर से सड़ा निकालकर कहा—“श्रीर को यह सड़ा।” पर एक मर्द—“भरो, यह कम-बस कम दिखे।” उन्होंने कहे कि सड़ाती हुई कहीं उस सड़ा से काट काटो। अब हमसे कैसा संसार ?” उन्होंने सड़ा भी बंदक को दे दिया, और अपने हाथ पर के धातुएँ खोलने लगे। बंदक जब स्तर से सीकर उभर बन भी शांति को बिखारि देने लगे।

“तुम बागम हो गए क्या दरक ! मैं कपेटका ही आऊंगा । तुम्हें कपिकबटु को ही झूट जाया उचित है । जाओ, जाकर महाराज और महारानी को मेरे समाचार दार । उन्हें भी राज बंधाया, कहना सिद्धार्थ कुछ ही समय में, शायद प्राण्य कर उनके दरमन करेगा । जाओ, ये धानूखल उन्हें दे देगा । कंक को भी वहाँ बुलाना है ।” कहकर सिद्धार्थ ने दरक का अपने आसन्न सीरे ।

કોઈક સમય બહાર પડે ઉંઝાડને કાપા ।

“तुम बहुत समझदार हो बंदूक । तुम सैबक हाकर नहीं सरेब ही मेरे सहकर होकर रहे हो । फिरवात रक्को, मैं जिसकी कोर मैं का रहा हूँ, बरि बह तुम्हे मिळ गय, तो इसमें तुम्हारा भी भाग निरिमत है ।” कहकर उन्होंने पैर का कपामह भी काज दिया । बंदूक जाने के सिधे प्रस्तुत हुआ । इसने सिद्धार्य के चरखों पर चरवा मासक रज दिया । वह सिपक-मिस्तकर जाने लगा ।

“आपारी करिबबल्लु हल्ल लमण तुम्हे तुमने ही मंडीयल दिक्कई
द रही है । जमी बल्ल तुम्हारे साथ रहने से मुह-आप की भाक्का
मचल नहीं हुई थी ।” करने-करते डप कीछाय लहीन मन्नामी का
भी धक्का भर आया । कुम्ह बल्ल लल्ल म बाहल लल्ल लल्ल ।

ईश्वर हमी प्रकृत उभरु बरसो पर बहा था ।

सिद्धार्थ ने उसकी हाथ पकड़कर कहा, वैसे जाती से लग्यवा,

धीर बिदा देते हुए कहा—“आधो, उम्मी बेन से बंधक बन जाऊँ।
आधो, जिस बेन के हम घायल हैं। तुम्हें क्या करते हुए मैं बन्धक
बन्धु का अंतिम निरा बोधना हूँ। आधो, तुम्हारा वचन मंजूर
हो। माया-मित्र से कहा मेरी कोई बिदा न करे
बलाकरा! कलाकरा!... यही पंख, ऊड़ नहीं, वह स्वयं बंध
समकदार है। आधो बंधक!”

बंधक बंधा गया। पल-पल पर मुक्त मोह-मोहकर वह सिद्धार्थ
की ओर देखता ही रहा।

सिद्धार्थ जी एक हक के लहारे बैठकर वैसे जाते हुए देखने लगे।
जब मैं बंधक दूरी में प्रस्थित होकर जाँचने की ओर हाँ गया।
रात-भर के आगस्त और धन से वराजित सिद्धार्थ की आँखें बंद
गईं। वह स्वयं में देखने लगे, यशोवरा ने जाकर उबका हाथ
कड़ किया।

“बीन हो यशोवरा मेरा हाथ। तुम मेरे ही साथ आओ। तुम
मेरी बाधा बनोगी?” सोते-सोते ही सिद्धार्थ बोध उठे। अचानक
बीन सुब गई। उत्तर फिर हवा-उत्तर पुकारने लगे—“यशोवरे!
यशोवरे!” ईश्वर बड़े। “ब्रह्म स्वयं, जिसे हम कबल एक माया, एक
विस्तारता समझते हैं, कैसा प्रमित कर देता है।... यहाँ कहीं है
यशोवरा! जाग उठी होगी अब! हूँ व रही होगी मुझे। सारा जगत्
कल्पना में सोया हुआ है मेरे ही मन में। क्या होमा और क्या
ग्रहण किया मैंने, यही जागता। यशोवरे! तुम्हें कहीं नहीं
परित्यक्त किया। तुम मेरे ही जग में हो। यही कहीं सुखद कल्पना
है और जलने की मेरा मार्ग काँटने में मेरी अंतिमी और मेरी लहा-
बिका है। अब फिर! वह पारा दिशाओं में देवी उड़ि कर देखने
लगे—“कोई मनुष्य है हवा।” वह दौड़कर उसके पास जा
पहुँचे।

वहाँ जाकर देखा एक मनुष्य बैठा है, बड़ा मैला कपड़ा और कुस्म। कुस्म मी रहा था वह। सिद्धार्थ का लज्जती कम पड़कर बट गया हो गया।

सिद्धार्थ ने पूछा—“कौन हो तुम ?”
“मैं एक व्यापक हूँ। वह देवो मीन भूमि पर जाकर बैठा रहता है। एक स्थान पर वह टूट गया है। इस वक को जोड़कर मी उपमं भिगाही जागने का विचार कर रहा हूँ। देखो, अभी चिकियाँ कैमती हैं।”

“चिकियों को पड़कर क्या करोगे ?”
“जीसिका। तु वर पुरक, वह पेट की उबाखा शांत करेगा। कुछ चिकियों को बेईगा या नहीं चिकेगा, उन्हें भूतकर जाईगा और अपने परिवारवालों को त्रिजईगा।” व्याप ने कहा।

सिद्धार्थ के मुख पर बड़ी चपकि प्रकट हुई। उन्होंने बड़ी दीनता से कहा—“किसी और उद्योग से जीसिका नहीं बचा सकते बंधु ! कोई और वस्तु खाकर पेट नहीं भर सकते ?”

“बड़ी मर्म बासी है तुम्हारी। क्या करूँ ? और कोई उपाग सीखा नहीं। बचान से ही माना-पिता की बड़ी इति देसी और घीली है। तुम्हारी भासा का पावन करने की इच्छा होती है पर विवश हूँ।”

“मैं भी रहा करूँ तुमसे। प्रायः सबमें एक ही से है वर से मिरीह मूक पची, त्रिजर्म प्रतिकार और नामवा कर सकते की कोई कमता ही नहीं है, क्या इनकी पीड़ा और भी चपिक नहीं हा जाती ?”

“होगी। वर चिकियाँ के अम्बास से वह हमारा बुक साधारण सा कार्य हो गया है। वही मूकवाद् बच भाव कर रखे है तुमने। मुख का मुख्य और शरीर का मर्म भी कह रहा है, तुम

कहागे तो आपने घर से, रोसी भी कसाकर का दूगी, मही प्रतिदि-
पराबद्धा माझसी है वह । उतर ही गया है वह पय । मैं ही पहुँचा
देता तुम्हें, पर मुझे घर जाना है सीज बरखा, जहाँ मैं ।”

आप जहाँ गया । बाते-बाते बिना बीड़ घुमाए ही फिर बोला—
“यह रोसनी उज्ज्वल रक्त को नहीं तो ।”

‘महीं नहीं’ का पूँ दिवा, फिर उसका काजल ही क्या ?”

आप बीड़कर बरख हो गया ।

सिद्धार्थ चले । जाँठ और नंगे बहव । सूर्य की झिम्मे सीज हो
कहीं । आप अपनी कमी वहीं पूँ गया था असतय के आदेश
में । सिद्धार्थ ने सहारे के छिपे उसे उठा लेवा चाहा । हाथ रोक
दिया बीज ही में—“पर इस पर मरत कमिना ही क्या । वह
झिम्मी ही तुम्हें बसु क्यों न हो, इस पर उस आप में बरखा समस्त
स्थापित किया है । उज्ज्वली आता फिर बिना ही इसे से खरा खोब
है । वह कल नहीं जाना बरख ही इसकी कोज करेगा ।”

उसी प्रकार चले वह । उतावट मिहीन पैर ! कमी कोई पम लगे
न ब बैठे । बर-पय के कुल-कंडक चुपके लगे उनके सहज-कामक
क्यों में । बार बंगुल की एक कीटीन और कंचे पर एक मजिज बर
को नहीं कमिना से उनकी बीड़ और क्षापी को हकने में समर्थ का ।
सूर्य उमक नंगे सिर पर कमकने लगे थे । कनिष्ठबस्तु से वह अब
उठ माथा पूर्व दिशा की ओर ही चले का रहे थे ।

कमी ही प्रेक्षा से वह कबीन होन्वासी, मुक्त-वैमल से मोरे
हुए घर का बोल भाषा है । ब-जाने का सोचना हुआ जहाँ का
रहा है । उसके उजल मास्तक में विरवास का बल है, उनकी मुट्टी
में एक हल विरचन । वह सीज, कीर उज्जाल के साथ बुर करके का
रहा है— बंग पैर और हाथ ।

हृद समस्त परचाए वह आकाश-काम में चहुँच गए । मूक

जाने लगी थी। घर बन्दे। वह स्थान बड़ा समशीत ज्ञात हुआ बन्दे। एक शाम के बेह की ज्ञाता में बैठ गए वह। पूरा अच्छी व लगी।

निकर ही एक गीताज्ञा में गार्प रैमा रही थी, बीच-बीच में। मनुष्य कोई भी नहीं दिखाई दिया वहाँ। दापहर का लजप था। मिशिर के ज्ञात को करकर समस्त-जगु चुप्पी पर निम्न डरने के बिने उठावली हो रही थी। बेहों पर पवन की मर्मत-व्यक्ति और पवन में मनुष्यारवाही मरिक्का का लुभन उस शुभ्य प्रकृति की बहामी को और भी अधिक बढ़ा रहे थे।

मिशिर्ये का विचार-क्रम एक बेंड में बरिधि बनाये जाय। वह साधने लगे—“देसे स्पष्ट हो विभागों में बेंड हुआ है वह जाय—मुक्त-मुक्त, आधो-धैरेरा, जम्न-मुक्त, शीत-ताप, जादि। वे दो मित्र बरुर्पे नहीं हैं। इनमें एक का कारण दूसरा है। इनको समस्त जगत् समझना, इसी की प्रकृति का उच्छास है। रूप से जन्म होकर मिन वह ज्ञाता बानी है। इनका स्पष्ट धर्म है मिन शीत और ताप में धंतर समझा है। ताप के बहकर होने से शीत भी धरत पठावेगा।” मिशिर्ये वहाँ से उठकर रूप में बैठ गए। मिन कुछ सोचने लगे।

कुछ लजप के जर्नर एक प्रीता की वहाँ जाई। वह सिधाय का वहाँ का इन्कर उनके पास गई और बाकी—“बद भी कोई बेरने का स्वाभ है तुम्हारे ?”

“कौं मा ?” मनुष्यिक बाकी में सिधाय के जूझा।

“तुमसे कुछ करने की इच्छा होती है। जम्न मेरा धर्म है तुम वहाँ पर जाकर बैठ गए। मेर वर जाने व। तुमने स्वामा नहीं स्वाभा जान बहता है। मैं तुम्हें जोवन बनाती। वहाँ भी यदि प्राताकाह हो जा जाते, तो मैं वर से पका जाती।”

तबों को ऐसी बंसी पीठ पर कभी नहीं झड़न किया तुमने । उनकी मित्रता ऐसी धनैर्ब से नहीं साधी जावगी वल । '

"बड़ी सत्य बात पड़ती है तुम्हारी बात । इसे मन में गहराई रख लेने की इच्छा होती है । कबल एक झूठे प्रकार में ही रक्त दिया गया है इसकी ग्रीह धरल्ला तक । इसी से प्रकृति के साधारण तबों से अर्बबा धरान हैं । प्रकृति और अर्थकार के मित्र-मित्र अनुपातों से इन अनृत कर्षों की सृष्टि हुई है । तुमने रात्र-विजय किया है मा ! कौन हा तुम ! और कौन-कौन है तुम्हारे ?

"कोई भी नहीं वल । पति और पुत्र विसृष्टि के प्रकोप में साध ही बल बसे केवल एक ही दिव के चरण में । मेरे मन में जगत् से बड़ी दुःखा हा गई । तब कुछ कावकर में बैशाखी में महामा अराधकाशाम की शरण में गई । उन्होंने मुझे एक मंत्र दिया और घर कीट जाने की आज्ञा देने बलका कहा मा । पति के हाथों की उपमाई हुई वह आज्ञा-बीबी है । मैं इनका अंतर्द्वार करती हूँ । इनके कर्षों को विरहित कर मुक्ति अनुमत्त करती हूँ । कुछ गार्ध पाछ रहती है, समय के प्रतिश्रम के क्षिणे, इसकी सेवा करती हूँ और ये करती हूँ धीरी वाचता, मैं तुम का दिया हुआ मंत्र करती हूँ और संसार के इस मंत्र का बड़े कीदृष्ट से देखती रहती हूँ ।"

"तुम कल्प हो मा ! कुछ मुझे भी बताओ ।"

"मैं क्या बताऊँ । स्वय ही सोचो हूँ । बैशाखी आया, तुम के समीप, धरल्ला ही वह सर्ग-विहृत कर दूँगे । हममें प्रकृति ग्राह करवा या फिर शिष्य की ही साधना हो होमा ।"

हाथ-बैर बोने को उठे सिद्धार्थ । दुर्बलता से बग बलिर ने, गिरते-गिरते सैकल गद् । मोक्ष के क्षिणे बैठे, नहीं जाया वल । बहुत दुःख मरल्ला किया । पद्मा ने गाव का दूध पीने को दिया ।

कुछ दर बीतने पर पचा ने कहा—“अब तो मस्तक-पीड़ा शांत हो गई होगी ?

“नहीं हुई ।” जब कभी मा तुम्हारी बातों में इसका ध्यान हट जाया है तो नहीं ध्यान पड़ती स्मरण आते फिर जाने लगती है । विचारमें ही उसकी जब जमकर झोत झोत होता है । क्या कारण होगा ।”

“गुरु महाशय कहते थे जब एक ईश्वर से मनुष्य दूसरे ब्रह्म में कूट जाता है वही तीव्र गति तब शरीर में स्थित पंचभूत स्थान-विप्लुत हो जाते हैं और राग उत्पन्न हो जाता है ।”

“पंचभूत क्या हुए ?

“वायु मूल तत्त्व, जिससे वह सारा प्रबंध उत्पन्न हुआ है अर्थात् पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और आकाश, इसलिये धीरे-धीरे, संभव संभवकर चञ्चल की आवश्यकता है । तुमने अपिचकलु से वहाँ तक की दूरी बढ़े बेग से तप की, तुमने इस सुरक्षित शरीर को और भी शीघ्रता के साथ विकसन कर दिया । इसी से रोग प्रवृत्त हो रहा । रोग डक का चक्र से मने प्रकार । भैंरे घर ही घर चलो वहाँ सुन से रहोगे ।”

“कैसा दुःख !”

“रोग से क्या होगी ?

“वह भौतिक दुःख, इसे जब धोखे दिया, तो फिर क्या । वहीं रोक है ।’

“घोड़ने को कुछ धीर जा रही हूँ ।”

“नहीं ! तुम बरबाद हो ।”

सिद्धार्थ का चम्पू तरह आकाश, गौशाला के द्वार टकराकर बसा करने पर चली गई । प्रभात-समय जब वह गौशाला में आई, तो उसने बुधराज का साया हुआ ही पाया । वह बिठा के साय उनके पास गई । वह बड़े-बड़े कराह रहे थे ।’

“रुहीर कैसा है ?”

‘बड़ी पीड़ा है । सारा जंग बुझता है ।’

पद्मा ने उसके अस्तक घौर नाकी पर हाथ रक्खा—‘तुम्हें तो खबर है ।’

सिद्धार्थ सहसा उठकर बाहर जाने लगे ।

पद्मा ने उनका हाथ पकड़ लिया—‘वहीं, ऐसे ही जंग जंग बाहर ठीक न होगा । जंग इकट्ठा पड़ रहा अभी, यदि खर इकट्ठा हो आया, तो बड़ा कुछ उम्मा बड़ेगा ।’

‘आज बड़ा जाना चाहिए मुझे ।’

‘कम करोगे, तो रोय वृद्धि पर आ आया ।’

सिद्धार्थ फिर सो पड़ । कुछ खाया-पिया नहीं उस दिन । संन्यासमय खर का बेरा बहुत बड़ा था और वह नवीन संन्यासी उसके साथ में आया प्रवेश हो गया ।

, और वहीं कसिबबल में सिद्धार्थ के महाप्रतिष्ठापक के समय मणोवरा बड़े मरकर लम्बे बेच रही थी । जब उसकी बीड़ चुली, तो उसने एक दासी को मणोवरा कहा—‘दासी, जा तुमराज के कम में जाकर बेच वह क्या कर रहे हैं ।’

दासी ने वहीं जाकर बेचा । वह बीड़ी हुई मणोवरा के पास जाई—‘तुमराज नहीं हैं वहीं ?’

मणोवरा ने विह्वल होकर कहा—‘नहीं हैं । अपनी प्रकार देख लिया था ।’

दासी फिर जाकर देखने गई । जो दासियाँ वहीं पड़ी सो रही थी, उस—‘तुमराज नहीं हैं ?’

‘उम्मा में नहीं है ।’

‘वहीं ?’

हमें कुछ खबर नहीं । वहीं बूढ़, चाँदनी या कपड़ों में लगे होंगे ।

आ जायेंगे अभी । बूमते ही लो रहते हैं वह राठ-भर चारों
घोर ।'

"आओ, देखो उन्हें कहाँ हैं । मैं बुधराजी को जाकर सूचित
करती हूँ ।" वह दौड़कर पयोधरा के पास पहुँची और हाँकती हुई
बोली—'वहीं है ।'

पयोधरा खबर करती हुई उठ गई—'मैंने उन्हें देखा, स्वप्न
में, वे राजसी बेश परिचाराजन जन की घोर चले गए । उनके पैर
बँधे थे और उनका मस्तक लुका हुआ । जा, जा, दासी महाराज और
महाराणी से जाकर कह हमारे सब भयानक बिच्छू हुए और बुधराज
समस्त बँधनों को बिछ कर चले गए । जा चारों घोर अरबा-
रोहिणों को उनकी लोच के शिखे मित्रता । अभी वह बहुत दूर नहीं
पहुँचे होते ।'

महाराज-महाराणी जागे, हास-हासियाँ जालीं हठ-मित्र जागे
हाथपाज-महरी जागे बाबक-अभिनायक जागे शीपाबक्षियाँ जालीं
और जाग उठ सारा राजमहल । सब लोग एक-एक कामे में सिद्धार्थ
की कोश करने लगे ।

महाराज स्वयं हजर-उबर कोश करने लगे, एक कद से दूसरे कद
में, अर्द्ध-प्रोणव, हाथों के कोनों, शय्या के नीचे, भीतर बाहर,
उपवन-कुल में, कहीं सिद्धार्थ का पता नहीं ।

एक सेबक दौड़ा हुआ प्रथम प्राचीर के द्वार पर गया । महरी
से पूछा—'बुधराज भी देखे तुमने ?'

महाराज भी दौड़ते हुए जा पहुँचे वहीं उन्होंने भी वही परतकिया ।
महरी विचार करने लगी ।

'शीघ्र उत्तर दो । क्या तुमने बुधराज को जाने दिया ?'

'वहीं, महाराज ।' हाथ जोड़कर महरी बोली ।

'सब-सब करो ।'

पसोबरा के किये कोई बिंदु न था। इसे तुम्हारी क्योरा कहीं प
 अपनी माम्म-दीवता। बड़ी, तुम मुझसे किराकर जा बड़ी सफ़ते
 मीने तुम्हारे प्रतिज्ञा-याकब में सदा परिवर्तन पाई। तुम कहीं कि
 गद्ग हो यह इतन को कि मेरे स्निग्ध-परिचय मेरे बिन्दु को किस प्रकार
 सदा करते हैं। पर जब या बहुत दिवस हो गया। तुम करते हैं
 गद्ग हो। मेरे स्वप्न सदा से, पर मैं सचेत ही न हो सके।”

बधा ये कहा सिद्धार्थ से— ‘‘तुम्हें ज़रूर है कहीं मावजानी बरतनी
 होगी। यदि रोक बंद गया तो कहीं दिवस जग जावेंगे। इसी प्रकार
 बने प्यो। हमारे गाँव में एक बैघ है मैं उन्हें बुझा जाती हूँ।’

‘‘मैं देखे ही डीक हो जाऊँगा। एक प्रार्थना है मा ?’’ सिद्धार्थ
 एक गद्ग।

‘‘क्यों न।’’

‘‘मैं कहता भूख गया था, मेरे समाचार किसी को न देना, महा-
 रात्र में सफ़र हो मेरी कोठ के किये जाते जोर बहुत हीका दिव
 होंगे। बहुत बड़ी पहुँचकर और भी डीक-डीक पता न देना। तुम्हें
 राजमन्त्र के बंका शूच-से पुपते हैं। एक बार बहाँ से तुम्हें बन्ध
 फिर उड़ी जाव में जिससे बन्ध न जाई मा, ऐसा प्रयत्न कर दो।’’

‘‘मैं क्या पाता हूँ ? न कौनगी किसी से। तुम्हारा महाद् बरेबर
 है, जसमें बाबा पहुँचाकर क्या जाठक कौनगी अपने सिर पर।’’

‘‘फिर बैघ को सुचित न करो। क्या बैघ रोग को मिला देता
 है ?’’

‘‘यह घोषित देता है उसके बरतन के किये।’’

‘‘क्या वह सन्तु की भी घोषित देता है ?’’

बधा ने हँसकर कहा— ‘‘नहीं, सन्तु की घोषित और दे सकता
 है ? केवल तुम को घोषकर।’’

‘‘तुम दे सकते हैं।’’

“हाँ ।”

“महाय्या बराबकाबसम वे सकते हैं ?”

“हाँ, वह मेरे गुण महाराज हैं । वह वे सकते हैं ।”

विद्यार्थ बैठने लगे—“मैं जब देता हूँ मा उनके पास अभी ।”

वह अडे । दुर्बलता से सिर में चकर आया और शय्या पर गिर पड़े ।

“अब उठो, कद रही हैं अभी । थोड़ा तो नहीं बगी ?”

“हाँ ।”

बीस दिन सिद्धार्थ मर से पीड़ित रहे । पद्मा ने उनकी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की । बड़े दिन वह फिर जाने के लिये तैयार हो गए, पर पद्मा ने बड़ी अनुमन-विमन से उन्हें रोक लिया । सातवें दिन फिर उन्हें कोई न रोक सका ।

पद्मा ने उन्हें एक कबज देते हुए कहा—‘सहसा ग्रहण का सामना करना शक्ति नहीं । अमरता उनके चेंबर में प्रवेश करने पर वह आक्रमण नहीं करती । आत्म-बल के इस निशान में तुम्हें हतप्र अनुभव हो चुका है । जो, वह कबज । शीत से धुल करने के लिये ।’

“जानो मा वह कबज है । माता से विदा की आज्ञा मैंमने में लिखा वह । महाराजी से शक्ति जाने की आज्ञा जाँगा, तो वह भी देती ।” सिद्धार्थ ने कहा—‘उसकी आज्ञा में मेम और आनंद की बूँदें बसक रही थी ।’

पद्मा शिष्य-शूर आम्नेव दिशा में चली सिद्धार्थ के साथ । बड़ी दूर तक उन्हें पहुँचा आई बैरागी के पथ में ।

बंदूक बर करिबबस्तु का बीट रहा था, तो कुछ ही दूर जाने पर कंधक पीड़ित हो गया । बंदूक के सेवा-उपचार का कोई पक्ष न हुआ, और कंधक ने प्राण त्याग दिए !

बंदूक मग में बोला—“कंधक ! तुम दुष्ट-दबाक हा । स्वामी के

विपोग में तुमसे प्रायः त्याग दिए। और, बंदक को वह पुनराज के महाभित्तिष्कम्भ के समाचार से ज्ञाता जीवन-मृत हो गया है।”

धरम की सहायि कर बंदक जहां राजधानी की ओर। निरंतर इसी स्थान में था—“क्या कर्तुंगा महाराज-महाराजी से। कैसे पुनराजी का विचार-मंदन सुर्गुण। महाराज निरन्तर मुझ पर कर हो जाएंगे। पुनराज की निष्पत्ति में सहायक होने के लिये यदि उन्होंने मुझे बंद देने को क्य कहा, तो—“बंद जन्मी पाशा में यदि देख बैठ गया, पर मैं एक क्षितरे पर।

महाराज की प्रवृत्ति, पुनराज का विद्रोह और इस प्रकार कुछ-भोग उलझ, विपन्न और अछाद्य होकर अवस्थित देश में जो ज्ञाता बंदक की मृत्यु, इन सब दृष्टिगत व्यवस्थाओं ने बंदक के माथस में उपद्रव-पुनराज कर ही। वह योगी हो गया, किसी प्रकार धरमी बाधा आये नहीं बना सका।

मिथ्य के मानवसिद्धों ने जब उसे दृष्टा, तो अपने घर के बाहर उसे शरण दी। शरीर क रोग से सुकरा राकर उसने अपने मन में सादर प्रकट किया, और फिर कनिष्ठवशु के घर में अमर करी।

राजमन्त्र में राजकुटुंब व वह समझता था कि पुनराज बंदक को साव लेकर ही मर दे। पर जब सिद्धार्थ के महाभित्तिष्कम्भ के माथों दिव महाराज को वह समाचार दिया गया कि बंदक विचरक-मुक्त होया जा रहा है, तो महाराज उभर ही सीढ़े।

जंगल में ही आते हुए बंदक को पा लिया उन्होंने। पुनः-मम के आयेर में वैभुज महाराज ने बंदक को गले से जगा लिया। रुद्र से विरुद्ध बाबी में बाटे—“बंदक मेरा सिद्धार्थ क्या है।”

बंदक मन में सोच रहा था महाराज अचरम ही विरवासपाठ के लिये मुझे मकामक बंद रेंते, इन्का पैसा कैम-मन्त्रधार देकर महाराज के चारों तर सिर रखकर उन्हें अपने जीभुओं से पीने लगा।

“कहाँ है, मित्रार्थ कहाँ है।”

प्रजापति भी नहीं था बहूँची थी, हमने भी रोते हुए कहा—
“बहूँच, कहाँ है हमारा कुशराज? तुम बता दिते नहीं क्यों।”

बहूँच ने बहूँच पोंडिते-बहूँचने हुए हाथों से हाथों की बोझी
महाराज के सामने रखी।

“कहा है वह।”

“कुशराज के चानूचच।”

“तो क्या इस प्रकार जी-विहीन हाथ जड़ा गया मेरा मित्रार्थ।”
माया पीटकर महाराज ने कहा।

“हाँ महाराज।”

बहूँच की बहूँच बहूँचच उन्होंने इते बहूँचनेले हुए कहा—
“कहाँ का।”

“वह नहीं जानता महाराज, मैंने उनकी के साथ रहने के बिके
बात-बात चबुचच-बहूँच की पर वह माने ही नहीं।

“हे चण्डाल! कुश भी नहीं बहूँचच उन्होंने कि वह कहाँ
जायेंगे।” प्रजापति ने पूछा।

“कहाँ, कुश भी नहीं।” बहूँच ने कहा दिया।

“कहा क्या उन्होंने हमारे बिके।” लखनऊ ने पूछा।

“कहाँ कहा कि मेरे बिके लोच बहूँच है। मैं चण्डाल काह मैं
रुच की प्राप्ति कर पाऊँगा।”

बहूँचच सभी तक चोर से चुन रही थी न वह सभी, नहीं था
जाकर कहीं हो गई।

महाराज बहूँच की बोझकर बहूँचच चानूचच को चण्डाल
पर बहूँचच चण्डाल करने बहूँच—“बहूँचच सभी तक मित्रार्थ के शरीर
पर बहूँच हुए चण्डाल की बहूँचच था रही है।”

बहूँचच ने नहीं लीचच और बहूँचच हरि से ब चानूचच बहूँच

और बहचाने । उसके लोक का वेग उमड़ रहा । वह वहाँ के नहीं
नहीं, और एक पक्षीय कण में जाकर रोने लगी ।

महाराज और महाराणी चर्चते कदम-बंदे तब में विज्ञान
करने लगे—“हमारी इस चौकी व्यवस्था में हमें जोर संस्कार में
बोझकर वहाँ जैसे गए तुम मित्रार्थ ? हमारी नेत्रों की ज्योति ।”

महाराज बोला—“महाराज, पुत्रराज के सिद्धे शोक करना हुआ
है । ज्योतिषियों की बाणी सत्य होकर रही । महाराज पुत्रराज
के लक्ष्य है । और वह उन्हीं की इच्छा की पूर्ति है । पुत्रराज
शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर कविचक्रवर्त्तु कीर्ति पावेंगे ।”

पत्नीचरा अपने समस्त आचर्यों को बोझकर ले पाई, उन्हें
महाराज और महाराणी के समीप लखा ।

महाराणी बचकर बोली—“है । वह क्या किया तुमने ? सीमाध्व
के प्रतीक बहार दिए क्यों ?”

“विश्वके स्वामी मित्र के देश में जब और सर्वत्रों में बिखर रहे
हैं, उस भी को लजामर्यों में कोई कानि नहीं । अतः न मात्र ही
रहा । विश्वके सिद्धे ?” पत्नीचरा ने कहा ।

११ गुरु की खोज

सुना जा में माँगते-खाते, पप चुने-चुने मित्रार्थ आगे बढ़ते गए
बेयाबी की दिशा में। राजमार्ग छोड़ दिया बम्होने।
जब और जनपदों को बचाकर निर्धन से होकर चले, कबड़ दिया
का प्रभाव रक्तकन। जब कभी भ्रम रह जाता, तो रुक जाते, किसी
खाते, कबड़हारे का बपिक से मार्ग चुनते और फिर अपनी प्रगति
आरंभ करते।

उस समयान् साहब कमल मित्र की, उस कद के पप में पहले
बैर रखे हुए त्यागी को जो भी देखना, बातें करने के बिने उठर
जाता। उससे अनेक प्रश्न पूछता। स्वभाव से ही सत्य में प्रतिष्ठित
सिद्धार्थ कुछ भी न दिखाते।

सब हो जाने पर वहाँ कले प्रकाश की सहायता से किसी गौरव की
सौमा का पहुँच, उपवास कहीं से मिला माँगते, पुष्पा में आहुति
देकर किसी प्रकार रात काटे, और सुबोह से कई बड़ी हुई बच
देते।

जो बदरन भोजन करता था उसे मित्रा में बहुत साधारण
जाना मित्रता। कभी-कभी सिद्धार्थ का उससे समय करने की इच्छा
होती। फिर वह सोचने—“त्रिदश को मन के समीप करना चाहिए।
त्रिदश प्रकार कीत का ईश प्रभाव से सहन करने जाता है। मेरे ही इसे
भी परामित कर लेँगा। सारे संसार में अधिक हीन और दुखी लोग हैं।
वे त्रिदश साधारण पप को बाहर करके परिश्रम करते हैं। मैं भी
उसमें स्वाद का अनुभवान करूँगा। वे हँसियों के आकर्षण एक
मनोविरुद्ध बचाव है। इसकी कभी लुप्ति नहीं होती। जहाँ

सिद्धार्थ को सदबल्य हुए, पर अनेक उन्को केवल आर्द्रव-सी बात हुए।

एक दिन महात्मा ने एकत्र में सिद्धार्थ से कहा—“सुख एवं मोहमें पड़ना है, यह मन के असीमत्व का है। मन में से पाँच आकार्य हुई हैं पाँच इंद्रियों की। मन जब पाँचों इंद्रियों में जोर करे करता है, तो वह कर्म उसे बाँधते हैं।”

“कैसा बाँधते ?”

“कर्म-बंधन, कर्म और मनु का बंध। बंधन होने के पहले भी कई बार हमारा मरना हो चुका है, और मरने के परचा भी कई बार हमारा कर्म होया। उस कर्म का समाप्त कर देना ही मुक्ति है।”

“वह कर्म कैसे समाप्त होया ?”

“अविचल निश्चास और अहं छापना है। सुख, मन के असीम होकर जब इंद्रियाँ कर्मत्व होती हैं तो फिर वे कर्म नहीं बाँधते। जहाँ पहला कर्मत्व है इंद्रियों की असीमता से मन को मुक्त करना। हमारा शरीर पृथ्वी, वायु, जल, वायु और आकाश, इन पाँच तत्वों से बना है। हमारी पाँचों इंद्रियाँ इन पाँचों तत्वों के गुणों से प्रभावित हैं। वे सुख हैं, रस, स्पर्श, गंध, स्पर्श और शब्द। वह सारा भौतिक भ्रमच सुख होकर मन में सोना है। उन्को बंधना हो आनन्द-योग का अर्थ है।”

“उसका आनन्द कैसा हुआ ?”

“इंद्रियों पर अपनी सत्ता की स्थापना ही उच्च आनन्द है। आनन्द की कल्पना मन है। कामचार्य जब मन में उदित होकर, नहीं सुप्त होकर नहीं केवल हो जाती है, इसे भी मन का आपस कह सकते हैं।”

“यह क्या वह मन ही है ?”

“नहीं, वह वह मन है, वह पाँचों इंद्रियाँ, वह बाँधों बंधन।”

“फिर ?”

“मन की गति की संवाकिका है बुद्धि। बुद्धि ‘अस्तित्व’ और ‘वास्तित्व’ की जाननी है। ईश्वर का विभक्त नहीं उपास्य होता है। ईश्वर के सेव को मिटाकर समता पाना ही बुद्धि का स्थिर बोधा है। स्थिर-बुद्धि मनुष्य ही सत्य के साक्षात्कार के योग्य होता है।”

“ठा क्या मैं बुद्धि हूँ ?”

“नहीं। तुम बुद्धि से भी बरे हो।”

“फिर मैं कौन हूँ ?”

“मैं नहीं जानता ‘मैं’ कौन है ? यही ठा पड़ेगी है। क्यों से मैं अपने स्वप्न का अनुसंधान कर रहा हूँ। इस ठिठक-ठिठक में व्यापक माया के शब्द संभूत-भूत बताते हैं। वह भी ठा स्मरण नहीं रहता कि मैं क्या जाग्रत रहा हूँ। जब मैं स्वप्न अपने का ही नहीं जानता, तो कैसे बता हूँ तुम कौन हो। मैं हूँ, वह मेरा अहंकार है, पर नहीं नहीं हूँ मैं। जो मैं हूँ, वही तुम भी हो।”

“क्या मैं अहंकार हूँ ?”

“नहीं, वह होने पर हम अपनी स्थिति से पतित हो जाते हैं। हमारी ही आत्मा अमल विरह में व्याप्त है।”

“क्या मैं आत्मा हूँ ?”

“संभव है।”

“परमात्मा क्या है ?”

“किंतु और किंतु का सर्वत्र। आत्मा परमात्मा के ही विस्तार का एक कण है।”

“आत्मा अहंकार नहीं है ?”

“नहीं।

“कदा का मरता है वह अहंकार ?”

“हाँ, हाँ।” अराधकाध्याय ने विपरीत से कहा।

“मेरे नहीं गवरी यह बात ।”

“बात ऐसी है । तुम्हारे स्तर तक नहीं काम देगा है । इससे मरीत लोगों में भाव और मर्कितों से काम नहीं चलता । वहाँ तो फिर खोजना ही है । कणाली से काम न होगा रावकुमार ! बड़े धर्म के साथ ही वेर बड़ेसा इस मार्ग में । स्वाध्याय महात्मक कष्ट है । उपनिषदों का अध्ययन करो यहाँ पुरातन में । मैं ध्यात-योग की शिक्षा दूँगा । केवल पुस्तक-पाठ से ही कुछ न होगा । ध्यात से मन की छीम परबका प्राप्त होती है । ध्यान मन का बाँधने के द्वारे कहा है । इसी है मन्त्र ।”

“मन्त्र क्या हुआ ?”

“यह अर्चन मोपशीय वस्तु है, इस राज्य को फिर बगड़ाना, यह दुष्टारा पात्र इसे ग्रहण करने योग्य हो जायगा ।”

“बात है मेरे पास । शिक्षा आहरण करने के द्वारे दिया है तुम्हें पण्य माहारी के । मैंने इसे मंत्र कर विशेष उन्नत बना रक्ता है ।” सिधार्थ ने वह पात्र महात्मा परादकाशाम के सामने रक्ता ।

महाराज के साथ महात्मा बोले—“इस पात्र से मेरा काम नहीं है । मेरा धर्म है इस देह-करी पात्र से । इसी में धर्म का संयम योग और बन होता है ।”

“मैंने जगत् के समस्त योगों का त्याग कर दिया । क्या मेरा वह पात्र अभी ज्ञान के ग्रहण के द्वारे उपयुक्त नहीं हुआ ? फिर और क्या जोड़ना शेष रहा ?”

“इसमें मंदिर नहीं, तुमने योगों को परित्यक्त कर दिया है । पर अभी बनका एक ही धर्म हुआ है । इसका कामना-कर्म से तुम्हारे मन में है ; अब कामना में से भी वे सम्पन्न वह हो जायेंगे, अभी तो रावकुमार !”

“क्या ज्ञान की इच्छा कामना नहीं है ?

“नहीं है। क्योंकि वह भागों से घुटकात पाने की इच्छा है।

“जब आत्मा परमात्मा कर, ही एक अंश है तो उसकी व्यक्ति बंधन की धार क्यों है ?”

“अहंकार के अशास्त्र-बन्ध।”

“नहीं समझा।”

“धीरे-धीरे समझाते। विरहाम कहाँ।”

“विरहाम क्या हुआ ?”

“विरहवात्मिका बुद्धि का नाम विरहास है। जहाँ ध्यान विकास को प्राप्त हुआ तुम्हारा, जहाँ समस्त बाधाएँ स्वयः ही मार्गदर्शिकाएँ हो जावँगी, जस प्रकाश जब आत्मता, धीरे ब्रह्मकों के बीच में मार्ग जलु और स्पष्ट प्रतिक्रिया होगा।”

● “क्या किमका किता जावता ?

“अन्तर और अन्तर अन्त का।”

“अन्तर अन्त क्या है ?”

“अन्त-अन्तर, न आ उपपत्ता है, न किमका मार्ग होता है।”

“स्वयं कैसे उपपत्ता है ?”

“वह नहीं जानता। कहाँ वह बुद्धि का विषय नहीं है।”

“जब वह बुद्धिस्थ नहीं, तब उसका ध्यान कैसा ?”

“उसकी स्थावा का तो स्वयं किया जा सकता है ? उसका आत्मता तो मित्रता है ? हय गृष्टि का मृगन करनेवाला तो क्यों है न ? एक निश्चय नियम दिखाई देता है न ?”

“हाँ, दिखाई देता है। उस नियम का ही ध्यान क्यों न किया जाय ?”

“हाँ मरता है।”

“मित्र प्रकार ।”

“हसीकिने वो विदामक की आश्चर्यकता है। उनके रूप की कल्पना चाहिए। असक आकर बसना होगा ।”

“कैसा है उसका आकर ।”

“अमक के कूट में से बरने हुए बड़ा। काव के बाजार पारो बेटों को पारो हाथों में लिए हुए ।”

“बार हाथों में एक कर्मभय कल्पना। सारी सृष्टि का विदामक एक गुण्य मनुष्य का रूप में। मुझे आका नहीं है यह रूप ।”

“विदामक धारम करने के बिने। ध्यान को सबक और विरसावी का आस्था में बहकने के हेतु। सम्राटि-ग्राहि होने पर भिन्न आता ध्यान और एवेव का सब अंतर समाप्त हो जाता है ।”

सिद्धार्थ उस आक्रम में रहकर साधन-व्यास में बसे। वह कल्पन मन नहीं स्थिर न हुआ। अमिसीबोधि के बिने उन्होंने उस स्थान को अनुपपुन्य पया।

वहाँ से बिदा हुए वह। आचार्य अक्षक नामक एक दूसरे आदि के आक्रम में गए। वहाँ भी बड़े आश्चर्यक उनका स्वागत हुआ। आचार्य अक्षक के सेकनों स्थित थे। कुछ दिन वहाँ रहने पर सिद्धार्थ ने निरचय किया, विदामक बिने यह और राज्य का त्याग किया, वह वहाँ भी न मिसेगा।

एक आक्रम में सिद्धार्थ के साथ बीरव, राज-निकम, सत्त, त्याग और सतिष्ठा से पाँच भद्रवर्षीय गुरुवाही उनके बड़े भक्त हो गए।

सिद्धार्थ ने जब आचार्य अक्षक से बिदा ली, तो वे पाँचों सचक भी उनके साथ हो लिए। वे सिद्धार्थ की गुरुवर्ष पूजा करने लगे। जब पाँचों शिष्यों के साथ उस बोधिमार्ग के पथिक ने मगध की राजधानी राजगृह की ओर चल बहाए।

राजगृह में मगध का पुत्रराज जहातगु, सास्य-राजकुमार

गुरु की आज्ञा

देवदत्त की सुट्टी में बस गया था। देवदत्त जिरा बाहला हमकी राम बुला देता।

हमने अज्ञातपुत्र को राम-बाहलु और हनु का उत्साही बना दिया। निदानों और बीरों की समारोहों का त्याग कर के समक-असमक कुर्बानि और कुबर्बानि में सम्मिलित दिखाई देते।

देवदत्त ने कहा—“गुरुदेव! जीवन का उदरक केवल राम-मुक्ति से। प्रकृत होने ही के लिये हमारा जन्म है। निश्चित मूल्य और अर्थों का शस्त्र है। य राजगुरु, मिहामन समा, सेवा और गुरु मोक्ष-पुष्पा को शोध करने के उपरान्त है।”

“हाँ-हाँ ऐसा ही है राजगुरु। पर तुमने फिर वह सामक-मोह कहाँ दिया दिया।”

रात्रि का शुभ प्रहर था। दोषा मगधपति महाराज विजितार के दिवाग से हुए, राजपानी राजगुरु से हुए विष्णुपति की एक गुफा में थे। गुफा सब प्रकार से सुमजिद थी। दो नर्तकिनी गुप्त-गीतों से कुछ समय के लिये अचकल लेकर विजय का रही थीं, विजय ही।

“वहीं गुरुदेव! तुम बहुत पाव कर चुके हो। अज्ञातपुत्र ने जड़कवाते हुए बड़े पैमाने से देवदत्त के दोषों कथों पर हाथ रखकर कहा—“तुम संसार में सबसे बड़े मित्र हो मेरे। मैं तुम्हें हरद से प्यार करता हूँ। यह विद्या मगध का माप्राज्य। तुम्हें कुछ भी डोम नहीं है हमका। क्या समझता हूँ मैं इसे। बीरों के समस्त होकर मारका फेर मकता हूँ। पर मित्र, एक-दो रूँद घसी और—“अज्ञातपुत्र के मुख से जार की एक बोली-गीत बार बार प्रकाश में चमकती हुई दूर पड़ी।

नर्तकिनी विजयिजाकर हँस पड़ी दोषा। इनमें से अज्ञातपुत्र हुए होकर नर्तकिनी के निकट आया। इनमें से

एक का हाथ पकड़कर बोला—“पर तुम क्यों हँसीं ? क्या मैं सुकि-हीन हूँ ?” वह मर के प्रयास में गिरने लगा ।

दूसरी नर्तकी ने सँभल लिया ।

अज्ञात ने उसके कंधों पर धरना परिहम-पूर्ण हाथ रख दिया—“तुम बन्दी मुक्त हो ।” वह फिर इसी ही ओर सम्मुख हुआ—“पर तुम क्यों हँसीं ?”

“किस बन्दी ! कबल है, इसलिये ।” मुसकاته हुए नर्तकी बोली ।

“क्यों इसका कारण ? मुझे मर से प्रभावित व सम्पर्क । क्यों हँसी तुम ?”

“मुझे दिखाई दे रहा है बुधवार, सुरा-भांड कहीं पर बिपा है ।” नर्तकी ने तिरकी छवि गुलाब के एक कोने में तीर की भाँति फेंकी—“तुम नहीं देख पा रहे हो ।

देवदत्त ने नर्तकी को तिस में बरकर देखा, और सुरा-भांड के किन्तु कातर कर हो गया ।

अज्ञातगुरु इन दो नर्तकियों को झोकर देवदत्त के पास खड़ा गया और द्विज-मित्र बाकी में कबले लगा—“भाई देवदत्त तुमसे कबल मेरा दिखाकीही दूसरा नहीं है कोई संसार में ।”

देवदत्त चुपचाप हँसने लगा ।

“नहीं, वह ठिक्काई भी हमने की बात नहीं है । तुम्हीं ‘हाँ’ कहना पड़ेगा ।” अज्ञात ने उसकी बाँह पकड़कर कहा ।

“किस बात के लिये कहीं ‘हाँ’ ।”

“बही कि तुमसे कबल मेरा दित चाहनेवाला दूसरा कोई नहीं ।”

“हाँ ।”

‘नहीं पूरा जासक बहो !’

‘तुम्हारा सबसे बड़ा शिरोपी हूँ मैं, इसीलिए मैं जब तुम्हें आसक की एक भी बीज न दूँगा। अभी उखाड़ा जाने से बहुत पहले ही हमें राजमन्त्र में पहुँच जाना है न, वही का बह सब खेद मिटाकर बह तुम अचेत हो गए, तो फिर बड़ी कठिनाई में पड़ जाओगे, उस दिन की मौति !’

‘फिर मुझे कहना पड़ेगा तुम नहीं हो मेरे मित्र !’ अज्ञात ने घुरा-साँह की ओर बढ़ते हुए कहा—‘केवल एक ही अंग्रजि यात ! आकाशवाणी का गीत बड़ा उलझा-उलझा यात हो रहा है। वह मेरे अंगरत्न मानस तक नहीं बिच रहा है !’

‘यह इसी का होय है। वह स्थिर हाकर नहीं गा रही है !’

‘अधिक बोध मेरा है बंधु ! जब तक मैं रात के माघ में हूँ वहीं जाता, जब तक गा नहीं सकती वह आकाशवाणी। जब तक मैं विमुक्त हाकर इसके मैत्रों की गहराई में जो बही जाता, जब तक न तो इसका स्वर सुझता है, न किबली है अस्वना, तुम्हारे हाथ थोड़वा हूँ। इतना परिधम, इतना म्यक और इतना कर उझावा है, क्या इस सब पर इरादा कर दोगे ? हम स्व-आगरथ को सत्य माने हो बंधु, इस ही बीजों से !’

‘अच्छा मैं धरने ही हाथों से दूँगा !’

‘बड़े विराम करण हा तुम, दो। अविष्य के किये बयों किलि होले हो ? इसी रात का बह भाग जो दिया हुआ है, बही तो अविष्य है। गंगा की मुक्तबारा के समान देवदत्त कल की किय बह को लेकर पहुँचें ! वह बिता नहीं है उसे, अभी तो उसकी चारा अविष्य है !’

देवदत्त आसक देवदत्तने जगा।

‘भारत मित्र मित्र, भारत !’ अज्ञात बोला।

“हाँ देखते नहीं कब करने लगा है पाव । देवदत्त ने उतर दिया ।

अज्ञात पाव करने क्या बल्ल होकर । सरसा उसे स्माप्त हुआ
“तुम भी तो ।”

“नहीं, मेरी हप्ता नहीं ।”

“सेना पड़ेगा, नहीं तो मैं फेंक देता हूँ इसे ।”

देवदत्त को भी पाव करना पड़ा ।

अज्ञात आवाज बल्ल ठिठ कर आवाज गर्तकी के पास हो गया—
“को आत्मपात्री, वह आवाज तुम्हारे धिरे है । देवदत्त, वह तुम्हारी गर्तकी—वह चंदरेका, वह तुम्हारी ओर देख रही है, तुम्हें अंतर और तुम्हें बपत्ती से, अपने स्वार्थ के आदेश में इसे विस्मृत कर दिया ।”

अपने-अपने हाथों से अब दोनों ने गर्तकी को भी पाव कराया ।

अज्ञात बोला—“अब क्या है । अब आहुती पड़ गई । आरंभ करो न ।

चंदरेका बीजा के तार मिलाने लगी देवदत्त धूर्त के तार ।
आत्मपात्री रीतपाई लेती हुई कभी भीरु कुम्भक आधों में बँधे हुए मंजीरों को कमबलाने लगी ।

“हाथ अंतर और बेशों में भी तो यह दो ।” अज्ञात ने कहा । आत्मपात्री मुसकई । दोनो हाथ कमर पर रखे हुए वह अपने आधों को कुम्भ में कमल को बाँधने लगी । देवदत्त को रीतपात्री बल्ल बरी धूर्त पर भीरु चंदरेका की तार और मंजीरों पर ।

आत्मपात्री ने हाथ कमर पर से बँधे उठा, बिट् और माने लगी ।

जसी समय बीजा हुआ एक अनुपम बर्तन पर आया । उसके हाथ में एक पात्रा, पर और कमर पर कलगी हुई हाथ । उसने

हॉकली सौस और कॉपली हुई बाड़ी में कहा—“मैंने एक-एक कर गिनी—”

अबोध ने डरकर उसका मुँह बंद कर दिया अपने हाथों से—
 “सुन रहो, कहाँ से आ जमके तुम। एक-दो गे फिटली उम्माव
 कारिका कर अपने स्वर कर चंदरा काज दिया, तुमने वैसे बरा
 दिया थाकन। बड़ने स्वर की धनिराम बास लोड़ ही है नर
 मूक और उद्दिग्न हाकर पाती पा बँड गई। बाघी कले नाघी,
 इस बार मैंने तुम्हारा अवरार जमा कर दिया। यदि फिर थाप,
 तो नर मेरी कमर से लुहा हुआ नर तुम्हारे मस्तक और कंधों
 के बीच से मार्ग बिहाइने के बिने मरे हाथों में आ जावेगा।
 बाघी।”

देवदत्त ने डरकर, जबाब्दापु के हाथ बड़कर कहा—“क्या हो
 गया तुम्हें अज्ञात। नर मरही है, बिने दिशाओं पर दृष्टि रखने के
 बिने हमने मिथुन कर रखा है। करने वरों नहीं देते उसे।”
 उसने उस भांगुन को अमन देने हुए कहा—“क्या मिले
 तुमने।”

मरही बोला—“अच्छा, बँच रहे। मैं नहीं जानता, अनुभव
 फिटने हैं उनके थाप। ने हसी दिशा की आर आ रहे हैं।”

“फिटली बूरा है।” देवदत्त ने बड़कर पूछा।

“अभी तो बहुत बुरी पा है।”

“अच्छा, बाघी अब तुम। जो करना जा, कर लो।” अज्ञात
 बोला।

“अभी दूर।” देवदत्त ने कहा मरही से। नर पुनराग की
 संकोचित कर करने लगा—“मेरी अमन में—

“वैसे अमनीत हा गप। नहीं, कुछ फिटली अज्ञात बँड न दिया
 जावेगा।”

“तुम तो दुबराज हो, सूखी पर कयका दिया जायगा व विचारत वस-वस्य का निवासी ।”

“दुबराज हैं, तभी तो कह रहा हूँ । मैं भगव का भावी सखा हूँ । यदि कोई महाराज से जाकर ब्याह्रम करेगा, राज्य के सुहाय में लेते ही मैं उसे सूखी पर कयका दूँगा ।”

“बह भविष्य के संस्कार में उका हुआ है । जमी को हा देवदत्त को अपने मस्तक की पिठा है । बंधु, इसे भक्त्य व समझी तुम्हारी थीर मेरी मित्रता मित्रता भक्ति बरती जा रही है, उससे कहीं अधिक मुझे भगव राज्य में अपने राजपुत्रों का भय हृदि व दिशाई देने लगा है । उन्होंने छठ-छठ तुलकर विपुल कर लगे हैं, देवदत्त के उपराध हूँ देने के बिने । तुम जानते ही हो, किसी बार महाराज के कर्मों तक से मेरी छोटी-छोटी बातें छ पड़ें ।”

“तुम झूठो कहीं क्यों । मैं कबित बंद हूँगा क्यों । महाराज थीर प्रजा के विषय हम कोई पर्यंत्र नहीं कर रहे हैं वहाँ । अपनी मित्र को छोड़कर रसालुर्भवान कर रहे हैं वहाँ । राजधन के मित्राधिकों की मित्रा में कोई विषय व रहे, हस्तकिय भाप है इतनी दूर ।”

“नहीं ब्रह्मच, मेरा हृदय नहीं मानता । मैं समझता हूँ वह पुण्य चरों की ही लोडिका है । उन्हें अपराध कहीं-न-कहीं से हमारे इस कलोग का सूत्र निज गया है । थीर इन्हें भी कोई संग्रह नहीं, वे महाराज को लेकर ही व भा रहे हों । मुझे बचाओ अज्ञात ।” देवदत्त ने अज्ञात राजु के दिग्ग की ।

“नया करें फिर भय ।” अज्ञात ने कहा ।

जात्रावादी थीर बंदरेका दोषो हूँसके कहीं, देवदत्त की उलझन को देखकर ।

“हूँस क्या रही हो । तुम्हारी भी लगी संसृति बीजका देव मित्रका है दिवा जायगा ।”

अज्ञात भी कुछ बचाने लगा उसने प्रहरी से कहा—“जाओ दोस्तों, प्रहारा नहीं लड़ना था।”

प्रहरी चला गया। दबदब दिवार-मिसमल गूँगा था।

सुभद्रा अज्ञातपुत्र से फिर कहा—“बन्धो फिर भाग बसें।”

“कैसे हम चेंचोरी रात में ?”

“फिर क्या होगा ?”

“गुरु के समस्त प्रहारा बुझाकर दिव्य की निस्तम्भता में अपनी निस्तम्भता मिला दें।”

प्रहरी धाकर कहने लगा—“कुछ और निश्चय था गुरु।”

“इसी ओर ?” दबदब ने कहा।

“हाँ।”

“ये सब प्रहारा बुझा दो।” कहकर दबदब स्वयं भी एक दीवार की ओर चला, उसे बुझा दिया।

शेष दीवार प्रहरी ने निर्विघ्न कर दी।

गुरु के जाने केबखतर में अज्ञात ने पुकारा—“आज्ञाकारी !”

हैमती हुई वह बाप्री—“हाँ सुभद्रा !

“मय तो नहीं बना रहा है ?”

“नहीं, मगध के मावी सप्राद के माव किरका जब।”

“वह सप्राद सब होगा, तब। इस समय तो सब मौन रोझर पड़ी रहो सुभद्रा।”

“क्या चोरी कर रही है ?”

“और नहीं तो क्या ? मगध के सुभद्रा को अपने रूप और स्वर के जाह में बाँधकर तुमने कुमार्ग पर रज दिया है यदि बन्ध की गई, तो फिर आज्ञाकारी का मार्ग भूल जाओगी।”

“बय, सब हुआकर मौन रज पारण बना सुभद्रा। यदि आज्ञाकारी और दबदब को या दना नहीं चाहते हो, तो।”

महरी उस चरबदार में बोला—“मेरे पिरे क्या खाता है ?”

“तुम अपने स्वात पर जाकर खरग रहो। जब वे खोप मिलने जाने लगे, तो हमें सुविड करो।” देवदत्त ने कहा।

“ओ खाता !” कहकर महरी चला गया।

“वेण कछ कहीं है देवदत्त ! काधो, मुझे हो। मैं उसे फिर हाने लकूँगा।

देवदत्त ने हँसकर कुछ दिया—“जब कुछ-कुछ हो मित्र !”

“केवल एक बात देवदत्त।”

“कह जाओ उसे भी।”

“मैं सोचता हूँ, क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे महाराज विद्यवार के पीछे-पी राजसिंहासन हमारे अधिकार में आ जाये।” अजात ने पूछा।

“विचारकर दूँगा हस्तक उपर अजात।”

जब कुछ देर में मित्र के घर हो गए, पर देवदत्त की माँझों में भीड़ कहीं ! वह बाहर जाया। महरी को बुझाया।

महरी चाकर उपस्थित हुआ।

“कहीं पर है प्रभुवर ? मैं तो कुछ भी नहीं देख रहा हूँ।”

“उपर, सामने नगर की दिशा में, धामी-धामी जिन गए हैं, महाराज के सिन्धवाराम की अमराई में। देखिए, धामी प्रकट हो जायेंगे।” महरी बोला।

देवदत्त ने कहीं देर प्रतीक्षा की। अजात प्रकट न हुआ, देवदत्त कहने लगा—“तुम सूँघ हो महरी। जाय पता है तुम्हें चोखा हुआ है।

“नहीं राजकुमार, मैं पुराण की बहुत बपों से सेवा कर रहा हूँ। यदि ऐसी ही दण होती तो कभी कय सिन्धवार दिना गया होता।”

बंदरुत फिर देखा रहा। फिर कुछ भी छिप्योचर न हुआ। उसने गहरी का हाथ पकड़कर कहा—“घरने भाते से डीक दिना को संकेत करो।”

गहरी ने आशा का वाक्य किया।

बीच प्रकाश में देवदत्त ने भाते की आँक से हम रवाना का अनुमान किया। उसने पूरा की हँसी हँसकर कहा—“वहाँ सिंगवा राम वहाँ दे वहाँ पर ता करिबब-नामक जनपद दे। जान कदा है, याँ में कोई कर्मच हागा।”

‘वहीं राजकुमार, करिबब में कोई कर्मच वहाँ है। मैं सभ्य-समय अभी पय से तो आया था, बाघ न मुनाई ददा क्या।’

“किसी का कोई पद तो गया होगा। वसी का हँद रहे होंगे।”

‘बह भगवान् जाने। सचमुच में अब न-जाने कहीं चला गया प्रकाश।’

तुमने पुनरात्र कारस-आगरण विनय किया। उन्हें एक संतोष होगा, गहरी बीद में मो ता रहे दे। मरी मित्रा भी संग कर बी तुमने।’

“समा कीबिद। यदि वे सचमुच में गुप्तचर होने और मैं उन्हें कुछ और समझता ता भी तो कबिनाई में पद जाता।”

“समय कितना बीत गया हागा।” पूरा देवदत्त ने।

“धर्मी हैद गहर राजि रोच हायी।”

“जाकर मैं भी जाती पर फिर रलता हूँ। वहाँ, कदाचित् बीद का बाघ। गहरी! सूचना नहीं, बार वही रात रहते डस देना हम सबको कि प्रकाश होने के पूर्व अपने-अपने स्थानों में पहुँच जायें।

जैसे ही चोरी-छिपकर वे देवदत्त पुनरात्र जगत्पुरु को मैर-समाप्तों में निपुष्ट रहता। कभी-कभी दिन में भी वे युगपा क

पदावे से विष्णुबल की उल्लङ्घनों को चले जाते थीर निर्ज्व होकर मनमात्रे विज्ञास में निमग्न रहते ।

सैवक-देविचर्म क्या, बड़े-बड़े सचिव और अधिकायकों का भी पुत्रराज के विरुद्ध महाराज से कुछ करने का साहस न होगा ना । वे सोचते—“कुछ समय परचाए अजाठकुल के ही हाथों में राज्य गुन था चारोंगे, क्यों क्यों ही में हुकमी ललुण की जाय । त्वर्प डीक हो चारोंगे, वह समय आने पर । बीसव बेग में है हुकमे कुछ दिन में राख हो जायगी वह धाँची ।”

महाराज विस्तार कुछ बात से समझत नहीं थे कि देवदत्त की संमति का अभाव पर क्या प्रभाव पड़ रहा है । उन्होंने देवदत्त को पुत्रराज से दूर करने की चेष्टाएँ कीं, वह विफल हो रही । भगवत्पुत्र में बड़े दह होकर देवदत्त के दैर कम पड़ गे । समय के पुत्रराज के हृदय में एक विशेष स्वभाव अविज्ञित कर दिया था उसने ।

एक पुक्ति सूची महाराज को । काठी का एक बहुत बड़ा घास कोलकाता से उन्हें पीछे में भिजा हुआ था । विस्तार के देवदत्त को वहाँ का प्रयत्न विमुक्त कर भिन्न देवे की “दायी । पर पुत्रराज अजाठकुल किसी प्रकार सम्मत न हुआ । उसने तब लम्पों में महाराज से कहा—“देवदत्त मेरा बात विज्ञ है । मैं उसके किया नहीं जीवित रह सकता । यदि समय के राज्यकोष पर वह अन-कम हुआ है, तो वह मेरे पक्ष पर रहिया नहीं ।”

महाराज चुप होकर रह गये ।

उस दिन अविज्ञितसु से महाराज दुरोधन का भेजा हुआ दूत का पहुँचा पत्रपुत्र में । देवदत्त ने जब वह समाचार सुना तो रह न सका । पुत्रराज अजाठकुल के साथ उसने भी राजसभा में प्रवेश किया ।

एक सिद्धार्थ के महाभिक्षिण्यस्य के समाचार लेकर जाकर

था। उसने हाथ जोड़कर महाराज बिबसार के सामने विवेदन किया—“महाराज, मैं बरिबबल से बापा हूँ। महाराज दुखीदुख से मुझे मिला है। पुबराज सिद्धार्थ, जगमग एक मास धर्तीय हुआ राजमन्त्र से बिना किसी से कुछ कहे-सुने ब-बाबे कहीं को बिक्रम गये हैं। बहुत कोख करने पर भी अभी तक उनका कोई पता नहीं आता है।”

“कारण ?” बिबसार ने पकित होकर पूछा।

बेबदुह के मुख पर बड़ी निजब धँकित हुई। उसने बजाव का हाथ पकड़कर धीरे धीरे कुम्ब कहा अपने।

दूध ने उत्तर दिया—“बाबबाबरया से ही पुबराज के मन में संसार के सुखों में अपनापन उत्पन्न हो गई थी। अनुमान बड़ी धम्मका का रहा है कि वह संन्यासी हो गए।”

बेबदुह अपने आसन से उठा—“एषठा जमा हो महाराज ! मैं बठाऊँगा कारण। मैंने पुबराज की संगति में अपना बचन बिठाया है। मैं जाबता हूँ मलय कारण।”

“कहो।” महाराज बोले।

“कारण है, पुबराज को जन्म से ही कारणार में डाक दिया गया था महाराज। जगद्व दिया दिया गया उनसे। सत्य पर आबरव डाक दिए गए। साथ ध्वीरों के बंधन में उनकी हँसिर्नी बूटपटा बड़ी धीर वह बैसे हुए जग के वेग से बाँध को छोड़कर बिक्रम गए ससार में।”

“कुप भी हो संसार के बंधन छोड़ डाकना क्या सत्य बात है ? हमें पुबराज के बेराम्य की लुति करनी चाहिए।”

‘बेराम्य संन्यास कुछ भी नहीं है वह महाराज वह एक दूसरा ही राम है। मुझे शाय है वे अतलुर के बक।”

बीदुख के साथ महाराज बिबसार ने पूछा—“क्या शाय है तुम्हें ?”

“वह विमला का राम है महाराज ! उसके अपने बच्चा है राजकुमार नंद ! उसी को वह अस्त्रिबलु का राजकुल पहनावा पहली है ।”

रुद्र ने विरोध किया—“कहीं महाराज, ऐसी बात नहीं है । महाराजी प्रजापती ने पुत्रराज सिद्धार्थ के समीप कभी किसी छोटी से-छोटी बात में भी राजकुमार नंद को धेरे नहीं दिया । सात दिन का ही उन्हें माण घोष गई थी, सभी से महाराजी ने दिव-रात न देखे, प्रीत्य-शितिर कर विचार न किया । अपने सुक-दुख, मूक-व्यास न समझे, उस मातृ-हीन शिशु का जावन-पम्बाव ही अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बनाया । आज उनके अमाश में सबसे व्यथित बही हैं ।”

देवदत्त बोला—“कभी रजिवात की देहली का अधिपत्य भी किया तुमने ? बाहर-ही-बाहर क्या काम सकते हो तुम दूध बीछि की बाजों को । मुझसे छोटी, मैं जानता हूँ इन सब बातों को ।”

“हम नहीं मान सकते राजकुमार देवदत्त ! तुम्हारा राज्या-विहारी लाक्ष-वंशजों से कुछ बन्धुजात हैप है बही कई बार मन्द हुआ है तुम्हारे सुक से । इसी हेतु क काल है तुम्हारी दृष्टि में कल्प गुप्त भी अबगुन ही प्रतीत होता है ।” विस्तार से कहा ।

देवदत्त फिर न बोला ।

रुद्र ने कहा—“महाराज मे आपकी सेवा में वह विमल की है, यदि पुत्रराज का कभी आपके राज्य की सीमा में पराधीन हो, तो उन्हें स्वराज्य और स्वपुत्र की कीटा देने की कृपा की जाय । जिसके शिरो अस्त्रिबलु की प्रजा और राजा आपके सदैव ही उपज्ज रहेंगे ।”

अनेक प्रकार से महाराज दृढोद्घ के शिरो आरवातन-सदिस भेजकर मगधपति ने रुद्र को विहा किया ।

देवदत्त ने समा-मन्त्र से निष्कर्षित होत हुए मारी में अज्ञातानु से कहा—“असहाय, मालु-हीन सुहरात्र सिन्हाय, यदि आज उसकी माता जीवित होती, तो उसके यह गुरु-त्याग की बड़ी न छाती। मुझे रह-रहकर उसी की इस विषय अवस्था का ध्यान हो रहा है।”

“पर मेरे विचार में तो बड़ी आश्चर्याही नाच रही है। उसका अग्रिम रूप आचरण अष्टितीय गौतम-गुरु, अनुपम भाव-नाति मेरे हृदय में घर कर गए हैं। मुझसे उसे जाने नहीं। देवदत्त मित्र, तुमने उस भगा दिया।”

“मैंन नहीं भगाया बंधु। आर्षाचर्य के प्रमुख बनाविष उसकी सम्पूर्णता करने हैं। बड़े-बड़े सम्राट् उसकी इरामना क शिष्य छात्रा पिठ रहत हैं। आवस्तो में सुना है उसकी विराज अज्ञातिका, दास-दासी और गुरु-आग को दन्तकर बड़े-बड़े महाराजों का विमल मन्त्रिन पद जाता है। वह फिर जाने की प्रविष्टा हो कर गई है अगले ब्रमलोन्मय पर।”

“बहुत दिन है अभी।”

“अम्बह कही मन्त्र की स्थापना करा मित्र।”

“वहीं देवदत्त। क्या हमारे आहर और घन भ वह संतुष्ट नहीं होती?”

“तुम पर प्रेम करती हो दे वह। कम्बह बर्षा उसे चारी-विष कर रहना स्विस्त्र नहीं है।”

अज्ञातानु ने कहा—“हमी से तो मैंने तुमसे कहा था राज्य क मूर्ख अभी मेरे हाथों में जाने की आवरवकता है। चलो, एक दिन बड़ी आवस्ती का कई बहाना बना शिष्या आवसा।”

“यदि बर्षा उपस्थित न हुई तो?”

१२ आप ही गुरु हैं

सिद्धार्थ विष्णुदेवी की तीसमाहात्म्य में सुशोभित प्राण की राजधानी राजगृह पहुँचे। उस बीर व्यागी के बग में आम्रवृक्ष लगा, बरस भी सो नहीं थे। वर इसके देह की पथि और कांति, इसकी भाव और गति, इसके संकेत और बाणी उसके रहस्य को बिपाकर नहीं रह रहे थे।

जिसने उस प्रभा-महीण मुख-मंडल को देखा, ऐकता ही रहा। गोप ने गाप को झोड़कर उसे देखा, गाव ने चरना छोड़कर उस पर धरि की। धमी ने भार भूमि पर रखकर उसे देखा, आँत ने जागकर उठे निहारा। रमणी ने अवगुंजन उठाकर उसका दर्शन किए, पुत्र ने माता का स्तन झोड़कर उसका पचकोकन किया।

मिथिका, रथ और बाहन के आरीखियों ने रखकर उस वरम सेवारी अमल के दर्शन किए। जो उन्हें न देख सके थे, वे झौंककर आप उन्हें प्रबोध करने। अब घड़ी करने लगे—“कीन है वह स्वर्गीय कांति और गति का समन्वित पुरुष! वह देवता, ब्रह्म, मंत्रार्थ है वा मनुष्य?”

सिद्धार्थ राजगृह के द्वार-द्वार पर जाकर मित्रा सादरब करने लगे। प्रत्येक उनके मित्रा-यात्र को परिपूर्ण कर देने के लिये आकुल हो उठा। वर उन्होंने एक मनुष्य से केवल एक ही प्राप्त की भीछ माँपी। मित्रा-यात्र बर भर रमा, दो सिद्धार्थ नगर के बाहर चले। पाँचव-तीस पर पहुँचकर, एक निर्धनैसी के समीप बैठकर वह भोजन करने लगे।

बनारस की अति मिहार्च के आगमन का समाचार समस्त नगर में फैल गया। राजमहल में महाराज के समीप यह समाचार सुनाया एक सेवक ने— 'महाराज, एक अनुपम तेज और छावण्य युक्त मनुष्य आपकी राजदारी में आया है।'

"युवराज मिहार्च तो नहीं हैं ?" माइता महाराज के मुख से यह भारी निःसृत हुई।

महाराज का कौतूहल यहाँ तक बढ़ा कि वह उसी समय मिहार्च से मिल करने के लिये व्यथ हो उठे। उन्होंने पात्र और अनुचरों की भी प्रतीक्षा नहीं की। एक साधारण प्रजा की अति वह एक ग्रही को माघ लेकर पलने-पलने हमी चब चब दिव बच की ओर।

बाँह-रोक पर बाकर देखा, एक वृक्ष के नीचे एक अति-समृद्धि, लयाकार मनुष्य व्याकरण होकर बैठा है। ग्रही को कुछ दूर पर ही छोड़कर उनके निश्चय यागप्रति करे।

महाराज विचवार की आँखों से मिहार्च की अर्धि लुभ गयीं। वह स्थित हो उठे मानों बहुत दिनों का इनका परिचय है। उन्होंने मूक भाषा में माघ के प्रगाढ़ाजी मज्जा का स्वागत किया उनकी आम्बरपना की और अग्नि की ओर बैठ जाने का संकेत किया।

महाराज विचवार ने देखा, उन तेजस्वी महापुरुष के समीप बगड़ी भारी प्रभुता, दुर्ग और राजनगरीय, सेनायुक्त और विविधप्रकार मय-के-मय अर्पित मुख हैं। महाराज दुर्ग और अस्मिता को भूषण उन लय-जैष्ठ से मरी भूमि पर बैठ गए। उन्होंने प्रत्य किया— "तुम मिहार्च हो ?"

मिहार्च ने मुख गाना— "हाँ, मैं मिहार्च हूँ।"

"तुम्हें क्या है हे शासनरत्न के मन्त्र ? तुमने एक तुम्हें मिहारी

के हुकमे भी मर्ति राज-मुख खोह दिया और हम इस बोझ, धार्मिकार्थों के भीत, तुम्हें कीरकों के तुल्य इसी में भिमे हुए हैं।”

“आप क्या इस राज्य के—”

“हाँ, मैं विवसार हूँ।”

“आपकी प्रजा में से किसी के भी मेरा नाम नहीं चला। आपने कैसे ज्ञान दिया मैं सिद्धार्थ हूँ? करिबबस्तु के राज-वृत्त नहीं एक आ पहुँचे हैं, ज्ञान पड़ता है।” सिद्धार्थ ने मुसलमान के साथ कहा।

“हे सुंदर युवक! तुम्हारे ये सुस्मेसब हाथ-पैर इस मृत्तिका के पात्र और इस कर्म-पथ के बोध्य नहीं हैं। क्या राजसभन में तुम्हारी किसी से कुछ कहा-सुनी हुई? कोई भिटा भी बात नहीं है। मेरे साथ बसो, मैं अपने राज्य के बहुत बड़े भाग का तुम्हें आबीरकर बना दूँगा। यह कंठकाकीर्ण नय तुम्हें ज्य्यस्त नहीं है। तुम्हें नावाप्रकार के कष्ट उठाने पड़ेंगे।”

“हे सम्राट्! मैं कष्ट को ही सहकर बनाकर घर से निकला हूँ। कुछ दिन उलका सहवास होने पर फिर वह ज्य्यस्त हो जायगा।”

“राज्य और धुल का संसार भी तो पराक्रम से उपकरण करने की वस्तु है। उसकी कबेका उचित नहीं है। वसमें रहकर भी तो मजुष्य राज्य और शान का अनुसंधान कर सकता है। कमल-यत्र के समाज वसमें विविध होकर भी तो उसमें ज्ञान दिया जा सकता है।”

“अभी महाराज, एक बार जिसे तुम्हें समझकर पकड़ कर दिया, फिर इसी का अर्थक पकड़ लेता, मेरी सबसे बड़ी पराक्रम का कारण होता। वह मेरा सब ही मेरा राज्य-वेध है। इसमें निराश करनेवाली सब और वस्तु दोनों प्रकार की इच्छाएँ ही मेरी

प्रजा है। तुम्हें और बिदेह मेरे समान है। तुम्हें हमारी के साथ सीधे और बिदेह के बिदेह रहने का।”

महाराज बिदेह मन्त्री-मन्त्र मित्रार्थ के भाग की प्रशंसा करने लगे।

मित्रार्थ फिर बोले—“सत्य के बाधाकार का एक संस्कार कर मैं कर से निकलता हूँ। मन्त्र संस्कार में सारी अनुभवा परिधि है। वह धर्मीय वेदना में पड़ी कराह रही है। मैंने उसका धरिण मन्त्र सुना है। मैं अभी वह कष्ट की आपत्ति होने का रहा हूँ। तुम्हें अपनी शक्ति का प्रयोग हुआ है और मैं करने उद्योग में प्रयत्न रहूँगा। मैं इस शारदय सत्य का अनुसंधान कर ही रहूँगा।”

“तथास्तु, ऐसा ही हो। मेरी मंगल-कामना पड़ी है, तुम्हें तुम्हारा हृदय प्राप्त हो। यह मेरा समस्त मंगल-माहात्म्य एक छोटे-से पुष्प की मूर्ति तुम्हारे चरणों में अर्पित है। तुम्हें मित सहायता की आवश्यकता है, इस मांगपति को अपना तुम्हें लेवक मन्त्रों वह मन्त्र तुम्हारी हृदयपुष्पा उपलब्ध कर सकता है।” हाथ जोड़कर महाराज बिदेह ने कहा।

“हे महाराज! तुम्हें कुछ भी नहीं चाहिए।”

“क्यों है तुम्हारे त्याग में तुम्हें सारे जगत् के सच्चाई का भी सम्राट् बना दिया है।”

“धर्मी प्रत्येक संस्कार है महाराज, मित्रोनि मेरे मन को इस धीरक बाध में प्रकट करता है। सेवा और शक्ति से वे बन्धित हो नहीं सकते। धी और संवत्ति के बल में वे हो नहीं सकते। फिर मैं आपसे क्या महावत्ता माँगूँ।” मित्रार्थ ने कहा।

“मंगलान् कृपातु हुए हैं तुम पर। महाराज दशरथ को पर्व का मोह हुआ है। मैं उनके बात सदिश भेजूँगा कि उनके सत्य के अन्वेषक की कोश करना उसे उनके गुण प्रपन्न से विरक्त करना है।”

“क्यों न ?”

“परंतु मैं तुम्हें समस्त जंगलीय में सर्वश्रेष्ठ समझती सम्झना हूँ।”
देवदत्त ने कहा :

“जहरेला के भाव कुछ अजीब पड़े।

“हमारे इस विचार का अर्थ होगा। इस मित्र का निर्बंध हम दोनों को मान्य है। जाओ, साहस रखकर जाओ, और अपनी प्रतिष्ठा को जड़ बल स्थापित करो। तुम इंद्र-कुंभ-केसे देवताओं का मन हराने का सक्ती हो। इस अमर का अस्तित्व ही क्या है तुम्हारे इस स्वर्णिम रूप के आस के समीप।”

जहरेला ने धूमि पर पैर पटक, मंजीर-घण्ट की कलक से बीस गायी पड़ी चौक जड़े। वह बोली—“अभी बात है तुम दोनों में से कोई भी न जाने दावेगा नहीं।”

“हम नहीं किने रहेंगे।”

जहरेला आगे बढ़ी सिंहाई के समीप, अर्धतल छत, और भीम बीरब आशों से। आगे जाकर देखा, एक परम दिव्य पुष्प आमतक बिछा है। अपने में ही विचित्र देखावट वह बर्तकी देखाती ही रही उन्हें। व समझ लगी कि मनुष्य के सामने कहीं है या एक प्रविष्टा के। वह विचारने लगी—“अपने में जो आस एक अमर के आने का समाचार वा, नहीं जान पड़ते हैं। इस विचार प्राणी की चेष्टा से मुझे काम ही क्या। मेरा क्या विचार बिना है इन्होंने ?” वह झूट जाना चाहती थी, उसे बार धावा फिर—“मेरे समीप आकराओ। मेरे चरणों की ओर, मेरे पदचक्र की पूछ।” वह सिंहाई के निकट बैठ गई। उसने डबकी जंघा पर अपना हाथमरोठों से भारी हाथ रक्खा।

सिंहाई ने जानें ओझल कहा—“कौन हो तुम ?”

“तुम्हारे इस अग्रिम रूप की जन्मादिनी हो रही हूँ।” — 12

“नहीं-नहीं, रूप और जीवन दोनों अस्मिता और अमरता हैं ।
तुम सारा भूमिपर आ पहुँची हो नहीं ?”

“भूमिपर नहीं जान-भूमिपर ही आई हैं । मैं तुम्हारे रूप
की प्रतिमा, आकाश की । मैं तुम्हारे गुहारे में ही सील सील
आई हैं । उदात्त धर्म, तुम्हारा वह रूप और जीवन इस
विश्व में नग्न और उपोषित रहने के हेतु नहीं रखा गया है ।
मेरे साक मेरी भूमिगत अस्मिता में चला । मैं अमर की पार
वैश्वव्यापिनी और अमरार्थिता आरागता हूँ । बड़े-बड़े प्रतापी और
विजयी सत्ता, बड़े-बड़े अमरार्थि कुंवर मेरी आकाश मेरे दुर्ग
और मेरे रूप के निचे आकृष्ट रहते हैं । अब, मैं इन सबका
परित्याग कर कबल तुम्हें प्रेम करूँगी । मैं तुम्हें तुम्हारे प्रेम की
मिठा चाहती हूँ, मुझे विराग न करा ।”

“मैं तुम्हें क्या मिठा हूँ, मैं तो सब मिठा हूँ । तुम्हीं
हो मुझे एक भीत ।”

“क्यों, क्या चाहते हो ? तुम्हारे स्निग्ध और नाम तुम भी अद्वैत
नहीं हो ।”

“आत्मा को अपने प्यार के आकाश समझकर मैं आकाश हूँ ।
मेरे इस भूमिगत अस्मिता में तुम आकाश पहुँचा रही हो । मैं यही भीत
तुम्हें चाहता हूँ, तुम नहीं तो आई हो, नहीं नहीं
आओ ।”

“नहीं ।”

“तो मुझे ही आकाश, करोना ।” कहकर अस्मिता के रूप
“सारा अमर ब्रह्म है । विराग विराग की ओर, जीवन अमर
की ओर, अमर अमर की ओर, अमर अमर की ओर । अस्मिता ही
ब्रह्म है अमर नहीं, अमर की विराग में, आकाश नहीं, अमर की

दिखा में, मित्रा नहीं, आशुति की दिशा में; भ्रम नहीं ज्ञान की दिशा में। उसे जाना ही चाहिए—तुम केवल एक निमित्त हो।” सिद्धार्थ अटक कर खड़ा दिव्य।

“इन संबन्धों में सबकुछ तुम खड़ा दिव्य। मैं समझती थी, परिहास कर रहे हो। खोले, इन सम्बन्धों में मार्ग नहीं है। इनके गहरे निचों में अनेक सर्प और हिंसक पशु रहते हैं।”

“वे हमारे मन में रहनेवाले क्रम, क्रोध और लोभ से कहीं अधिक सुंदर और शुद्ध हैं। मैं अपने मन में उनके बिचे कोई हिंसा का भाव न रखूँगा। वे मुझे कुछ नहीं कर सकते। यह निता न दिखी हुई दिव्य प्रकृति माया के अधिक दबावती है मेरे बिचे।” सिद्धार्थ इन संबन्धों-मरी गिरि-चंद्राओं में न-जाने कहीं को खड़ा दिव्य।

चंद्रोका बचता उठो। सिद्धार्थ का अनुसरण करने का साहस न हुआ उसे। उसने पुकारकर कहा—“उठो उठो मुझे छोड़कर कहीं चले गए तुम। मुझे अकेले भव बग रहा है।”

सिद्धार्थ जाते-जाते ही बोले—“तुम अकेली ही आई थीं मेरे पास, अब अब कैसा? मैं भी अकेले ही आया था, मुझे भी कोई भव नहीं।

‘सुनो या सही।’ चंद्रोका ने कहा।

सिद्धार्थ उसकी प्रकृति की परिधि के बाहर चले गए थे। उन्होंने कुछ उत्तर न दिया।

मित्र ही किसी पशु की चींकार सुनाई थी।

चंद्रोका भवभीत हो उठी। उसने राजकुमारों को पुकारा।

देवदत्त और अजातशत्रु मित्र ही ओट से, बिचे हुए वह दृश्य देख रहे थे।

अजात ने देवदत्त की बांह में उलटिपाई मढ़ाकर चिरे-चिरे

आप ही गुप्त हैं

का—“कुप्त क्या करता । उतार देता नहीं । देखें, करती क्या है ?”

होना नीरव थी। अबक रहें ।

बंदरेका भव ने आकुल होकर बिखराई—‘पुनरात्र ।

राजकुमार ! कहाँ हो तुम ? मुझे डर लग रहा है ।

अज्ञात ने देवदत्त के आवाजों पर अपना हाथ रग दिया ।

“बह परिहास उचित नहीं है । मैं अविष्य में अब कभी तुम्हारी

काई आशा मानने की शरप का नहीं । पुनरात्र ! पुनरात्र ! राज

कुमार ! राजकुमार ! देवदत्त ।”

वास-मर्फीय में कहीं वृद्धों की बगिचों में बंदरों के परिवार केरा

बोली हुप से । बंदरेका की चीन्कार सुनकर वे भीति-भीति की

मचमुच रोने लगी ।

देवदत्त बाबा—‘परिहास की सीमा होनी चाहिए बंदु अज्ञात !

कहीं मय से पर अचेत हो गई या कहीं बहिष्कार में पर

बाबो ।”

“हम गाबिका के गीत से इसका कदम बढ़ा प्रीतिर प्रतीत हो

रहा है ।”

देवदत्त ने कहा वहीं पर से—‘बंदरेका ! बंदरेका ! धीरज

रक्षा । हम वहीं पर हैं । अभी आ पहुँचे । मार्ग प्रपन्न हो गए से ।

होते हुए हमों उमर समीप पहुँच गए ।

बंदरेका का बिखारना बह हुआ पर वह निमग्न रही थी ।

देवदत्त ने भी हाँसते हुए कहा—“मिडु कहाँ गया ?” साथ या

उसे सब कुप्त ।

“मैं बहा जानूँ, कहाँ गया ?” अर्थात् तिम में भरकर यह

बोली—“बंदे हुप हो तुम ।”

अजायब ने पूछा— 'कहाँ भगा दिया तुमने उस अमर को ?'

'मैंने कहाँ भगा दिया उसे ?' तमककर चंजरेका ने उत्तर दिया ।

"नहीं-नहीं, हम कुछ न पहुँचेंगे उस मित्र के संबंध में ।" देवदत्त ने आश्वासन दिया उसे ।

"जहाँ जानती मैं कुछ, मुझे अभी मेरे घर पहुँचाओ" नर्तकी ने तीव्र शास्त्र के स्वर में कहा ।

उसी पक्ष ने नगर को छोड़ छोड़े ।

देवदत्त के वह चटका नहीं गहरी जुम गई थी । उस चंजकर में अग्नि के प्रकाश में उसने सिद्धार्थ को भले प्रकार पहचान लिया था । सिद्धार्थ की उस लाल धीरे-धीरे की दृष्टि से उसकी प्रतिहिंसा दृष्टि न हुई वह धीरे भी प्रभावित हो उठी । वह सिद्धार्थ को परम-पवित्र मार्ग में स्वर्गीय क्रांति की ओर बढ़ते हुए देखने लगा ।

कल्पि देवदत्त विपक्ष-रत था उपाधि था वह मेधावी । उसके मन में उन्नति करने की गहरी आकांक्षा भी थी, वह अपने संस्कार में भी वह था ओर कठिन-से-कठिन परिश्रम उद्यम छेदने की चमत्ता भी उसमें थी ।

मार्ग में बढ़ते बढ़ते उसने कहा— "अजायब इस मित्र को मैंने पहचाना । वह मेरा बाबू-साला सिद्धार्थ है ।"

"होगा ।" नहीं उदासीनता से अजायब ने उत्तर दिया ।

"इसे देखकर मेरे मन में कुछ दूसरी ही दृष्टि का उदय हो गया ।"

'कैसा ?'

"जिन विपक्षों का हम सेवन कर रहे हैं, वे तुम्हें मर्तव्य होने छोड़ें । विपक्षों से दूरकर जाग जाग ठीक नहीं, उनका सामना कर उन्हें पराजित करना आवश्यक है । अब बहुत हो चुका ।"

'अपराध है तुम्हारा ? क्या देखे ही मित्र हो जाने का विचार है ?'

आप ही गुप्त हैं

"नहीं, विजयुक्त पैसा था नहीं, पर हमें अपनी शान की शक्ति का इस्तेमाल करने की चेष्टा में बाधा न पड़े। वही सर्वोपरि है।"

नगर का द्वार था पहुँचा था। ग्रही बोला— "कौन ?"

प्रजापति ने तीव्र स्वर में बोलकर कहा— "मैं हूँ।"

स्वर पड़बावकर ग्रही ने हाथ जोड़े— "गुरुवर्य की आज्ञा हो !"

मिश्रायें रात-भर चबूते ही रहे, भेद और निर्भीक पदों से। दूसरे दिन वह आचार्य द्यूक के आश्रम में पहुँच गए, जहाँ मैत्रियों साफ उनके आश्रम में साधना कर रहे थे।

इन आश्रम में भी मिश्रायें का बड़ा अपना स्वागत हुआ। आचार्य के सहित मारी शिष्य-मंडली उस महापुरुष भिक्षु के आश्रम से प्रभावित हो उठी।

आचार्य द्यूक के आश्रम में मिश्रायें में राज्य और योग का ज्ञान प्राप्त किया, और साधना की। वहाँ उन्होंने बहुत प्राप्त होने पर मन की चक्रेष्वता, संवेदनात्मक ध्यान, शक्ति, शक्ति, शक्ति से बुरा विषय-मुक्ति, ध्यान का अनंत भाव शक्ति प्रत्यक्ष और ध्यान की शक्ति प्राप्त की। परंतु समाधि के बलवत् स्तरों पर पहुँचने की शक्ति आचार्य में न थी। उन्होंने मिश्रायें से स्वयं ही यह कहा।

मिश्रायें के देना आचार्य इन्द्रियों की शक्तियों के संसार से दूर रख सकते हैं मर्मवत् हुए थे, पर मन में शक्तियों का गुरु दुर्ग बना हुआ ही था वह वह, वे शक्ति मर्मवत् भी मन की महाशक्ति से इन्द्रियों को विचलित कर देते। मिश्रायें ने सोचा, कामवासों की वह मन ही में चक्रेष्वता होती है। वही से बना बलवत् बनना

“मैं इसके मर का कारण नहीं हूँ, फिर स्वर्ग ही क्यों हमसे चर्कगा ?”

“सच ?” काबर्द ने पूछा ।

“हाँ सच ।”

“जा, वह तुम्हारी ओर को आया ।” काबर्द ने पैर से सर्प को सिद्धार्थ की दिशा में उधेका ।

सर्प सिद्धार्थ की ओर को नहीं बहा, झीड़-झीड़ आया । शिष्वाण्य भव-भरत हाकर बीमार की ओर छिन्न गये, पर सिद्धार्थ स्वाम-पुत्र के रूप, और भी निर्भीकता से उन्होंने काबर्द को आँखों पर बेका, बड़े प्रेम और कष्टों की दृष्टि से ।

“अंत भिन्न किया है क्या तुमने कोई ?” काबर्द ने फिर सर्प को उधेकाया ।

सर्प ने फिर कुत्तर बोली ।

काबर्द ने उधेका के साथ फिर सर्प पर पैरों से प्रहार किया ।

सर्प ने अचानक काबर्द की एड़ी में गहराई गड़ा दिया, और सिद्धार्थ की चमक में वह गूँगा के भीतरी चमकाने में न-आने कहीं को सरक गया ।

वही बेहता-भक्त चीकर बोधका काबर्द एड़ी बल्लकर बैठ गया, और सिद्धार्थ से कहने लगा—“आज तो हो तुम कोई मंत्र । क्या हो सुके, तुम्हारे पैर पड़ता हूँ । मैं वह विद्यावृद्धि बोध हूँगा । कैसे कहोगे, मैं वही वृत्तिधारण करने को प्रस्तुत हूँ ।

“नहीं काबर्द ! मैं नहीं जानता कोई मंत्र, काब का निमित्त वर है एक-न-एक दिन, एक-न-एक वही, उसका कोई मंत्र नहीं है ।”

“है कैसे नहीं ?”

“बढ़ि होना, तो आज जरूरी वा सभी जीवित होते ।

“मैं जानता था पर मुझे न-आने क्या हो गया । मंत्र का सिद्ध

बाप ही गुन है

बाप ही नहीं था रहा है बड़ी बुरी बड़ी मैं तुमने इन गुन से प्रेरित किया।"

'नहीं काबर्द ! यह न समझो । मुझे तुमसे कोई भी शत्रुता नहीं है ।'

काबर्द पाली पर बड़ा-बड़ा करघाते लगा— 'भोरे इतम ! क्या इसी दिन के बिये तुम्हें पाखा था । मुझे ही डपता था क्या तुम्हें । मैं मर जाऊँगा । मुझे मराना काब के हुए दिमाग दे रहे हैं । कोई नहीं बचा सकने तुम मुझे ?'

बड़ी फिर बिस्बा डटा ।

'कोई बड़ी किसी को नहीं । तुम्हारे मराना कर्मों न बड़ा फिर तुम्हारी मनु को समय से परसे गुन दिया ।'

'हाँ, तुम्हारी मुक्ति की बड़ी था पहुँची । मरघारियो ! डरते क्या हो सब भी । इन गुन का काबर्द सब की नहीं सकता, हमारा शत्रुणासक करेगा सब यहाँ । कोब हो इन हीन मनुष्य के बेबद ।' मिर्दार्ब ने कहा ।

बड़ी ने गुन होकर अनेक प्रकार से इन लोगों का गुणगुनारा किया, और अपने का बड़ा लगा ।

सर्व के दिव से काबर्द कुछ समय में ही पंचव को जाल हो पा ।

मिथ्यों का नाब लेकर फिर मिर्दार्ब लपटा के बिये कोई शत्रुणा बनाव हूँ डते हुए बन-बन दिखाने लगे ।

१३ उरुवेला

जाते-जाते उन्हें अनेक प्रकार के सायक-उपस्थी मिले । कुछ एक परिश्रम में एक एक थे । अनेक रंग, पाखंड और चूर्तता भरे हुए, इन्जिनों के सुन में रेंचें हुए थे ।

एक मनुष्य दिन-भर अपने चारों ओर धमि प्रवर्धित कर अपने सूर्य का ताप जपन कर लेकर रंजामि में लप रहा था ।

सिद्धार्थ उसकी कष्ट-साहिष्णुता से आश्चरित हुए, और उन्होंने उस बात को वहीं विधाम निश्चित किया ।

उपर्युक्त से विवृत होने पर संन्या समग्र सिद्धार्थ ने देखा, उन सायक के पिण्यों ने आता नकार के स्वाभिन्न और पुष्ट भोजन के पदार्थ उनके भोजन के विमित्त उनसे समीप रखे ।

सिद्धार्थ बोले—“हे सायक ! तुम मानने की बात नहीं है । तुम जिसे लप-सायक प्रमद रहे हो मैं उसे मानमती का लेख कहता हूँ ।”

“मानमती का लेख ?” दिव-भर का प्रपूरित लप मानो उसके नेत्रों से विवर्धन जग । उसने सिद्धार्थ की ओर बड़ी बल इति से देखा—“क्या बल है तुम्हारा ?”

“बही कि हमने जोनों को विस्मय-मूढ बनाने के लिये एक सम्पास कहावा है, न कि मनुष्य के किसी रहस्य में प्रवेश प्राप्त किया है । मैं समझता हूँ, इससे तुम्हें कोई लाभ नहीं मिला । तुम्हारा मन जब भी योगों का दास है इन्जिन कपक-कपक ।”

“क्या बिना मन बल में किन्तु ही वह उम लप सहन कर रहा हूँ मैं ? तुम कर सकते हो ?”

“सम्पास से क्या सकता हूँ । केवल तीव्र और कष्ट के ही

उत्प्रेक्षा

को सहन कर सेवा कोई बात नहीं है। तुम अभी मान-अपमान की भावना से घटीय नहीं हो सके हो सायब ।”

“कैसे कहत हो ?”

“मेरी महज और छद्म माय से की गई बात जैसे तुम्हें चुम गई। पर मैं केवल तुम्हारे ही कल्याण के लिये प्रेरित हुआ हूँ। सुनो, इन्हीं में हमका को मिश्रित करना बड़ा कठिन है। वह एक ही इच्छा हमारी समस्त साधना को भूमिमाय कर देने में सदा सफल होती है। केवल बातें धारणियाँ इती से वह बाहर हमें बाधित करती रहती है।”

“मैं नहीं समझता, मैं समझ-बोझ हूँ। वह जो भोजन तुम देख रहे हो वह हमका ही वृत्ति के लिये नहीं है, वह शरीर के वाक्य के लिये है।”

“जो मजुर गंध इस भोजन से पचन में केवल रही है, वह ऊपर और बढ़ती है। शरीर के वाक्य के लिये बहुत सूक्ष्म और सरल भोजन चर्वाण है। मैं समझता हूँ, शरीर के वाक्य ठाढ़ हम केवल पचन में से भी लीच सकते हैं।”

“तब क्या तुम केवल पचनाकारी हो ?”

“नहीं।”

“अब तुम रहो। जहाँ गति नहीं, उसकी चर्चा जानी को शोषा नहीं देती।”

मिश्रार्थ निरंतर रहकर उस चरखी की बात पर विचार करने पड़े।

जल्दी बोला—“तुम मेरे प्रतिनिधि हो, किन्तु तुमसे भाजन करने का अनुमोद कि मैं ना नहीं सकता। खाया का को।”

मिश्रार्थ ने इन बातों लक्षणाओं की ओर देखा और विचार किया—“हम मिथु हैं। स्वादिष्ट भोजन की ओर हमारी प्रवृत्ति न

होनी चाहिये । मित्रों में जैसा भी मित्र जान्य, उससे बुरा भी तो बधित नहीं ।”

महामात ने कहा—“बैसी आवाज हो तुम्हें ब की ।”

सबने भोजन किया । दूसरे दिन जब सिद्धार्थ ताप-साधक के पास से बिना हाथे धोते वा ताप-साधक उनके चरणों पर पड़कर गिर गिराने लगा—“तुम कोई महामा हो, इसमें कोई संदेह नहीं । मैंने ताप को साधा है, शीत स्पर्श ही सब गया है । मैं शिथिल की सारी-सारी बीबें बिना धोते एक पानी में डूबकर बिठा सकता हूँ । खोप मेरे हृदय कर्मों को बड़े आहार के भाव से देखते हैं । वे मेरी पूजा करते हैं, और मुझे बड़ा भारी सिद्ध समझते हैं । केवल एक तुमने ही प्रथम बार मेरी इस माध्या पर माध्याय रति निश्चय की ।”

सिद्धार्थ के मुख पर कम्पा-मयी मुस्कान उदित हुई ।

ताप-साधक कहता जा रहा था—“पर मेरा हाथ कुछ भी आधा नहीं है । सोचता हूँ, तुम्हारा यह कहना कि यह केवल एक आत्मजयी का शेष है, ठीक ही है । तुम मुझे उत्पत्तापी जान पड़ते हो, मुझे जो सार्व-व्यापक करो । मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा ।”

सिद्धार्थ ने कहा—“सब प्रभो तो भार्य, मैं एक प्रजा ही हूँ । प्रजा दूसरे प्रजे को क्या मर्त्य बड़ावेगा ?”

सिद्धार्थ के पैर पड़ कर उसने—“नहीं तुम जानते हो । प्रभु है मार्ग तुम पर । तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा मैं ।”

सिद्धार्थ ने कहा—“सुनो माधक, तुम्हारे मन में जो सत्य को जानने क बिने अज्ञा प्रभु हुई है यह बड़ा ठोस प्रत्यक्ष है । अवमान की जो जगह है, वह जगह की जगह से नहीं बधित तापदायिनी है । इसे सहन करता सीको, ईसते हुए मुझ और प्रसन्न हृदय से । यह बात तुम पर कुछ चुकी है कि एक ईश को जीत

खेने का हुनर। ईह स्वर्ग प्राप्त करने का रास्ता है। जब तुमने राप को मर में किया, तो शीत करने का रास्ता तुम्हारे अधिकार में आ गया। ऐति ही जब तुम अपना करनेवालों का आशीर्वाद देना आरंभ करोगे, तो फिर तुम्हें मर की कोई इच्छा ही नहीं रह पायगी। तुमने समझा न ?

सायक बोका— 'हाँ, समय रहा है ।'

‘‘मैं सत्य की ही खोज में जा रहा हूँ। मैं जहरय प्राप्त करूँगा।
उसे। अपने बिबे नहीं, काल्प क काल्प क बिबे उम
शारदय सत्य का खोज-संरति बनाते हुए मैं निरतय करूँगा। मैं
कस सत्य की सहाय और सहाय बनाऊँगा उम्मी तुमने हम बिबे में
और अधिक कर माँगा।’’ निहार्य ने कहा।

साधक वे सिद्धार्थ का गुणगुण कहें। सिद्धार्थ बन पावें
मनोहरों के साथ चाये करें।

आते-आते उन्होंने मार्ग छोड़ दिया । वे एक सख्त जग में पहुँच गए, पर्वत की श्रृंखला में । वहाँ आकर उन्होंने एक वृक्ष के नीचे बैठकर देखा एक अद्वितीय मनुष्य हुआ ।

बंसा ही था बूढ़। जो बस उनके शरीर पर था, उनका अधिक ज्ञान भूमि पर बिकरा हुआ था। शठ-शत्रु द्विज के बसमें, भीरु महामहिम का घर। बस का बस और योग पर मैत्र भी बाण के कण पर लगी हुई थी। हमने अपने वह दुष्ट हाथ के बलों से शरीर लुका रखा था, जो बस-योग रक्षा-रक्षण पर धर्म देवताओं के क्षमता उनके योग-मन्त्रों में सुगमिष्ठ हो रहे थे।

मैत्रों में एक शिरार प्रयोग जाह किए हुए वह बैठा था वहाँ पर। अपने मज्जुप्यों के सहसा वहाँ पर आ जाने से कोई भी विह्वल न हुई थी उसे। वह चुन ही रहा।

सिद्धार्थ ने उलझा असाधारण रंग देखकर पूछा तबसे—“क्या कर रहे हो तुम यहाँ पर ?”

“कुछ नहीं ।” उसने उदासीन होकर कहा ।

सिद्धार्थ नीचों अलवारिने के साथ बीड गए वहीं पर ।

एक अलवारी बोला—“कुछ तो अच्छरय कर रहे हो ?”

उन लोगों को भी अपने ही समाज अलवारी समझकर वह बोला—“तुमसे न बिगड़ेंगा कुछ । मैं एक साक्षात् कर रहा हूँ इस सब में ।”

सिद्धार्थ जबकि आह्वय हुए उलझी ओर—“क्या सामना कर रहे हो ? हम पर प्रकट करने में कोई हानि न होगी । हम भी जो उसी मार्ग के बरिफ हैं । संभव है, बिचास-बिनिमय से हम सबको ही कुछ-न-कुछ जान हो जाय ।”

“हाँ ।” कहकर वह चुप हो गया ।

कुछ देर तक सबने उसके कुछ खोजने की प्रतीक्षा की पर वह फिर कुछ न बोला ।

अंत में सिद्धार्थ ने कहा—“साधक ! तुम्हारे पास कोई मित्रा वाद नहीं दिखाई दे रहा है, और न वहीं कोई मोक्ष की सामग्री । कब तक यहाँ से दूर है, तुम जाते क्या हो ? कंद-मूक ?”

“नहीं ।”

“फिर ?”

“मैंने राजा को विनित किया है ।” साधक बोला ।

“रसवा की सब एक बात है, सुसुखा की निजब दूसरी । क्या मुझे सब-सब की भी धारणकता नहीं ?”

“है क्यों नहीं ?”

“फिर ?” सिद्धार्थ ने जिज्ञासा की ।

“और वह सब-सब में ही बिदे हो जाते हैं ।”

श्रोतमग्न्य चन्द्र व कीर्तन के साम एक क्षुरे का मुन लटकने लगे ।

“कोई चारचर की बात नहीं । मैंने का कृप त्रिम प्रभार तुम्हारे किये जाता है कभी प्रभार ।” सायक बोला—“मैं उनका जाना हुआ लपटा हूँ और कभी-कभी अपना लापा हुआ हूँ ।”

पौरो मछकारी बड़ी पुरा ठे साय कपले दूर हटने लगे । एक ने कहा—“क्या तुम अचोरी हो ?”

“हाँ अचोरी हूँ ।” उत्तेजित हो उठा वह - “तुमसे जानागुना चपका हूँ । त्रिमका नाम तुमने परित्रना रचना है मैं नहीं मानता उसको परित्रना । क्या शरीर, भोजन और वस्त्र की छत्रता निराहते हुए तुम्हारे मन में कभी कोई भद्रुद नाम उदित नहीं होता ?”

“हम हुए वस्त्र के किये तुम्हारे मार्ग को सुरा न कहेंगे । तुमने क्या बापा हमसे ? क्या तुम्हारा मन भद्रुद विचारों की जम्ममूर्ति नहीं है ?” सिद्धार्थ ने पूछा ।

“मैं निर्द्वंद्व हो गया हूँ । परित्रना और चरित्रना का मेरा नहीं रहा है मेरे मन में ।” अचोरी बोला ।

“यह तुम्हारा अईकार है । मनुष्य का सबसे बड़ा बैरी, इसी से हमारी प्रगति में रोड़े रफे हैं । तुम इन्हीं से परे नहीं हुए हो । तुम्हारे मन में उनके बीच का मेरा वर्णभाव है, सभी तो तुम हमारी परित्रना का कोम रहे हो । तुमने मनुष्य का मन ही विचार बाहर बह जगत् बन जाता है । जगत् में दुःख के बने रहने का अर्थ है अभी तुम्हारा मन निर्द्वंद्व नहीं हुआ है । यह अचोर मार्ग क्यों ग्रहण किया तुमने ? शक्ति रक्षण में ही प्रकाश की चार मिश्री है । अंधकार पतन का मूचक है । वह मक्ति और पवित्र जीवन क्या रचिधर हुआ तुम्हें ?”

“वह सबसे तरब तरब दोरा मार्ग है ।” अचोरी बोला— “द्वित्र

और वाम, इन दोनों दिशों में खाली खुद के एक-एक सूक्ष्म कम
बैठा हुआ है। जो दक्षिण है वही वाम है। फिर तुम क्यों मेरे
इन अक्षर पंक्त को बुरा समझ रहे हो ?”

“तुमने एक ही उक्ति में विरोधाभास दिया। तुमने दक्षिण
और वाम दोनों को समान भी कहा और वाम मार्ग को
मस्जिद भी कहा है। तुमने दो बस्तुओं को एक ही समय में तुलना
भी दी है और एक को विशेषता भी। यह असंभव नहीं है।”

अचोरी चौंकित था। विचार में डूब गया। सिद्धारथ ने माथे उसके
सारे मस्तिष्क का जादो छत्र कर दिया था।

पॉथो मसखारी सिद्धारथ के कर्ण से अत्यंत प्रसन्न हुए। अचोरी के
प्रति उनका तिरस्कार और भी बढ़ गया।

“अंधकार से हमें बचाना करनी चाहिए। देखो, समस्त अंध-बंदाग
सूर्य की ओर बढ़ती है रात हो जाने पर वे एक-के-साथ तिर और
विहा के कोण में झुकाव हो जाते हैं।” सिद्धारथ ने कहा।

कुछ तो जानने ही हैं।” अचोरी बोला।

“तुलना, जिसका और उदाहरण। कहा नहीं संझा तुम भी चाहते
हो ?” सिद्धारथ ने पूछा—“जिस प्रकार बिना अधिक परिश्रम
बिना ही जोर कानों की भी संवत्ति का इरादा कर ले जाता
है, क्या उसी प्रकार तुम भी खुद के मोह में से ज्ञान की ओर
करना चाहते हो ?”

“फिर क्या कहें मैं ?” अचोरी ने पूछा।

“जिहा से नहीं, शाल के मग को बर में करो, तभी तुम्हें विरिध
और स्वाधी बरबता दिखेगी।”

“पर मुझे मग को बर में करना इत नहीं है।”

“कुछ भी हो, मायना का रहना और तुम्हें मग को बर
में करना ही है।”

‘मैं तो एक बच्चा को बरबर्ती करना चाहता हूँ।’

‘‘किसलिए ?’’

‘मनचाहे संपार के साथ उरबल्ल कर देगा वह मेरे ब्रिये।’

अपेरी बाबा ।

हमस निहार्य ने कहा—‘‘तब भी तो तुम्हें बच्चा करना मन ही का है।’’

‘‘क्यों ? कैसे ?’’

‘‘इसी मन ने तो तुम्हें एक सूझा स्वप्न दिखाया है । यह भागों से सुप्त हावा चाहता है । कोई हुआ भागों से सुप्त हम संसार में । जिन प्रसार आहुतिवाँ अग्नि की छिन्नाशो का बड़ाही हो जाती है वेसे ही वे मारा है, इनही कामना उतरातर बुद्धि का ही प्राप्त हाती रहती है । अचानक एक दिन मृत्यु जाकर जब द्वार खल्लाने लगती है, तो फिर कोई भी उपाय काम नहीं करता । हमबिय हम मन का बरा में करा । जब वह इंद्रियों के सुप्त की धार धाबमाव हाता है तो उसे बुद्धि क बचन स राख, उसका करो, वह बबिड ह, बरब बपा है—एक कल्पना ह।’’ निहार्य ने कहा ।

‘‘पात तो तुम्हारी डीक काव पड़ रही है । वा मरा मब न खरंगा हममें।’’ अपेरी बाबा ।

‘‘इन्दा रन्ने से ही तुम हाता है । बरब की हुई इन्दा का भाव ही बिरबास है । प्रकाश की धार बलने की इन्दा रन्ने, हम इन्दा का बाकन करा । जब वह इन्दा बिरबास में बरिबड हा बाबगी, तो तुम इन्दागे कि तुम प्रकाश की मंजि-भूमि पर था गए हो । इन्का भागे अभी नहीं जामता में, कहा है।’’

‘‘अन्दा में तुम्हारी इन्दा का बाकन करेगा।’’

“मेरी इच्छा का वाहन क्या करने कीतर ही इच्छा उत्पन्न करो। सुनो, मखिनता रोष की धमकूरी है, राग जड़ता का और जड़ता मृत्यु का संकेतवाचक है।”

“समझ गया, मैं सब समझ गया।”

“बकी हमारे साथ फिर कुछ दूर तक। सरिता है कोई बड़ी घर।”

“है, मित्र ही निरंजना-बड़ी।”

मित्रार्थ पाँचों ब्रह्मचारियों के साथ उसे निरंजना-नदी के किनारे ले गए। उन सबने मित्रकर उसे गहकाया। उसके समस्त शरीर में बाह्य रूप-रस-रस उसे चमकाया। कौटिल्य के धरणा उचरीय देकर उसको पहना दिया।

गहन-भोजन स्वच्छ ही भोजनी के बड़े संयोग की साँस थी—

“हाँ, अच्छा तो लाग हो रहा है, पर कुछ कम नहीं है बड़ी। घर क्या होगा? मैं देखता हूँ, वन में वहीं कुछ चमक-चमक मित्रते हैं तो, वहीं तो किसी प्राय-जल-रस तक मित्रा के लिये वात्रा करनी पड़ेगी, क्योंकि जब जल-रस में ऐसे कुछ भोजन का जोषकर मुझे अग्नि-रस भोजन-काया पड़ेगा। तुम बौद्धों ने मुझे स्वाध कराये हैं क्या कर दिया। देखा जायगा फिर।” कहकर वह भोजनी भोजन की कोश में चला गया।

मित्रार्थ अपने साथियों के साथ वहीं के किनारे-किनारे चलने लगे।

कुछ दूर चलने पर उन्हें फिर कुछ मनुष्य मित्रा। वह आग पर कुछ पका रहा था, और उसके मित्र ही हाथ में माछा लेकर खप कर रही था। उन आग-तुलों को देखकर वह और भी दह स्वर से खप करने लगा।

उन के मित्र-वात्र में कुछ जायज थे। उसने मित्रार्थ से कहा—

“गुस्सेव ! वहाँ पर अग्नि और जल दोनों का सुधीला है ।
जुवा जग रही है । इन बावलों को पकाकर खाया जा सके, तो
कैसा हो !”

“हीन ही है ।” कहा सिद्धार्थ ने ।

महाभाग अग्नि के निरुद्ध बाधर देखने लगा, वह रहा एक
रहा है । उस मनुष्य ने महाभाग के इस कृप का अनुमोदन
नहीं किया । हाथों के संकेत से उसे निवारण करने लगा,
जिन्हसे वह भी अरुद्ध हुआ कि वह सीनी है ।

महाभाग अपने साथियों के निरुद्ध कहा गया—“जाने रहा
एक रहा है, भोजन तो नहीं प्राप्त होता ।”

एक माछा दूध हो जाने पर वह कुछ जल उम बर्तन में डाल
रहा था, और एक बास-या बंछ एक दर में जमा कर रहा था—
जो कदाचित् उसकी माछाओं की निगली थी ।

शिष्यों में से किसी ने पूछा कहावा । एक ने बावल बीचकर
चोद, एक बावली के छावा । कीर्तिमान अग्नि सेने के द्विजे
निर उम मनुष्य के निरुद्ध गया । उमने नहीं लगना से कुछ
बास की पत्तियों में जो-बार कोपने से जाने का संकेत
किया ।

उस मनुष्य ने होव से संकेत कर कुछ दर दर जाने को
कहा । उमने अपनी माछा पूरी की । एक हाव के संपुट में जल
सेकर आग पर रखते हुए बर्तन में घोवा । एक बंछ माछा
की निगली का जमा किया और फिर बाबा—“कहाँ से आ
रहे हो तुम !”

“राजपूट से ।”

“अग्नि बाधित ?”

“हाँ ।”

उम होना को बाँट करते सुबह सिद्धार्थ की बर्ही पर जा पहुँचे ।
पूजा उन्होंने—“क्या कर रहे हो तुम यहाँ पर ?”

“हिरण्यगर्भ बना रहा हूँ, और क्या कर रहा हूँ ।”

“क्या हुआ हिरण्यगर्भ ?” सिद्धार्थ ने पूछा ।

“हिरण्यगर्भ नहीं जानते ? कितने दिव की तपस्या है तुम्हारी ?
आपु तो हिरण्यगर्भ को पहचानने की कमी की हो गई तुम्हारी ।
हिरण्यगर्भ वह अक्षय्य हुआ गोष्ठक है, सारी सृष्टि जिसकी
परिभ्रमा कर रही है । जगत् उसी में से उत्पन्न हुए हैं, और उसी
से उत्पन्न हुए हैं बीड़हों मनु । धर्म, धर्म, काम और मोक्ष के चारों
सूत्र उसी पर बँधे हुए हैं । संसार के समस्त मेह और नाते उसी से
धारम हैं । श्री-गुरु, गृही-संन्यासी सभी-निर्जन, बाह्य-वृद्ध, धन
उसी के चारों ओर कुल कर रहे हैं ।” उसने कहा ।

सिद्धार्थ इसने खरो—“इत बर्तन में वह बीड़ह-सा क्या
करा रहे हो ?”

“बीड़ह-सा ही है । यही तो हिरण्य में बदल दिया जायगा ।”
मशुण्य बोला ।

“तुम बीड़हेपी हो ?”

“हाँ ।”

“क्या तुम्हें विश्वास है वह बीड़ का हुआ तुम्हारी इन पुरों
के नाक से अपना स्वामाधिक गुण छोड़कर सुबर्ण में बदल
जायगा ?” सिद्धार्थ ने पूछा ।

“बदलेगा कैसे नहीं । परिश्रम कम कर रहा हूँ मैं ।
गुरु से बिधि सीक लक्ष्मी है । आठों मंत्र मंत्र-जप कर रहा
हूँ ।”

“अनृत लक्ष्मी है तुम्हारा ? क्या मंत्र के जप से गर्दन पेटावत में,
शुद्धी कामधेनु में बदल सकती है ?”

“बहुत सख्ती कैसे नहीं ? सिद्ध मंत्र चाहिए, शुद्ध भाषणा चाहिए, सच्ची कल्पना चाहिए ।” जीहवेधी बोला ।

“अच्छा, मान लो, कुछ पद्य के बिना ब्रह्म की गथा, जो इन जीह को सुवर्ण बनाकर बना कराने ?”

“बना करूँगा ? तुम कैसे अभाव हो ! संसार के सब सुखों का साथ नहीं हिरण्यगर्भ को है न ? मैं जीह के पर्वतों-क-वर्त सुवर्ण में परिवर्त कर दूँगा । सारा जगत् मेरी वशिष्ठा धारण करेगा । मैं गरीब शतपथ की नीम दारूँगा, नवा राज्य स्थापित करूँगा नष्ट देश मित्रित करूँगा ।”

“ऐ ईश्वर-मुग्ध मैं हूँ हृष्ट प्राणी ! फिर क्या होगा ?”

“फिर क्या होगा ? धन से धर्म का भी तो संबंध होता है । मैं दान करूँगा, दक्षिणा दूँगा अन्न-सत्र दारूँगा ।” जीहवेधी ने कहा ।

“यदि हमी का तुमने धर्म का प्रयत्न कम मान रक्खा है, तो वह भी न हो सकेगा । ई कंचन के पुत्रारी ! जब तक तुम्हारी इन्द्रियों में बन्ध रहेगा, जब तक तुम सदैव उन्नी की मूर्ख के साधन श्रुतों रहोगे । जब वे दुर्बल-ब्रह्महीन हो जायेंगी, जब तुम धर्म की ओर प्रवृत्त हो जाओगे तब देवु नहीं कि आत्मा का विकास हो पर इसविषये कि शरीर का बन्ध बने, और तुम्हारी इन्द्रिय क्षिप्ता पूर्व हो । परंतु निमग्न से ही इन्द्रियों की मूर्ख होती है, संमग्न से नहीं । मैं तुमसे प्यारा हूँ । जब महाकाय धनका मुक्त पारा मेजर तुम्हारे समीप लया होकर तुम्हारे प्राणों को बाँध से चलेगा तो क्या वह तुम्हारा स्वयं-संमग्न उसे जीता दे सकेगा ?”

जीहवेधी ने कहा—“मैं महामुग्ध जब का ज्ञान दारूँगा ।”

“मूर्ख के अनादि काक से जब तक तुमसे भी अधिक प्रताप शास्त्री हम धरती पर उन्मत्त हुए हैं । जबने से जब भी जो नहीं पर

जप से, तप से, दास से, ब्रह्म से, कल्प से, ओषधि से जीवित नहीं दिखाई देता। तो पृथु की साधारण अवस्था है, नहीं तक भी तो कोई विरह ही बर्णन पाता है।”

जौहरेजी बोला—“बात तो तुम्हारी ठीक है। पर मैं तो प्यारह वर्ष से इस साधना में जग्न हुआ हूँ। बारहवें वर्ष में यह जौह ताज का रंग बदलेगा।”

“हे साधक, जीवन के इतने बहुमुखन वर्ष यदि तुम इस मन्त्र के संस्कार में लगाए होते, तो तुम्हारी समस्त पुण्यार्णु जमी में बिखीन हो गई होती। तुम्हें वह रहस्य मिला जाता कि सुख और प्यार दोनों समान हैं।”

“नहीं-नहीं, केवल एक वर्ष की ही ठा बात है। इतने अल्प समय के दिने में अपनी अचूरी उपस्था नहीं छोड़ सकते।”

“तुमने इसका नाम उपस्था रखा है। नहीं धार्मिक उन्नति के दिने को कष्ट साधा जाता है, केवल उसी का नाम उपस्था है। धार्मिक पुण्यों के पीछे जग्न रहने के अन्त को उपस्था नाम देना अज्ञान है। जिस प्रकार प्यार की बीमार में सेंच लगाकर तत्काल सुख को पुराता है, ऐसे ही इस जौह का नियम कर तुम विरहव प्राप्त करना चाहते हो, या एक कवि की कोरी कल्पना है। प्रकृत जौहरेज का तुम वर्ष ही नहीं समझे हो।”

“तुम बता सकते हो?”

“हाँ कामना ही वह जौह का मन्त्र है, जिसने हमारी इन्द्रियों के मार्ग से हमारे मन को संसार के भोगों से जकड़ रखा है। उसका विरह करना है मन को पार्थिव भोगों से हटाकर आत्मा में खीन करना।”

“क्या वह एक कामना नहीं हुई?”

“नहीं, उसका नाम साधना है। जिस सुख के स्वप्न तुम देख

रहे हा, वह कबल एक मरीचिका है। उसके जितने मित्र जाओगे, उतनी ही दूर वह चली जावगी। मित्र ही महीन तुम्हा से आकुल रहोगे, भीर एक दिन वह खुशु आकर तुम्हारी चाटी पकड़ लगी तब तुम्हारा वह हिरण्यवर्ण तुम्हें बचा न सकेगा।”

“भी की शक्ति कभी व्यवहार में भी आई है, या वे मर चुकी-सुनाई जाने ही कड़ रहे हा? कभी किसी भीमंत का भजन देखा भी है तुमन?”

“जन्म ही वही हुआ है मेरा।” अथर्व आभारत भाव से कहा मिहिर्य ने।

काहवेपी ने विचित्रित होकर पूछा—“जन्म ही वही हुआ है? वही?”

वीहिम्य ने कहा—“अविग्रहस्तु के पुत्रराज है वह, इन्हें क्या तुम काहे साधारण मित्र समझ रह हो?”

“तुमने राजमहल की लालकन यह बेत धारण कर लिया क्यों? वीहवेपी ने पूछा।

“आत्मा की शक्ति के बिना।” मिहिर्य ने उत्तर दिया।

“कुप्राप्त कर लाभ कस्ता ही तो प्राप्त लाभ है पुत्रराज। यह पुत्रवर्ष प्राप्त कर लेने हा मुक। जय कमल के अण्ड में बिजली चर्केंगा मैं बूझ बा। कोई उन बातावरण में धाम दिक्क की बापा मित्री, वो बाढ़ ईगा उसे।” फिर संक्षेप होकर वह वीहवेपी जन करने लगा।

मिहिर्य बीट गए हमके पास से।

पूछा बजाकर मायक लैवार हुआ। ज्यों में वीम ही रहे वे वे कि एक आपराध उनके समीप आकर जाता हो गया।

मिहिर्य ने कहा उनकी दृष्ट बाहु दृष्ट रई थी काय क सम्राट, कदाचित् वह उसे दिसा-बुझा भी नहीं समझा था। उस हाथ की

होगिरीं बड़े-बड़े गलों के जग जाने से बड़ी बिफटाक हो गई थी। रैण्टे का गज हथेली को केदकर हाव की पीठ पर निऊन आया था।

मोहन परोसा ही एक गवा सिद्धार्थ के सामने। शिपों के भी हाव रुके रह गए।

सिद्धार्थ ने कहा—“तुम्हारा यह हाव कैसा निर्जीव हो गया। या कैसा रोम जग गया? कोई मोचन नहीं की तुमने? बड़ी अमुचिवा बपक हो गई होमी इससे तुम्हारे जीवन में?”

“यह रोग नहीं है। जान-बुझकर सुखा दिया मैंने इस इच्छि को।”

“किमी राजदंड के करण?”

“नहीं, स्वेच्छा से।”

“क्यों?”

“जोय समझते हैं, यह हाव मैंने मगबाध का समर्पित कर दिया। परंतु मेरा उद्देश्य है यह मैंने पेट के जिने किया।” कर्णबाहु ने कहा।

“पेट के जिने? बहुत ही बहुत उद्देश्य के जिने तुमने बहुत बड़ा समर्पण किया। मैं तो समझता हूँ, इससे मग की किरकता किमी अंश में कम हुई होगी।”

“नहीं हुई। तुमसे कूट बोलकर क्या करवा है मुझे।” कर्णबाहु ने अपना भीषित हाथ अपने पेट पर रक्का।

“मूक जागी है तुम्हें? मोहन कदोगे?”

“हाँ।” कर्णबाहु ने आप्यायित होकर कहा।

सिद्धार्थ ने अपना आसन कर्णबाहु के जिने छोड़ दिया। कीद्विज ने कहा—“गुददेव, बड़ मनुष्य के जिने बर्षात भोजन बचाकर रक्का है हमने।”

“कोई बिना नहीं, मैं बसने से छे लूँगा।” सिद्धार्थ ने

कहा : उन्होंने चारों ओर घूम कर देखा तो देखा कि सब लोग के अतिथि को बैठा दिया ।

सबसे आगे करने की कदम मित्रार्थ ने की। उमाङ्ग मुँह में हाँसा । कर्णबाहु के निम्न ही उन्होंने चढ़ा आसन उठाया था । उन्होंने कहा—“कर्णबाहु तुम्हारा लयावृत्ति के बोल है । तुमने सब पर किसी प्रकार की स्थापना नहीं की है, हमसे उमाङ्ग और भी महान्वय है । हमको प्रमित कर देनेवाली हूँ । यमस्त हृदयों की जड़ें हमारे मन में हैं । यदि नहीं हम इनका मूकोप्येद्वय कर दें, जो बाहर से वे ही रहस्य भी हमारा कुछ विपाद नहीं कर सकती । तुम्हें कुछ चीजों को नहीं होती ।”

“आरंभ के कुछ दिनों में अनुभव की थी, फिर स्वभाव हो जाने से सब कुछ प्रतीत नहीं होती ।”

“हम आता से क्या काम हुआ तुम्हें ?”

“काम ? क्या बताऊँ ? मित्रार्थ के दिने अधिक देर खरता नहीं जाता । हम सारे हुए हाथ को देखकर लोगों की कथा आवाजों समझ पड़ती है ।”

मित्रार्थ हँस रहे—“बह तो कुछ भी नहीं हुआ । हम आता ने जो तुम्हारे माथ की ही कुछ किया ।

कर्णबाहु ने विनम्रता पूर्वक कहा—“हाँ महाराज !”

“कर्म के माथ काव की लंघि हुए बिना हम मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकते । उस कीद्वेषी का देखो । वह नहीं करिष्य स्वस्था कर रहा है, पर शान्त समक लय नहीं है । माथा में हुआ हुआ संभव पर संभव बना रहा है करने । तुम उनसे नहीं जानकर हो कर्णबाहु ! अपने स्वस्थ को बहानी । हम विचार में न लो कि मित्रार्थ के दिने तुमने वह हाथ सुझाया है, बल्कि वह लम्बो कि मन का प्रभुता स्थापन करना तुम्हारा बोरस है ।”

“वही समझूँगा शुद्ध । मुझे भी कोई मंत्र दे दीजिए । क्या प्रयत्न होगा इस सेवक पर ।”

“मैं स्वयं कोई मंत्र नहीं जानता । शुद्ध वस्तु तो भाव है । भाव मंत्र से इतना नहीं जानता जितना ध्याव से ।”

“कोई ध्याव ही बता दीजिए ।”

“क्या बताऊँ ? इसी का साधने के लिये उपयुक्त स्थान खोज रहा हूँ । जब कुछ निश्चय पाया, मुझे इसमें पुनरागत भला तुम्हीं दे देने से कोई आपत्ति न होगी ।” सिद्धार्थ ने कहा ।

“हम निरंजना-नदी के किनारे जागे चलकर वहाँ अपना स्थान ढूँढेंगे ।” ऊर्ध्वबाहु ने कहा ।

जा-नीकर सिद्धार्थ शिष्यों के साथ नदी के किनारे-किनारे जाये गये । ऊर्ध्वबाहु ने अपना मार्ग दिखाया । कौहवेणी पार्यन्त जब स्वर में अपने मंत्र की धादुत्तिर्वाँ कर रहा था ।

कुछ दूर जागे चलकर एक स्थान पर पूर्ण के वादक बैठ गये, और निकट जागे वर देखा गगन-चुंबी शिखारों में नदी के तट पर अर्चद अग्नि जला रखी थी किसी ने ।

सिद्धार्थ ने पूछा—“यह भाव क्यों जला रखी होगी ?”

कौहिवर ने कहा—“जान पड़ता है, किसी ने यह चिता जला रखी है किसी युवक के दाह के लिये । अनेक मनुष्य भी एकत्र हैं वहाँ पर ।”

सिद्धार्थ बोले—“श्रीक हे, यही स्थान उपयुक्त जान पड़ता है । यहाँ के हम अंतिम पड़ाव पर कदाचित् कर्म का रहस्य अपनी कथा सुनायेगा ।”

युद्ध अर्ध-रश्मि से निरंजना वह रही थी । कहों ले भरा हुआ बसका बका-स्वक आकृति की बीजिमा और तट पर की हरिबाजी से अलंकृत हो रहा था । शाका-पक्षों की प्रायः के वधियों की सुगन्ध

जबकि सुनाई द रही थी और चौबि-आठ के बीच से मद्धिर्वा
बढ़ रही थी हवा के समुद्र में ।

वे बिना के निकल आ गए । वहीं बर्फ़ीला काट हुआ, बिन्दु ही
कपड़े-आमक एक आम का । सूख रही का एक मनुष्य का ।

निहार्य बिना के निकल आकर बड़े मवासा से दानन लगे । अग्नि
की कगल कबलों में वह रात बरबस रहा था । निहार्य बिना के
जो—“ यमी कुछ समय पहले एक वह मनुष्य और रात से
जाने शरीर का बचाव हुआ, जब कुछ भी नहीं ! मित्र-संबंधी जब
हमारी धीम बहती होती, तब एक हफ्ता रहा करते होते । जब
कभी ही ही बिना में रहकर हमें अग्नि उज्ज्वल की है । वह रहा,
वह माता, वह सब वह अन्धकार सबका त्याग कर दिया गया । हाथ
रे जीवन के जंग ! जब वह मनुष्य अग्नि के तार करता होगा, स्वाम
और उज्ज्वल से अपने हम शरीर का अन्धकार और कामल बनाकर होगा,
तब क्या हमने कभी ममका हुआ वह दिन । लिख और स्वादु
मोहन से जब वह अन्धकार अन्धकार होगा, तब क्या हम मही की
अग्नि की होयी होने कभी ?”

रात बहुत कुछ जब कुछ था । निहार्य ने उस कुछ, कासे
वर्त के देखा । वह अर्धत आधी हा ठठ उनके नेत्रों से जाँच
बढ़ने लगे । उन्होंने कहा—“कौटिल्य ! एक दिन हम भी देने ही
हा जाँचेंगे । एक घंटे-से कटि से बचने कबिने बही माधवाजी बढ़ते
हैं, हम दिन फिर एक अन्धकार और उज्ज्वल शब्दा में हमारा भी
सिरहाता होगा ।” कौटिल्य ने हाथ आदर्य दीर्घ दबाय की ।

एक मनुष्य एक जीवन से उस रात की कगल-किया करने जवा था ।

निहार्य ने कहा—“हवा कौटिल्य ! वह मातक एक दिन अनुपम,
हवा मधुरता और अग्नि-हवा की रात-रात माधवाजी का केंद्र बसा
हगा । बही जीवन से अग्नि हस्तक लारों का विभाजित कर रही है ।

‘इस शब्द के अंतिम छोपी इसकी कोपनी को तोड़ समझ को बोध कर थीस ही इससे बिदा हो जार्ने को यानी है।’

‘हाँ गुस्सेव ! ऐसा ही विचित्र संसार का चक्र है।’

बिना निर्वापित कर शब्द-बापरी बह दिपु डल्लेका के मास को ।

सिद्धार्थ कहने लगे— ‘मनुष्य के जीवन का ऐसा भीरुप अंत देकर भी वे सब लोग अच्छे गए, जगत् के रंगों में अपने मन को मुखा देने के लिये । सिद्धार्थ ने जादेगा अब नहीं । बड़ा समझीक स्थान है यह । इस महाबल सम्मान में एक अद्भुत आकर्षण है । जीवन का अंत यहाँ बड़े स्पष्ट रूप में परिचित है । यहाँ के रक्त-मय में नर-देह की अस्म मिठी हुई है, शिखाओं के साथ अस्मिन्नी खेच रही हैं । दुर्घों के शाका-व्रत बिठा की रूप तथा छत्रों से बूमिक और मुहसी हुई हैं । इस समान का एक-एक बल धनु के सार्धभीमिक आहार्य पर विजय की साथ दे रहा है । कीर्ति, मैं न जाऊँगा यहाँ से अब नहीं । यहाँ पर धनु ने अपने को अन्तेय आश्रय में डक दिया है । अब तक मैं बस आश्रय को उलट न दूँगा अब तक नहीं दूँगा ।’

‘इस गुस्सेव के अमुचर है, हम भी आपकी ही सेवा में बर्ही रहेंगे । आप निर्दिष्ट होकर उपरजर्ही करें । जनपद निष्ठ ही है । हम शिप निपा-आवरण कर से आर्गेने ।’ कीर्ति ने जवाब दिया ।

मंद मुनकान के साथ सिद्धार्थ ने कहा— ‘असली भी आवरणकता न रहेगी कीर्ति ।’

धीककर कीर्ति ने कहा— ‘गुस्सेव ।’

‘हाँ कीर्ति ! जाया रहक ने पंचभूतों का गुण रहस्य समझाया है मुझे । मैं उस पर विराम दिया है और मैं उस पर प्रकाश करूँगा । पंचाव के उल्लेखों में अब रोचक और गुण होगा एक-दूसरे में मिश्रण किम्वद में विधीन हो जाते हैं अब कोजम आवरणक नहीं रहता ।

सबसे आवश्यक हमारे जिसे पक्क है वह वस्तु ही प्रयोग न
होगा, तो फिर धन का क्या क्या चाहिए ।”
“गुप्तेह ।” तीनों शिष्यों के मुँह पर एक शंका प्रकट हुई—
“यह संभव है ? बिना धन ..के ?”

“हाँ बिना धन के । धन में जन का आश्रय का बीज है ।
ईश्वर की वसी से सब पाकर धन की दिशा-निर्दिशाओं में परीक्षणी
है । ध्यान में बाधा पड़ती है, और समाधि प्राप्त नहीं होती ।”
श्रीहिन्द बोला—“आचार्य बहुत को हमने कभी शीर्ष उपवास
करते हुए नहीं देखा । आप कब तक निरन्ध और निराधार
रहेंगे ?”

“जब तक अर्थप्राप्त समाधि प्राप्त न होगी, तब तक सब का
साधनाकार न होगा ।

“जदि इस कम वयस्का में धारकी प्राप्त-कानि हो गई तो ?”
“युग धरत और परस्परकारी है । हम देतु मैं बपका सब धोख
शुभ है । इस शुभ समय के संसार से मैं और भी अधिक
निर्भर हो जाऊँगा ।”

“अब आप निरन्ध ही रहेंगे या नेट की जाला क्या आपके
ध्यान को अधिकतर रहने देती ?”

“शरीर शरीर श्रीहिन्द । मैं एक एक प्राप्त पदाज जाऊँगा यदि
दिन, फिर कुछ दिन परमाणु एक-एक शान्त कम करना जाऊँगा ।
इससे शारीरिक दुर्बलता मुझे पराजित न कर सकेगी । बरा आप-
साधक और कार्यवाह को नहीं देना हमने । उनकी साधना से बड़ी
हस्य मैंने सीखा । बीरे-बीरे पाहा-बोहा ।”

श्रीहिन्द ने कहा—“अगदाय आपकी हम कति साधना में
आपके महाबल हो । हम रात-दिन बड़ी कामना करेंगे ।”
“ईश्वर अब और पाद-विद्या के सब के जिसे प्रियार्थ महात्मा कति

इस शब्द के अतिन सोपी इसकी कोपही को तोड़ समय को दोन कर शीघ्र ही इससे बिरा हो जाने को मनी है ।”

“हाँ गुरुदेव ! ऐसा ही विदित संसार का चक्र है ।”

बिता निर्बाधित कर शब्द-भाषी चक्र द्विपु उल्टेबा के घाम को ।

सिद्धार्य कहने लगे— ‘मनुष्य के जीवन का ऐसा मीचप घं देखकर भी ये मच जाग चले गए, जगत् के रंगों में अपने मन को मुका देने के लिये । सिद्धार्य न जावेगा अब कहीं । बहा रमणीय रबाव है वह । इस भवानक हमशान में एक अद्भुत आकर्षण है जीवन का अंत यहाँ बड़े स्पष्ट रूप में बलिहित है । यह के रज-कम्य में बह-देह की भस्म मिछी हुई है, शिष्याओं के साथ अस्तिर्पा खेक रही है । हुरों के शाखा-वत्र बिता की चून तप कप्यों से जूमिष और मुझसी हुई है । इस रमशान का एक-एक पद मनु के पारंभीमिक अहहास्य पर विजय की ताक से रहा है । कीडिम्य में न जाईगा यहाँ से अब कहीं । यहाँ पर मनु में अपने को अध्येय आराध में डक बिता है । अब तक मैं उस आराध को उकड़ न हूँगा तब तक यही रहूँगा ।”

“हम गुरुदेव के अनुचर हैं हम भी आपकी ही सेवा में यहाँ रहेंगे । आप निर्बाधित होकर उपरचर्चा करें । अबपर निष्ठ ही है । हम मित्य निजा-आराध कर के पावेंगे ।” कीडिम्य ने उत्तर दिया ।

मंच मुसकाम के साथ सिद्धार्य ने कहा—“असकी भी आराधकता न रहेगी कीडिम्य ।”

चौककर कीडिम्य ने कहा—“गुरुदेव !”

“हाँ कीडिम्य । आजा टाक के पंचमूर्तों का कुछ रहस्य समझाया है मुझे । मैंने उस पर विरवास किया है और मैं उस पर प्रयोग करूँगा । ज्ञान के उच्च स्तरों में अब देखक और कुछ होना एक-दूसरे में मिश्रकर कुंमर्क में विधीन हो जाते हैं, तब मात्रक आराधक नहीं रहता ।

सबसे आसानी हमारे बिचे बस है। अब हमका ही प्रयोग न
होगा ना फिर यह का क्या कहा जाय।”

“गुरुदेव !” लीचों मिथ्यों के मुख पर एक सीका चमकित हुई—
“यह संभव है ? किता यह ... क ?”

“हाँ किता यह के। यह में हम का आशय का बीज है।
हमिनी हमी से यह बाहर मन की विद्या-विशिष्टाओं में बनीयती
है। ध्यान में बाबा बहारी ह और मनावि प्राप्त नहीं होगी।”

लीचों का बाबा—“आचार्य गुरु का हमने कभी शीर्ष करवाया
कैसे हुए नहीं कहा। आप अब एक निम्न और निराधार
होगे।”

“अब एक चरित्रज्ञान समाधि प्राप्त न होगी, अब एक लक्ष्य का
आशाकार न होगा।”

“यदि हुए हम तरफा में बावली प्राप्त-बावलि हा नहीं हो ?”
“युक्त यह और प्रत्यक्ष-बावली है। हम हेतु में हमका भय प्रोक्त
हुम है। हम हमर समझन के मर्मा से मैं और भी अधिक
मिर्वा हा बावली।”

“अब धार मिथ्य ही रहेंगे, या वेद की आकाश का आपने
आम का अधिकार रहने वाली ?”

“उमै-उमै की-किन्ना। मैं एक-दूसर आम पलायन बावली प्रवि
दिन फिर कुछ दिन करवाय एक-दूसर हमका कम करवा बावली।
हमने शारीरिक दुर्बलता मुझे प्रभावित न कर सकेगी। हम हम-
कायक और कर्णबाहु का नहीं देना तुमने। हमकी भावना न रही
हमर मीरे मीमा। बीरे-बीरे बाबा-बाबा।”

लीचों ने कहा—“मगराद् धारकी हम बलि जाय्या से
भारते महापद हो। हम रात्र-दिन यही कामका करेंगे।”
“हमिनी हम और धार किता के वह के बिचे किताई मगराद् बलि

इस शब्द के अंतिम साथी इसकी खोजी को लोक, समय को छोड़ कर हीन ही इससे विद्रोह होने को जारी है।”

“हाँ गुरुदेव ! ऐसा ही विभिन्न संसार का चक्र है।”

बिना निर्वासित कर शब्द-बाजी चक्र दिए उसनेका के ग्राम को।

सिद्धार्थ कहने लगे—“मनुष्य के जीवन का ऐसा भीषण संघट्ट देखकर भी ये सब लोग चले गए, जंगल के रंगों में अपने मन की मुखा इमे के बिये। सिद्धार्थ न जावेगा अब नहीं। बस सम्यक् स्थान है यह। इस अमानक समग्रान में एक अज्ञात आकर्षण है। जीवन का संघट्ट वहाँ बड़े स्पष्ट रूप में परिचित है। वहाँ के राज-कर्म में गर-वेद की भाव मिठी हुई है, शिकायतों के साथ अस्थिरता फैल रही है। वृद्धों के शाका-पत्र बिठा की भूम तथा अपर्येय से अमिष और मुखाती हुई है। इस समग्रान का एक-एक बल धनु के साथमीनिक आहारण पर बिजय की ताक दे रहा है। कीदृश्य, मैं न जाऊँगा वहाँ से अब नहीं। वहाँ पर धनु से चरने को अपर्येय आचरण में डक दिया है। अब तक मैं इस आचरण को उलट न दूँगा अब तक नहीं दूँगा।”

“हम गुरुदेव के अनुसर हैं हम भी आपकी ही सेवा में नहीं रहेंगे। आप विद्रोह होकर उपरचर्य करें। जनपद निरुद्ध ही है। हम निरुद्ध निवा-आचरण कर से आचरणें।” कीदृश्य ने उत्तर दिया।

महं मुनिकान के साथ सिद्धार्थ ने कहा—“असली भी आचरणकता न रहेगी कीदृश्य !”

चौकर कीदृश्य ने कहा—“गुरुदेव !”

“हाँ कीदृश्य ! आशा रखें मेरे चरुतों का कुछ रहस्य समझया है मुझे। मैंने इस पर विश्वास किया है और मैं उस पर प्रयोग करूँगा। ज्ञान के उच्च स्तरों में अब देखकर और धुन होना एक-दूसरे में मिश्रकर कुंमर्क में विहीन हो जाते हैं अब आचरण आचरणक नहीं रहता।

सबसे आदरवक्त हमारे जिये एवम है जब बसका ही प्रबोधन न
रहेगा तो फिर सब का हाना क्या चाहिए ।”

“पुन्नेव !” लीचों शिष्यों के मुख पर एक शंका अंकित हुई—
“कब समय है ? किना सब के ?”

“हाँ किना सब के । सब में सब का आत्मस्य का बीज है ।
हृदिनीं उसी से सब पाकर मन की विद्या-विरहाराधों में मयीक्यी
है । ध्यान में बाधा पड़ती है और समाधि प्राप्त नहीं होती ।”
कीर्तिय बोला—“आचार्य एक को हमने कभी दीर्घ उपवास
काते हुए नहीं देखा । आप कब तक विराम और विराचार
रहेंगे ?”

“जब तक आत्मज्ञान समाधि प्राप्त न होती, तब तक सब का
आशाकार न होगा ।”

“नदि इस कम उपस्था में आपकी प्राप्ति हो गई हो ?”

“मुपु घरक और आत्मब्रमाही है । इस हेतु मैं उपका मप बोध
प्राप्त हूँ । इस राज्य समयान के संसर्ग से मैं और भी अधिक
निर्वह हो जाऊँगा ।”

“जब आप विराम ही रहेंगे, तो नेट की ज्वाला क्या आपके
ध्यान को अधिकतर रहने देगी ?”

“शमैः शमैः कीर्तिय । मैं एक-एक प्राप्ति करता जाऊँगा प्रति
दिन, फिर कुछ दिन बरबाद एक-एक हाना कम करना जाऊँगा ।
इससे शारीरिक दुर्बलता मुझे पराजित न कर सकेगी । उस ताप-
साधक और कर्षणाहु को नहीं देखा तुमने । बगड़ी साधना से, बड़ी
राहस्य मीने सीखा । बीरे-धीरे पाहा-पोहा ।”

कीर्तिय ने कहा—“मगशान् आपकी इस कठिन साधना में
आपके सहायक हों । हम रात्र-दिन बड़ी कामना करेंगे ।”
“हृदिन जय और पाप-विना के सब के जिये त्रिद्वार्य महात् कर्तव्य

अब मैं बड़ी हुए। पयमदा मृगि पर आसन जगाकर आत्मभाव-
नामक महा ध्यान में प्रवृत्त हुए।

बड़ा मुँदर बर्षाव था। पृथु के मन से माया हुआ बहुत
दिन मैं भी वहीं जाटा न था। शीत-स्नान, भाजन-विक्राम से
बचा हुआ सारा समय सिद्धार्थ व्यावासन में ही बिताते। दिव्यपद्म
मित्रा मीथकर काते और उसकी सेवा करते।

धीरे धीरे सिद्धार्थ ने भोजन को एक-एक घास प्रति पूर्वमा को
कम करना आरंभ किया। उनकी मित्रा मो कमला चट्टी गई।
उनके व्यास की पुत्रावता बढी गई। अब बड़ी बेर तक वह एक
भासव, एक मुद्रा और एक भाव में बाहरी काम को भूल जाने
लगी। अब उनका शरीर उठना बककर विक्राम न मीथता, अब
उनका मन संकल्प से बहराकर वह न जाटा दूर-दूर की दिशाओं में।

दिव्यपद्म भी उनके साथ दिव्य-पूरक ध्यान में बैठते, उनकी
मित्रा शीत ही उनके मन की रुकावटों को कमने न देती।
वे बड़ काते और सिद्धार्थ की तन्मयता को अत्यंत आश्चर्य और
कीतुक से साथ निराते।

धीरे-धीरे सिद्धार्थ के शरीर की रीति भी सिरोहित हो चली।
दिव्यपद्म सोते-सोते रात को अब उठते, तो वे सिद्धार्थ को पृथु के
नीचे व्यावासरिचत ही बढते।

पृथु के परभाव दूसरा वर्ष भीत चला और सिद्धार्थ की अवस्था
अत्यंत कमि हो चली। वह अल्पकाल भोजन भोजनर मित्र और
बासव ही करने को करने। उसमें से एक-एक क्षण भी मित्र कम
करने को।

एक दिन की बात है। दिव्यपद्म मित्र क कपड़ों में सिद्धार्थ
नर हुए थे। सिद्धार्थ पूरे रंग और रेखाओं के बास ने अपने
ध्यान को करने हुए थे। अचानक उनके ध्यान में एक कमल का

कुछ मागे वह-पूर्वक धस साया। उसकी रेतुरिवाँ अवाहक हो उठी थी। उसमें से एक बारी-मूर्ति उभरी। सिद्धार्य ने इसे अपने मनोबल से प्वातंगरिठ कर दिया था, पर वह उस-से-जस नहीं हुई। सिद्धार्य के आरचये की सीमा न रही, जब उन्होंने इसे पहचाना। उन्होंने पुकारा—“कौन चित्रा !”

“हाँ, चित्रा ही हूँ।”

रत सुना सिद्धार्य ने। वह फिर बोले—“तुम मंद जब कभीतर नहीं कहाँ आ गई हो ?”

“वहीं तो हमारा वास्तविक घर है।”

“तुम अभी जाओ चित्रा, मुझे सब समझा दे।”

“वहीं राजकुमार, हम तुम्हारा मनोरञ्जक करेंगी।

“मुझे मन्त्राञ्जन नहीं चाहिए। मैं इसे सुना देना चाहता हूँ।”

“नहीं, राज नहीं समझा वह। हम एकमेव हैं ही उठें।”

“क्यों मैंने क्या करारा दिया है तुम्हारा ?”

“हमारा ही दोष क्या है ? क्यों तुम्हारे कानों के नुम हमसे ? हमने तुम्हें ऐसा करना सिखाया है।”

सिद्धार्य ने धीमे कोस दी। आसन्न से उठकर वह उस समस्त में धीरे-धीरे दृष्टि करने लगे। कुछ दस के आसन्न उन्होंने बैठकर फिर प्रान्न जमाया। इस बार फिर उनकी कल्पना के विरुद्ध उन्होंने एक सर्वकर और करारकी मूर्ति देखी। “उन्होंने हमसे कहा—“कौन हो तुम ?”

“मैं क मनाओं का अधिपति मान हूँ।”

“मार ! तुम्हें मेरे प्रान्न में आने का प्रणाम क्या है ?”

“बुराज ! मैं तुम्हारे दिव्य भी बात करने आया हूँ तुमसे। वहाँ समस्त की अविश्रुता में क्यों अपना समय बह कर रही हो ? क्यों वह देह सुना रही हो। इस प्रकार कुछ न होगा। क्यों,

अपनी राजपाही को कीट बने। मैं तुम्हें बचवहीं राज हूँ।

“दूर हो, दूर हो हे मार ! तुम्हें कुछ नहीं चाहिए।”

“देखो, मेरे साथ शत्रुता न लाओ। इससे तुम्हारा कल्याण न होगा।”

“हे मार ! तू मेरे ही मन की कल्पना है, तू मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

“बह तेरा प्रभाव है जोसे राजकुमार ! मैं तेरे मन की कल्पना नहीं हूँ, तेरा मन मेरी रचना है। मैं तुम्हें अभी कुछ समय देता हूँ, तू विचारकर डोक-टोक निरवध वा पहुँच।” अन्धर वह काम-देव धारव हो गया।

निश्चार्य ने धीरे से मुँहकर ही विचार किया—“क्या सबकुछ मेरा मन कामवालों की ही उपज है ? नहीं, नहीं। यह उन्माद ही है। मेरे पास बिकेक है। वह कहे प्रमिद कर मेरे मन का स्वामी बनना चाहता है। मैं किञ्चिद्विषय हूँ, मन से भी सर्वथा परे। मन की मन्त्र-वाराह मेरे ही पास हैं। मेरे पास विषय कर काम-वद-वद हो नहीं सकता।”

वह फिर मार को सर्वथा मन से मुँहाकर ध्यान करने लगे। अन्धक भीन सुंदर और सुकुमार समझनी कबसे दिखाई दीं। बाहुल्य रग, भागी जाती पर प्रकाश मैं। “जीव हो तुम !”

वह ने उत्तर दिया— इस काम-बुद्धिवाह है। मेरा नाम तुम्हारा है।”

“तुम्हें ! मैं तो तुम्हें कभी का जोड़ चुका हूँ। फिर तुम क्यों चाहें हो ?”

“पुनराव ! तुम्हारे ऊपर हमें रखा था। चाहें है। तुम्हें, शरीर की पैती रखा कर ही। इस प्रकाश किन्ने दिन जीवित रहोगे ? जब जीवन ही न रहेगा, वा फिर साधना कैसे होगी ?”

“तुम मेरे बिदे यह एक कम लेका आई हो, मैं हममें न पर्यगा। चापी मुहुरी सिद्धांतों में मेरे जीवन के तुम्हा परकी हुई है। तुम वसे भी ये लेने के बिदे आई हा तुम्हा। बख्शी बात है, मैं इनका भी त्याग कर दूंगा।”

“बख्शी-बख्शी राजकुमार! हम तुम्हारे बिदे निम्न पदम मोक्ष का सक्ती है केन न तुम्हारे संकेत की आवरणकता है।”

“धीरे तुम किसबिदे आई हो?” सिद्धार्थ ने दूसरी मुहुरी से पूछा।

“मेरा नाम रति है। तुम्हा के बख्शी-बख्शी मार्ग में मैं सब की मरिचिका हूँ।”

“जब तुम्हा का मार्ग ही मेरा बख्शी है, तो उसकी मरिचिका ही से क्या मोक्षन है फिर? और तुम्हारा नाम क्या है?” सिद्धार्थ ने तीसरी से पूछा।

“भारति है मेरा नाम।” उसने उत्तर दिया।

“भारति!” सिद्धार्थ ने धारचर्च-भरी शिकाया की।

“हम दोनों में आकाश-वाताका का अंतर केवल नाम-मात्र का ही है राजकुमार। वैसे हम दोनों समान हैं। तुम्हा का धारचर्च-साधन केसा रति करती है, केसा ही वह भारति भी। वही रति होगी, वही भारति भी।”

“धीरे वही क्या सबसे पहिले तुम्हा न होगी?” तुम्हा ने कहा।

“धीरे वही तुम्हा ही न होगी, वही तुम जानो?” सिद्धार्थ ने पूछा।

“वही मन होगा, वही तुम्हा होगी ही। सब कहो राजकुमार! क्या तुम बिना किसी तुम्हा के ही रूप हमसाम में आए हो? जाना, तुमने कुछ त्याग दिया है, क्या कुछ जाने की शिकाया वही रक्त हो मन में?” तुम्हा बोली।

“जिस शक्ति से आकर्षित हो रहे हो वह मैं हूँ।” एति बोली।

“और जिस शक्ति से बलिष्ठाग कर रहे हो, वह मैं हूँ।”

“तुमने जाकर मुझे जम से बाँध दिया।” अमिताभ-से होकर सिद्धार्थ ने कहा।

“हाँ।” कहता हुआ एक बड़ा भिक्काऊ दैत्य प्रकट हुआ वहाँ पर—“मैं ही जम हूँ। मार के सेनापतियों में से एक।”

“देख जायगा जम ! तुम मुझे कुछ भी बाधा न पहुँचा सकेगे। जिस प्रकार मैं अँधकार में से जगत्ता मार्ग निश्चलता आ रहा हूँ, जम में से भी सत्य की विजयतिपी हुई खूना। बाहर के समस्त शत्रु मेरे मन ही मे आकर प्रकट हो गए तुम ! तुम मेरे आँखों के बंदूक नहीं हो। जब तक मेरा वह ज्ञान कामरूप है, सत्य के मुझे बर्बाद होना नहीं, कम-से-कम तुम मुझे पराजित नहीं कर सकते। मेरी हथकड़ियों पर बहुत करमेवाले ! मेरी कामवालों को जगती होर में बाँधनेवाले हैं मार ! मैंने तेरे आचार को देख लिया है। तुम्हारे पर उतरा हुआ है, और मैं प्रिय हो जाऊँगा जब पर—मैं माया में ही ज्ञान की बलिष्ठा करूँगा।” कहते हुए सिद्धार्थ आसन्न पर से उठ गए।

शिष्यों के सिद्धार्थ ने कहा—“औरि-औरि बीजों के कई बहुत मुख्य वर्ष बीत गए हैं। मार्ग के मित्र और शत्रुओं की पहचान में ही इसका समय अतिबाधित हुआ है। अब मेरा सत्य रूप से शत्रु से सामना हुआ है।”

“गुरुदेव, हमें भी यदि शत्रु का परिचय दिया जाय।” सिद्धार्थ का मित्र शिष्य कौटिल्य बोला।

“अमना ही तो शत्रु है कौटिल्य ! वह अनेक बार हमसे मिलिमत किया है।”

“उपमा सम्य कैसे हो ?”

“इसका शमन इतना कठिन है कि असंभव कहा जा सकता है।”

“फिर ?”

“इसे हल्का ही न होने दया उसका शमन है। मंदिर में के लिये और अन्ध भीत बसे हैं जैसे इस कीरन के शठ-शठ कृष्ण और शठ पक्ष ! अब हमको यहीं समाप्त कर में आज से केवल एक बढ़ीका काँगा।” सिद्धार्थ ने कहा।

कीर्त्तिय उनके चरम बकास बिहारा— ‘महो, गुणधेन !’

‘किष्प गुह पर कोई समुद्रोप नहीं करता। यही इसका शीत है कीर्त्तिय। मैं उदर के अन्ध भाग को जल से भर लूँगा। इसमें भी दोषक लक्षों की कमी नहीं है।’

सिद्धार्थ कबल एक बढ़ी का दावा और जल पीकर ही रहने लगे। मार क साथ उनका भवानक संवर्ष बका। अब वा एक सुबोदप से हमारे सुबोदप को पान के पालन पर ही बैठे-बैठे बिठा देते। धर्म मिमीक्षित ही रहतीं। उन्होंने अपर भी सी शिष्ट। विषयगण विषय समग्र वा एक बेर का दावा उनके मुख में रज देते और मिट्टी क वाज से उन्हें जल पिता देते।

१४ युद्ध और विजय

इस प्रकार कछेर उपरवा कस्ते-काते उल्टेबा में सिद्धार्थ को १ वर्ष बीत गए। कभी रंग और रस के जायसू की रचबा-र काम-हुदितार्थ उनके मन को प्रेम से आकृष्ट कर लेने के लिये आली और कभी मार की सेवा बाबा प्रकार के सब दिखाकर उन्हें भग्न-संक्रान्त कर देना चाहती। कभी मार का सत्ता बर्तन बिना, भैरवी कमखिनी, सुरभि और सुखि के साथ आकर उन्हें जीवन की आशा-उमंग दिखाया और कभी स्वयं मार उनके समीप उपस्थित होकर मृगु का मक-बंद उनके सम्मुख रक्ता।

अपने प्रबल मनोबल से सिद्धार्थ जबका इज्जत कर सार के प्रकाश में बहुत आगे चले जाते। परंतु फिर मार को तब उन्हें युद्ध के मैदान में लीज लेती। वह फिर युद्ध करते फिर आगे बढ़ते और फिर शत्रु के ही बीच में रँस जाते।

सिद्धार्थ मार पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रायः पक्ष से कटिबद्ध हो गए। केवल एक बेर का दावा उनके प्राचीन का सपना बना हुआ था उसके लिये भी सब उन्होंने कुछ न छोड़ा। केवल जब और पवन पर ही उनके प्रायः चढ़ने लगे।

वह सूचकर काँटा हो गए। उनका सारा अस्ति-वैजय लब्धा वा मिच्छा आया। रक्त सूख गया। समस्त अंग में सुर्रिपी पड़ गई। कपोंक नेत्र रेट, मचनें गहरे पड़ गए। उनकी कमल-उमंगल बेह-कीर्ति मलिन हो गई।

किष्कण्य अब सिद्धार्थ को आँखा न खोलते। वे रात को भी बारी-बारी से आकर उनका पहरा देते। कभी-कभी उनके रवाज

का प्रवाद भी मिश्रण जान पड़ा। शिष्यागण उस समय धातुम
होकर एक दूसरे का मुँह देखने लगने।

एक दिन मिश्रार्थ ने ध्यान में एक नवीन व्यक्ति देखा। वह
साधारण रूप और चेहरे। उसके हाथ में बीणा थी। मिश्रार्थ ने
पहले उसे मार का ही कोई प्रयत्न समझा। वह अदासीन ही
रहे उससे।

“मैं तुम्हारे ही उद्देश्य से आया हूँ राजकुमार।”

“कौन हो तुम ? चेहरे से कोई दिग्ग पुत्र जान पड़ते हो।”

“हाँ, मुझे ईश्वर कहते हैं।”

“किस उद्देश्य से आए हो ?”

“तुम्हारी उम्र उपस्था को देखकर मैं निश्चय हुआ बड़ा आया हूँ
तुम्हारे पास। मैं तुम्हें एक गीत सुनाऊँगा।”

“गीत का मैं रात-दिन सुना करता हूँ। काम-बुद्धिवाले आया काम
मेरे मानस को अपने मुख और गीतों से बरे रहती है।”

“उनक और मेरे गीत में अंतर है। वह प्रवृत्ति का गीत गाती
है मैं निवृत्ति का रग खँकड़ा करूँगा।”

“मेरी उपस्था में सदाबक हागा वह ?”

“कदाचित्। कदाचित् एक शिष्ट-वर्ग पर बैठकर बीणा
मिलाने लगे। वह तीन तार की बीणा थी। इस ने पहला तार
खँकड़ा किया।

मिश्रार्थ बोले—“यह बहुत बीना है। डीक रसर नहीं निकल
रहा है इससे।

ईश्वर ने दूसरा तार बजाया।

“हाँ यह डीक रसर हो रहा है।

ईश्वर ने तीसरे तार का ऐरा। वह हट गया।
मिश्रार्थ बोले—“यह जो हट गया।”

“हाँ मित्रार्थ, वह बहुत कसा हुआ था।”

“बस हो गया ईश ! मेरी स्मृति में जादू का राग था गया। आपकी कल्प है, आपकी कल्पना है। मेरे मन की प्रीति कोच दी।”

आप छह छह हैं महाराज ! ईश आपके पर भूति की समता रखता है। आप सब के सम्मुख नहीं, सब आपके प्रकाश से सम्मुख है। आपके दृष्टान्त का वह ईश आपका सत्य-काम हुआ। वर इस मेरु के मन में एक शक्ति है उसे हर कीर्ति महाराज !”

“क्या शक्ति है ?”

“मेरी बीबा के तारों से आप क्या समझे ?”

आपकी बीबा के हस्त-उपर के ये दागो पार इश के ही सिरे हैं। एक बीबा और दूसरा आध्यात्मिक कला हुआ। वह जो मध्य का पार है वह न अधिका बीबा है न बहुत कसा हुआ। कैला महार स्वर दिया अपने। वह प्रकृति और निरुक्ति के बीच की समकृति है। इसे बहुत दिन के मैं खोज रहा था। योग और योग के बीच में यह, मध्यम मार्ग पास शक्तिदायक है। मैं इसी का अनुसरण करूँगा ईश ! आपने मुझे इसका दान दिया, क्या उपकार दिया।”

“हरे-हरे ! आप ही तो इस मार्ग के प्रवर्तक हैं। सरियों की शूल से वह मार्ग लेकर जो जाता है, आप बार-बार इसका उद्धार कर इसे लोगों के लिये प्रयत्न कर देते हैं। है भगवान् आधिपत्य ! आप साक्षात् आदिभूत हैं। मैं आपका क्या शोधक दिख सकता हूँ। आपकी कल्प हो !” ईश ने हाथ जोड़कर परिक्रमा की। वह बिना हो गए।

मित्रार्थ ने विचार—“दृष्टि और ज्ञान से दोनों ही मार्ग इस मध्यम मार्ग में एक दूसरे में मिले हुए हैं। क्योंकि बिना हरे-हरे शिरो की कल्पना के हमें मध्य का ज्ञान हो नहीं सकता। इस दोनों शिरो में से एक आकर्षक करण है, दूसरा विकर्षक। आकर्षक की

विकर्षण से और विकर्षण का आकर्षण से हम भिन्न कर सकते हैं। मध्य बिंदु ही वह स्थान है। बिना रूप समझने के हमें प्रकृति प्राप्त नहीं हो सकती। तभी हमारा मन स्थिर होगा और तभी हमारी प्रज्ञा अचंचल होगी। वहीं पर स आस्था का विकास होगा, और तभी हम अज्ञान-समाधि की धारा प्रवाह होंगे।

कर्म-बाध में उठ समझ मार ने करने मत्ता सेनापति, सेवक और सर्वभिक्ष की निराह समा आहुत कर रखी थी। समा का बुद्धमात्र उदरस्थ नहीं था। बुद्ध से, बुद्ध से, साम-दान-बुद्ध-भेद से किस प्रकार निहार्य को उपस्था से शिव और विमुक्त किया जा सकता है।

सबसे सुस्पष्ट पर ही कथन का रहस्य मार सीता।

जिना धार धीरवी ने कहा—“हम राजकुमार के मन का सहज ही कर में कर दण और काह के धर्म साया में विमल कर देवी हैं। यदि सुस्पष्ट हमकी रचना में प्रकृति कथन कर द कथन हमी दणा में।”

“यही उची दिव स धरनी पतात्रय बुद्धने लगा है शिव दिवसि कन्होने कथन पवन और बुद्ध पर अपना जीवन स्थिर कर दिया है।” मार ने कहा।

“यह धार लोग कोई जानते ही नहीं हैं। इतनी कमर साधना पर भी निहार्य का क्यों धरनी तक मल का साक्षात्कार नहीं हुआ है। मेरे कारण मैंने ही उनको धरने विकर्षण से आकर्षित कर रखा है।” धरनि बुद्ध एवं के साथ बोली।

“ममल है।” मार ने कहा—“पर केवल बुद्ध तुमने क्या हो सकता है। मेरे प्रथम सेनापतिगण !” मार ने बुद्ध धार छवि की। हमारे तीन प्रथम बोद्धा काम कथन और काम आत्मसाक्षीन से नहीं कर सकते हैं।

श्रीधर बोला—“महाराज, काम ही न हो तो मेरा कोई चरम नहीं चल सकता। जब काम हो और उसकी माधति में बाधा हो तभी तो मैं अपने अन्तर से प्रार्थना का प्रयोग करना सकता हूँ। उनके बिना नहीं। होश सेनापति काम कर दे।”

काम ने कहा—“बड़ी आश्चर्य मेरा भी है महाराज। जब काम हो और उसकी प्रति हो, तभी तो मैं अन्तर की गर्दन पकड़कर उसे पकड़ से नीचे लेता हूँ।”

बड़ी बलवा के साथ काम बोला—“सेनापति, श्रीधर और काम ने तुम्हें पर जो हीनारोपण किया है वह उचित ही है। यदि सुप्रतिपत्ति की रक्षा में रस बना सकता है, तो वह सेवक काय एक प्रार्थना कीजिए सिद्धार्थ को अपने तीव्र बाधों से बाहर कर सकता है।”

सुप्रति बोली—“कोई सहजक भी तो हीनारोपण मुझे।”

बिना ने कहा—“तुम्हीं आश्चर्यकृत किन्हीं हैं। हम बाँध बाँधें हो हैं हम साथ-ही-साथ तो चलती हैं।”

श्रीधर के अनुप को संभावना हुआ वसंत बोला—“बड़ो मैं भी चढ़िया तुम्हारे साथ। मैं रस की आधुनिक के बिने प्रकृति के अन्त के हेतु अनुपक आशावाक्य व्यक्त कर हूँ। मैं तुम्हें मैं रस और पैसुरियों में सुप्रति विकसित हूँ। मैं सारी सत्ता को नीचे और नीचे से तुम्हें कर हूँ। कब-कब को अनुपक के राग से भर हूँ। मैं हिता हूँ सिद्धार्थ का आसन।”

सुप्रति बोली—“अच्छी बात है। अस्मिता-अस्मिता के सेवानी-आत्मक मान में एक संरक्षिकाही कुनबी की कथा है। सुभावा अस्मिता मान है। मैं उसे जाकर अपना साथ बनाती हूँ, और सिद्धार्थ की रक्षा में जाकर अपना जमिंदार बनाती हूँ। आगे फिर आश कोय संभावना व्यक्त काम।”

मार बोला—“तुम जानो की कोई बिना नको। सिद्धार्थ की रक्षा

के चपल हो जाने पर मेरे सब सेवाप्रति सज्जि हो जावेंगे उन हा ।”
 सिद्धार्य को धरति दिखाई दी । सिद्धार्य क मुख पर मधुर मुसकाव
 बिजल रही ।

धरति धारण में भा उठी । सोचने लगी — ‘आज यह क्या
 बात है । इस तपस्वी ने एक दिन भी कभी मेरी ओर नज़र नहीं
 देना ।’ वह कुछ और निकट बढ़ गई उनसे ।

“तुम भी गुरु हो धरति !” सिद्धार्य ने कहा ।

“गुरु हूँ ?” धरति ने अपने मन से पूछा । वह विप्र के दर्प में
 भा उठी । सिद्धार्य की दृष्टि ने उसे ज्ञान से विभक्त कर दिया । उसके
 क्लेश रक्षाप हा गए । वह समझी उसने तपस्वी के मन को धारण
 कर लिया । वह इतने लगी शब्द-भाषा पीछे छोड़ ।

“इसो धरति !” सिद्धार्य ने कहा ।

धरति ने तपस्वी से मुखा हो गई ।

सिद्धार्य ने धर्म कोषकर अपने हाथ पर टिढ़ी की — “बड़ा मन्त्रिण
 हो गया हूँ मैं । निराहार ने रक्षा-रक्षा पर गहरे कोषकर जन्म
 मिला जमा कर दिया है । बरतों से धर्म और मुख बंधकर एक धामन
 बन बैठा हूँ । जानों में भी कपड़ा हूँ सत्ता है । बाधा जगत् को ऐसे

हठ-हठक धारण कर भी तो कुछ नहीं मिला । जिनके द्विये ये सब
 हार बद कर दिए, वे सब-के-सब जितने विप्र और जितने तपस्वी मेरी
 कपला में जाग उठे हैं । भीतर-बाहरी विप्र सरल है भीतर इनसे
 छहते-छहते भाव हो उठे हैं ।” उन्होंने मन में चारों ओर टिढ़ी
 बांधी ।

चार दिवस सिद्धार्य निश्चल स्थिति में गए थे । कीर्ति सिद्धार्य
 की कीर्त्तनी के द्विये रह गया था । वह कुछ समय हुआ, विप्र ही
 नहीं या समझा ब्रह्म कर रहा था ।

धरति का उदयास्त और तपस्वी का परिवर्तन सुने सब नहीं होना

था। मैं नहीं जानता, कितना समय बीता है। ये सब-कुछार्थ इस भवभ्रम में बहुत बह गई हैं। अनेक स्वार्थों में, जहाँ जाकाज दियाई देना था, वहाँ बाकिरों ने बहकर अपने इति पत्र चेका दिए हैं।" सिद्धार्थ ने बड़ी कठिनाता से अपना आसन छोड़ा—“कोई नहीं है। नहीं जानता, मेरे साथी मुझे जाहकर कहीं अन्धकार में तो नहीं गड़ गया? नहीं, बड़-बड़ से भूम बहिर्गत है। उनक आसन और बक भी डीक-डीक कम ले रखे हुए हैं।”

सिद्धार्थ किलकटे हुए विरजना के लड़ की जार बहने लगे। माथे में बक बेर का हावा लड़ने के लिये उन्होंने हाथ बढ़ाया। जबक बेर किरक पड़ा, और बड़ सुन्किठ होकर भूमिगावी हो गए।

कुछ ही बड़ परपाए समिधाओं का मार लेकर कीरिन्ध जा पहुँचा वहाँ पर। आचार्य को सुनि पा सुन्किठ देखकर बड़ ईंका। बसने कमंडलु से उनक तिर में बड़ की जार दी। उनके हाव-बैरों का मका। बड़ी कठिनाता से सिद्धार्थ ने पाँखें खोलीं। उस समय कीरिन्ध के रोष साथी भी लौटकर आ गए थे।

“कहा हो गया? आचार्य!” कीरिन्ध ने पूछा।

“हुआ नहीं कीरिन्ध! शरीर में बड़ी दुर्बलता थी। मैंने अधिक कम किया, इसी से गिर पड़ा।”

“आप अकेल हो गए थे।”

“पर मन जानकर ही जा कीरिन्ध बड़ा अन्धकार लपट देखा मैंने।”

“आपकी बेतया आवाजे के लिये मैंने दो बड़ी मयाज किया होगा कम-से-कम।”

“मुझे कुछ ज्ञान नहीं है हमका। आज कितने दिन के परपाए में उस लड़ के बीने के रहा हूँ? कीरिन्ध आज कितने समय के अन्धकार में तुमसे जोका हूँ?”

“बू बूँ गुन्धुन!”

“बहुत बड़ी शक्ति कीहिन्य !”

“सत्य की शक्ति हैसी-सेक नहीं है गुरुदेव ! हमने तो इन व
बलों में कुछ भी शक्ति नहीं की। आपकी सेवा भी कुछ नहीं हो
सकी। आपकी इस कठिन साधना के दरवाँके होकर हम आपके साथ
रहे हैं नहीं सीमात्म एक हम अपना समझते हैं। कीहिन्य
ने कहा।

गुरु साधु बोला—“गुरुदेव, धारण ही आपने सत्य को
ब्रह्मना है। हम आपके अनुसर शिष्य हैं। हमें भी तो उसका
परिचय कीहिन्य।”

“मेरे मित्र सहचर, सत्य ब्रह्म ही गुरु जान सकता है, जितना
व वर्ष बरसे था।”

“हृदयी उपस्था क्या व्यर्थ गई ?”

“व्यर्थ तो कुछ भी नहीं जाता। पहले समझता था, शरीर को
अनुभूति के प्रकाश से मुक्त कर, सूक्ष्म-व्यापक संबंध से सुझाकर, मन
का ईश्वरीय कीर्ति-राशि से स्वतंत्र कर आत्मशान प्राप्त हो
जायगा, किन्तु न हुआ। अब सोचता हूँ, शरीर के पोषण मात्र के बिना
मोक्ष आचरक है। है कीहिन्य ! तुम मित्रा में क्या खाए हो ?
कुछ लिण्ड-मधुर आहार है, तो मुझे खिलाया।”

कीहिन्य सोचने लगा—“आचार्य यह क्या कहने लगे। जान
ब्रह्म है, इनकी उपस्था भ्रष्ट हो गई। वह भाग के मार्ग में भटककर
फिर भाग की धार जाने लगे।”

एक शिष्य बोला—“कुछ कुछ है, मैं गारम कर स आता हूँ।”

“धरत लभी मैं वहाँ से उठ गईगा।” मित्रार्थ ने दीर्घ
मिश्रवाय धापी।
कीहिन्य ने बहुत ऊँचे वर से गिरे हुए माछी की भाँति शिखर
का दृष्टा।

सिद्धार्थ ने उसकी पाँखों का धरतें समझकर कहा—“कीर्तिम्, हम तुम्हें विजित और परितः समझने लगे।”

“क्यों ?”

अर्धतः चकित होकर कीर्तिम् ने उसके चेहरे पर एक क्षिप्त—“कहाँ गुस्सेव ! रोषक को समा करो।”

दुःख-दान कर सिद्धार्थ अपने आसन पर जाय, और उन्होंने संबंध में अपनी साधना के अनुभव प्रकट किए जब वर। कीर्तिम् का क्रम और भी बढ़ गया। उसे विरक्त हो गया मार बिजली हो गया सिद्धार्थ पर।

शिखरगढ़ कीरि-कीरि घोषण देने लगे गुस्सेव को। उनकी चीख काया चीख ही फिर लगी हो चली।

उस वन में सुजाता एक बट-बूट का पूज्य और परिष्कृत करती थी सब वह हुमारी ही थी। उसकी कामना थी कि यदि उसे मनोमुक्त कर प्राप्त हो जाय और उसके एक पुत्र उत्पन्न हो जाय, तो वह आशीर्वाद प्रतिष्ठा के रूप की पूर्तिमा को उस बट का पूज्य करेगी। उसकी दोनो मनोकामनाएँ पूरी हुई थीं।

उस दिन वैशाखी पूर्णिमा थी। सुजाता प्रतिज्ञानुसार पूजा की मामूली एकत्र करने में लगी। अपने अपनी एक सेविका को उल्लेख के रूप में बट-बूट पर जीपने-पोतने और प्रकाशक क बिजे रहने ही भेज दिया।

पाँच-सात दिन में ही कीरि-कीरि सिद्धार्थ के शरीर में शक्ति जागृत लगी। बल्का बल्-रंग फिर उसकी पूर्ण स्थिति में आने लगा। वह वृद्धत में उस बट-बूट के नीचे प्यास कर रह गे। शिखर कोई भी न जा बहाँ पर, सब धन्यत्र गए हुए थे।

अचानक सिद्धार्थ प्यास जागृत रहे। उन्हें अपने जंगल पर के वृक्षत्र वृक्ष की स्मृति हुई। अनेक वर्षों से वह उनकी उनके हुए था।

शत-शत चिह्नों से भीरु बड़ काश्मिरा से जड़ित मज्जिम बड़, बड़ी समान हो गई थी मिहार्थ को कम बर । आज बड़ उसका विद्रोह सह लेने के लिये कटिबद्ध हो गए ।

उस दूर पर, दमस्तान की ओर बड़ा दुर्गम था रहा था । उन्होंने निरन्तर किया, अवश्य ही कोई सच-सच हो रहा है । वह बकर ही बक पड़े ।

छमा-नामक समीप के किसी जगह की एक तली की चिन्ता बकक रही थी । मिहार्थ बड़ी देर तक बड़े रहे उसके पास । वह भीरु बड़े । उनकी दृष्टि निरन्तर ही भूमि पर पड़े हुए एक बड़ी-बड़ी सच बर रही । कदाचित् वह चंद्रावत के लिये एक छाया का शब्द-चिह्नों में । मिहार्थ ने वह सच मांग किया करते । उसे लेकर वह अपने धाम पर आए । निरन्तर में लेकर उसे सुनाया उन्होंने । फिर उसे पढ़ा किया । भीरु सच प्रगटित कर दिया निरन्तर की जारा में । कम मज्जिम परिणाम में मिहार्थ फिर बैठ गए वह बुद्ध के बीच । अपने ध्यान की न लला ओढ़ने लगे ।

सुभाठा की दली में बड़ी वा आकर देना एक दृष्ट-सुख कम भट-बुद्ध के बीच बड़ा है । उसने मन में सोचा हो न-वा वह बड़ी बम-देवता है जिसकी मनीषी मेरी स्वामिनी ने माने रखी है । दामी ने बड़ी दृष्टि और भद्रा के साथ बड़ी पर परिणत कर लीया ।

वह बौद्धक मुठकड़ों से बर गई । इसने सुभाठा को वह समाचार सुनाया । सुभाठा आज बड़कित हो बड़ी । हमने बड़ी अंग में साकर एक स्वर्ण के बाज में बन्दन रक्ता, बड़ा की सम्य बुद्ध की, और दामी का साथ लकर करनेका के बम की जार बड़ी ।

जिम बर-सक के बीच सुभाठा न आज इतने बड़ो छ अपने मुक्त की कामगारों केहीमृत कर रखी थी, बड़ी एक तेज-सुख देवता देवकर वह माहातिरेक से बहगा हा गई । हमने अपनी समस्त

मैं सिद्धार्थ के बिना रहकर इनके बरतों का सारा किया—“हे मेरे प्रिय-मित्रित दुखता ! चाब तुमने निश्चिन्त मेरी पूजा प्रदत्त करने के लिये ही यह मासक-कर्म रक्खा ।”

सिद्धार्थ ने बाँधें खोली—“कौन हा देवि ! तुम ?”

तुम्हारी अगमिका, तुम्हारी सेविका ! तुम क्या नहीं जानते ! फिर भी बताती हूँ, मैं सुखाता हूँ ।”

“सुखाता, मैं तुम्हारा हृदय, दुखता तुम भी नहीं हूँ । तुम्हें भ्रम हुआ है । यश-तुम्हारी जाब यह परखी ही भेंट है ।”

“ओ भी हो पाव । पाव मेरे सब मैं योंका वैराग्य मेरे विरहास को नहीं दिया मकले । मेरी पूजा के जाग ही उठे रह हूँ ।” सुखाता ने उनकी पूजा करना आरंभ किया ।

सिद्धार्थ ने कहा—“मैं फिर क्या देता हूँ तुमसे कि मैं एक साधारण मनुष्य हूँ ।”

सुखाता सुपकाठी हुई बोली—“आपने मेरी मछि की पटीका नहीं करनी चाहिए । मैं साधारण मनुष्य को ही पूर्णता जान । मेरे मासक मैं मेरे देवता का ही व्याप है ।”

सुखाता ने मनु-अगर-मित्रित वापस का नैवेद्य सिद्धार्थ के सामने रक्खा एक सुबर्ण की बाखी में । वह हाथ जोड़कर बोली—“हे देवता ! मेरे समान तुम्हें व्यक्ति की आपने अर्चना प्रदत्त की । मैं क्या द सकती हूँ आपसे । सदा-सर्वदा आपका आज मेरे मासे पर रचित रह रही मेरा स्वीक है । वाच-सहित वह नैवेद्य मैंने आपका समर्पित किया इसका भोग अग्रहण !”

वाचस की मधुर गंध से समस्त बर-वृक्ष का वातावरण सुवासित हो उठा । सिद्धार्थ ने कहा—“तुम्हारा वह नैवेद्य अमृत के स्रवत निकाली है रहा है मुझे, मैं अचरित इसे प्रदत्त करूँगा ।”

इसी समय सिद्धार्थ के बाँधें टिण्ड धिक्का प्राप्त कर खींच रहे

ने । धूर ही से उन्हें देखा, लापरवाह में सुपजित होकर सिंहादे के सामने बहुमुख्य बाघ में जाग्रत रक्ता हुआ है । दो महिलाएँ उनके निकट ही खड़ी हैं ।

कीर्तिश्र बोला—“हे मगलदा, यह क्या भिस्मदेह आचार्य का वस्त्र हो गया ?”

हस्ता शिष्य बोला—“हाँ, वही बाघ है ।”

कीर्तिश्र—गुरु का इतने बड़ों का संभव देखा तुमने, जब हाते कुम्भी धर न जागी । तुम्हें वप-ग्रह हो गए । वह भिस्मदेह पारी मार के बाघ में चँस गए । वह साबना का मातौ बड़ा दिग्भ्रम है । ईश्वरों का विठ्ठा हमन किया जाता है, उठनी ही वह बिजोड़ी हो उठती है । अब क्या होगा ? भर्तृ में तो समझता हूँ, हमको कहीं अन्धकार बल देना चाहिए ।”

“क्यों ?” वह ने आपसि की ।

“क्यों ? देखते नहीं हो मार का प्रच्छन्न प्रभाव । बसत की कटु है सदी, पर जिस सौहृद के साथ वहाँ आश्रम में उनका शास्त्र विकसित हो बैठा रहा अन्धकार परित्यक्त है ? नहीं, वह देखो, अन्धकारों के आने लगे हैं । कुप-भीत आश्रम होगा अभी । विज्ञाप धीरे भाग की सजा उपस्थित होगी ।

“आचार्य को क्या प्रेरणा ही होव जायें । तुमरा बोला ।

कीर्तिश्र बोला—“अब क्या चाहिए उन्हें हमारा साथ । रक्ता माया, सुवेतिनिर्वा रमयिनी लगी है अन्ध परिचर्य के शिबे । अब हम कीर्तिश्र-कर्मचलुषा, कटा-रमभु-संहित मिश्रणों को कौन देखेगा ? ज्ञानावृत्ति के शिबे हमने आचार्य का साथ दिया था, ईश्वरों के भोगों में पतित हो जाने के शिबे नहीं । तुम्हारी जो हप्ता हो क्यो । मैं तो नहीं रखूँगा देर हम आश्रम की सीमा में । मैं तो चला ।”

“कहाँ को ?”

“विजयना के बहाव के किनारे-किनारे योंग को और वहाँ से धीरे-धीरे काटी को !” कीर्तिष्ण ने कहा ।

“आचार्य से बिदा तो ले लें ?” वह बोला ।

“कोई काम नहीं । उबरा हमारे गी कैंस जाने का मक है । मार का बड़ा सवालक इन्द्रजाल है । हमें हाथ भी न हो सकेगा कि हम बच गए हैं । उन्हे के हेतु पुनः चारिप और गिरने के बिसे बच, इन्का सरलत उदाहरण इस तरकीब का हमारे सामने है । अब एक यह आकाश की तारिकाओं के साक्षि में था । भाव मनु-मिड होकर मृत्ति पर रेंग रहा है ।” कीर्तिष्ण बोला ।

“हमारे बच्चे बच चुकने को डाक लगे हैं, उन्हें तो उम्र बढ़े !” वह ने कहा ।

“हाथ-भर कपड़े का टुकड़ा, जिससे माँगो, वह दे देगा । पोच काओ बच । कुपल चाहते हो, तो जाग बचो बचो उबरे वैसे ही ।” कीर्तिष्ण बोला ।

बाँचों सिध्द बच दिव उसी पक्ष सिद्धार्थ से बिदा कह-मुने ।

मुवाता ने हाथ जोड़कर कहा—“आपने अनेक बसौन कृपा की है बचदेव । अब मैं जाने की आज्ञा चाहती हूँ । जैसे मेरी मन्तोकात्मना पूर्ण हुई, ऐसे ही तुम्हारी भी मन्तोकात्मना पूर्ण हो । तुम्हारी अप हो !” वह बिदा हो गई ।

सिद्धार्थ मन्-ही-मन् सोचने लगे—“यह मन्-साधनी मारी कबरी पूजा की लम्पटता से मूक गई । मुझे आशीर्वाद देकर चली गई वह । इनके अलम्पट में जो यह टुकड़ा मेरा था, उसे मैं वह अलम्पट से मेरी मन्तोकात्मना पूर्ण करेगी । बचा मुँह-मुँहिन उल्लिख हुआ है आज का । मेरे मन में एक आधुनिक धार्मिक अभिधुन प्रवाह में बह रहा है ।” वह उस वाक्य के साथ को लेकर उठे । विजयना के तीर पर गए । उन्होंने हाथ-मुँह जोकर पाकम-मोम

किन्ना । उन्होंने वाम हुए बाध की । मुख्य का बाध नदी के जल में प्रवाहित कर दिया । उन्होंने बाधका की ओर देखा, फिर मित्रों के मार्ग पर दृष्टि की—“मेरे साथी नहीं आए धात्र अभी तक । मेरे मन में प्रतीत हो रहा है, धात्र ने मुझे छोड़कर वहीं जन्मभूत चले गए हैं ।” वेला बहुत अधिक बीत चुकी ।”

कुलों का भार क्षिप्त हुए स्वस्तिक-नामक एक ब्राह्मण का बहूँचा वहीं । सिद्धार्थ से पहचान थी उसकी । उनके पक्ष की विजय प्रत्याशा को वह भी नहीं भ्रष्टा और धारक के मार्गों से देखा हुआ कहा जा रहा था ।

आत्मा स्वस्तिक, तुम मेरी ही प्रेरणा से आए हो धात्र वहीं ।” स्वस्तिक ने सिद्धार्थ को प्रणाम किया—“आपके पाँचों शिष्य धात्र वह धारम छोड़कर चले गए, क्यों महाराज ।”

“नहीं जानता । तुम्हें क्या मित्र ।”

“हाँ महाधाम ।”

“कहा करते थे ।”

“बही कि सिद्धार्थ को सिद्धि प्राप्त हो गई और अब वहीं हमारे जेवों की कोई गिनती नहीं ।”

“वहीं स्वस्तिक, न मुझे सिद्धि आधीरित है न उनकी अपेक्षा ही । एक स्थान पर रहते-रहते कदाचित् उनका मन पड़ना उठा होगा ।” सिद्धार्थ ने संवृत्त होकर कहा ।

स्वस्तिक को सिद्धार्थ के शरीर से धनुः आमा विधीर्ष होती प्रतीत हुई ।

“नहीं और कोमल कुलों का भार लेकर तुम आए हो स्वस्तिक । कुल मुझे दे आया ।”

“किन्ने हेतु महाराज ।”

“इन पर बैदर में सर्वविधारी धार की सेवा का इमान करूँगा ।”

‘जुब जर्न की इस कमिन् जस्त्या से क्या हुई नहीं हुआ ! तो इस बात पर बैठकर क्या हो जायगा । मैं तो सिन्ध ही कुशासन पर बैठता हूँ । मैं बीर्य होता जा रहा हूँ, और मेरी अमनार्थ सिन्ध बलबली ।’

‘मार को जीवन के जिये पारमिता चाहिह स्वस्तिक ।’

‘पारमिता क्या हुई ?’

‘हुम्ब बिगिह गुर्बों की संता है यह । फिर बात हो जायगा तुम्हें ।’

स्वस्तिक सिद्धार्थ को कुश-दान देकर चला गया । उन्होंने कुशों को बली बुध के नीचे बिहाया । सूर्यदेव अस्तमय पर आकर चमक रहे थे । सिद्धार्थ एक महान् संकल्प को ग्रहण करने के लिये प्रस्तुत हो रहे थे ।

मार बबरा उठ्य था । उसने अपनी सेवा को पूरी शक्ति से सिद्धार्थ पर आक्रमण करने के लिये उद्यत किया ।

सिद्धार्थ ने इस बुध के नीचे बीरासन में बैठकर भीर प्रतिष्ठा की—‘इसी आसन पर बैठकर जब मैं सत्य का साक्षात्कार करूँगा । नहीं तो मेरा जो हुम्ब है, सब हुम्ब मेरे शरीर के साथ ही यहाँ पर प्रसृत हो जाय ।’

एक और शुद्ध मन के इस संकल्प को सुनकर विस्मित हो उठ्य मार ! उसने अपने सहान्त्रियों को सम्भाषा—‘बीरो बड़ो, आगा, मान्यों का प्रण बना हो इस बार । नहीं तो फिर निर्वाण का दण बात कर सिद्धार्थ उधे सर्व-प्राप्यारण के लिये सुखन कर देगा । फिर भीन हमारी बात समेगा ? हुम्ब कुमि-बीट के समाज हमारा जीवन हो जायेगा । है सच्चा वर्ण्य ! कर्मका के उद्दीप्त के लिये जो हुम्ब भी तुम्हारे हैं, वह सब प्रकट कर दो आज जल-जल-आकाश में, पवन को सुवास और संगीत से भर दो, बड़े-कलशों को रँग दो कल-कल को मंदिर कर दो आज ।’

मात्र के सम्बन्ध में सभा वर्णन ने श्री श्री सुखमा से परिपूर्ण कर दिया उसके बाद के बच-प्राप्त की। उम्मीदी वीमा के बच-जीव सब भर रहे उद्दाम-कामना के उम्माह से, फल-पत्र में अदुःख विकसित उठा। के नज्ज नम में, कीट घरती पर, नयी वचन में पशु वच में श्री सुख सुख में उद्दाम से सुख करने लगे।

कमल अयोध, काम नज्जविकसित श्री श्री विजय के बावों का नज्जकन मात्र कटिबद्ध हो गया ज्ञानमय के सुख अपने बावों में सेकर। काम, कोय, काम, मोह, मर श्री मन्त्र का ज्ञानमय रूप अपने सुख पर आकाश करने लगे। बावों कीट-कम्पावों ने अपने सम्मिश्रित कंट छ हय की घरा उद्दामी घारम की। सु-बा रति श्री घाति सिद्धार्थ के सेकर बचावे लगी। आकाश में विजय का पूर्ण चंद्र था।

विजय के हंसकर कहा—“हे माता! वह तुम्हारी लीला है, मैं समझ रहा हूँ इसे। तुम्हें हय विजय की विजयता का सेकर कीट जाना रहेगा।”

माता-कम्पावें विजयता हाकर विजय के विजय में प्रवर्तनीय थी। रति सिद्धार्थ के विजयुक्त विजय था गई। उम्मीदी घाति की घार वेला रति का पीले दह जाना रहा। बावियर के किये प्रवर्तनीय उम साधक ने उम होना का अपने से समान दूरी पर हय दिया। वे होमो बर्ही-की-वर्ही सिद्ध हा गई। सिद्धार्थ उमक आध्यात्म-विजय के स्तर से घातीत हो गए। रति श्री घाति सुख-दुम्मे में समाकर जाकर हो गई। उसके बाव होते ही सुम्मा का भी कहीं पता न रहा। नील बावार्थ कभी की माता गई थी।

सम्पादन के बाव को ज्ञानमय मात्र विजय हा गया। उसने उद्दामन का शास्त्र-मैदान किया। सारा वच भूषाक से ज्ञानमय हो गया।

राशि के शेष काह में उन्हें ज्ञान हुआ— 'जरा-मरण जाति-ज्ञान से उपपन्न है, जाति-ज्ञान भव-मरण का फल है, भव-मरण उपादान धर्मात् चार मूर्ता से उपपन्न है, उपादान तृष्या-ज्ञान है तृष्या वेदना धर्मात् बाह्य वस्तु के ज्ञान से हुई है वेदना स्वयं-मरण धर्मात् ईदियों का विषयो के साथ संयोग होने से उपपन्न हुई है, स्वयं मरण धर्म-पक्ष ईदियों के बहावजन से उपपन्न है, बहावजन नाम-रूप नाम-रूप विज्ञान का फल है धर्मापन का ज्ञान ही विज्ञान है, विज्ञान-संस्कार बहत्त्व प्रवृत्ति-विषय से हुआ। संस्कार अधिष्ठा का फल है बहत्त्व में वस्तु-ज्ञान धर्म अधिष्ठ में निष्ठा की भावना ही अधिष्ठा है। यदि हम अधिष्ठा का विराजमान हो जाय तो फिर जरा-मरण से मुक्ति प्राप्त हो जाय।"

अनंत उपोधि के पुत्र विद्याकर उदित होकर समस्त उपदेष्टा के प्रवेष्ट को प्रकाशित कर रहे थे ऐसे ही विद्यार्थी का संस्तर भी ज्ञान से प्रभावित हो रहा जिसके द्विजे दूर और जगत् का स्वागत किया, मुक्त-भाग बोला ईदियों का हमन किश उल्लेख ज्ञान इतने निष्ठ बहत्त्व विद्यार्थी ध्यान से गहगह हो रहे। परंतु अभी वह कायि-पर प्राप्त नहीं हुए थे।

धीरे-धीरे उन्होंने देखा किश प्रमाण किए ही उनका ध्यान मग्न होकर उन्हें समाधि की सीमा पर ले गया, उनके चित्त की चपकता अभी गई स्वयं थी। उनका अनुशासन धीरे धीरे मिट गया उन्हें और निजर्त बने गए, उदासीन भाव वह भी नष्ट गया। विद्यार्थी स्वयं और स्वयं-विधि हो गए। उनके शरीर को समस्त किशार्थ प्राप्त हो गई। एक अनिर्वचनीय दशा का प्राप्त हो गए वह अब एक उम दशा में रहे वह। प्रसाद के ज्ञान का उपदेष्टा के दिन नहीं रहा जो मरणा।

विद्यार्थी के पुन-पुन का निर्वचन हो गया विद्व-मिशन का

निर्वाण हो गया, अन्त-मृत्यु का निर्वाण हो गया, इंद्रियों और मन का निर्वाण हो गया। सिद्धार्थ को निर्वाण हो गया। उन्होंने सम्मत् सर्वोक्ति-मार्ग प्राप्त किया वह अमिताभ कहलाए।

कुशल की प्राप्ति पर सिद्धार्थ ने कहा—“इस संसार में बार बार जन्म की वेदना सहता हुआ मैं हम वेदना के गृहकार को हँसता रहा। आज वह दिखाई दिया अब मुझे गृह करने की आवश्यकता नहीं रही। मेरे सब बंधन टूट गए, गृह-भूट नष्ट हो गया। मेरी समस्त सांसारिक वासनाएँ समाप्त हो गईं। मुझे निर्वाण मिल गया।”

कित्त बट बूढ़ के छोटे सिद्धार्थ ने ज्ञान प्राप्त किया वह बोधिभुम कहलाया। निर्वाण-मार्ग जान करने के अनंतर सात मात्साह तक उन्होंने बोधिभुम के निकट ही समय व्यतीताहित किया। कहते हैं, इस अवधि में बुधा-दृष्टा विद्या-प्राप्ति किसी वस्तु की उन्हें प्राप्त होकर नहीं हुई। वह समय उन्होंने वर्म-विना और निर्वाण-जन्म प्राप्ति में व्यतीत किया।

साठवें सप्ताह के अंत में जपुर और नसिखक-नामक दो पूर्ण वेशीय व्यापारी माछ से भरे हुए एक शकट को लेकर उल्लेखा के बग से होकर जा रहे थे। मार्ग में उनके शकट के चक्क मूमि में गड़ गए। वे बग में किसी मनुष्य का सहायताार्थ कोकरे हुए उस वाराचक नामक एक के नीचे पहुँच गए, जहाँ कुछ व्यावस्य बैठे थे।

देवताओं के प्रकाश के भासमान उस अशौचिक महात्मा का देखकर जनावास्त उन होना की अज्ञा और भक्ति उमड़ पड़ी। उन्होंने सुस्वादु मोक्ष के पदार्थ काकर उन्हें भेंट दिए कुछ से धार्मिक उपदेश पाकर वे हाथी विरा हुए। एक प्रकार से जपुर और नसिखक कुछ के सर्वप्रथम मित्र हुए।

कुछ दिन वाराचक के बीच विचार करने लगे—“मेरी ममोक्तमत्ता

एवं हा गई ? यह क्या करना उचित है मुझे ? बाधित केवल मार्ग इन्द्र की नहीं रह जाता । उसका काय मार्ग दिखाना है—मारी समझ को ।” वह विचार-मग्न हो गए ।

माता बन-श्रीन गुरु की तबस्विता से आगमना उठा था । पशु नहीं, बृह-पशुन मय उन्हें धर्म-कर्म के प्रवर्तन के हेतु प्रोत्साहित कर रहे थे ।

गुरु के विचार—“अगत् में धर्म के मार्ग पर कुछ दृष्टी ही परिपक्वी प्रवर्धित है, मरा मार्ग मिल है क्या समार उस स्वीकार करण ? उस नवीन मार्ग समझकर उसकी उपस्था तो न करण । पर मरा मार्ग नवीन नहीं है, वह प्राचीन भी नहीं, वह तो समापन है । बीच-बीच में वह ला लाता है । मैंने हम पर शताब्दियों की कमी हुई । पूर्ण चक्रम का दिन उसे प्रकट किया है । मेरा मार्ग सत्य है । सत्य विजय स्पष्ट जाना है, उतना ही सरल भी । मरकटा उपचर्याव बन्य नहीं है । मेरे मार्ग कोक में समाहित होंगे ।”

माता बन-श्रीन के कण्ठ-कण्ठ से प्रतिज्वलि उठी—“हाँ हाँ तुम्हारा निर्देशन मार्ग अगत् के बाटि-काटि प्राणियों की शक्ति का कारण होगा । अगमर हाथा विद्वार्थ तुमने चोखिरद बाधा है । तुमने अमृत प्राप्त किया है, अमृत विवरण करो ।”

गुरु ने धर्म-प्रचार करना निश्चय किया—“हाँ मैं कल्ह में शक्ति का बीज बाँटूँगा । मैं निर्वासन का पथ प्रदर्श करूँगा ।”

वह उठ “कहाँ जाऊँ ?” उन्हें अनिश्चयता की स्थिति प्राप्त—“नहीं, प्रभी नहीं ।” उन्होंने अमृत प्राचीन गुरु बराहकाशाम और चक्र के नाम जानें उन्हें अपने धर्म में दीक्षित करने का विचार किया । पर हाथ हुआ कि वे होना आश्रित हो गए हैं । गुरु निर्जना के विनारे-विनारे बाराहमी की ओर चले ।

१५. धर्मचक्र-प्रवर्तन

हुआ के वे चौकोर शिल्प, जो उन्हें उम्मेदा के बन में धकेला ही बीच घाय से, बाराबसी से वेह अगेर बसर दिया में मुगल-नामक बन में उपस्था कर रहे थे। नावा तथाओं में बिचारक करते हुए बुर बाराबसी जा पहुँचे। मार्ग में उन्हें उन चौक मजबूत मजबूतियों का पता लग गया था। वह भी मुगल को ही बस दिए।

चौकोर मजबूतियों ने उन्हें दूर से ही घाटा हुआ देखा दिया।

एक बोला—“वह देखो, मौतन बसा जा रहा है, इसी ओर बह-अप होकर।”

दूसरा कहने लगा—“जाने दो, हमें कोई प्रयोजन नहीं इससे।”

तीसरे ने कहा—“हमें कोई धारणा नहीं है कि उसे बचने के लिये भागना है। हम सब अपनी-अपनी धर्म में रह कर जानकर हो जायें।

चौथे ने विरोध किया—“वह करे चर्च की बात है। इससे हमारा कल्याण न होगा। सिद्धार्थ ने हमारा स्वर विचार है, जो हम सारकारण सिद्धाचार से भी बचे बंछित कर दें। महर्षि न हो वह राजवंशी लो है। तुम्हारी उम्र भी दृष्टा हो, मैं तो चर्च ही उनकी सम्मर्पण करूँगा। मुझे तो उनकी गति में प्रस्था और मुझ में सिद्ध सेव दिशाई दे रहा है।”

तेरहवाँ ने कहा—“सिद्धाचार नहीं कहा कि एक उप-अप इन्द्रियों के दास साधु के लिये सम्मान प्रकट किया जाय।”

वा जब कुछ इन मन्त्रधारियों के निकट आए, तो उनके तपास में पहले उनकी चार मन्त्रधारियों का विश्रुत किया। उन्होंने उठकर कुछ के चरनों पर गिरकर प्रणाम किया।

कीर्तिस्व वही बेर तक कुछ के चरनों में मलक रखते रहा। उनके नेत्रों से धिराम धधु धारा उन्हें धर्म दे रही थी।

कुछ ने प्रेम के स्पर्श से उठ उठाकर बाती से जलावा—
“कीर्तिस्व !”

अचरम जमा कीर्तिस्व तुम्हारे ! सबसे प्रथम मेरे ही मांस में वह प्रणाम उपजा था। मैंने ही इन मन्त्रधारियों को भी धारका प्रोही बताया। देवता हूँ, वही धारका अचरम हो गया मुझसे। धारक शरीर से एक धार्मिक आति अतिगोप्य होती हुई इन रहा हूँ मैं !” कीर्तिस्व ने कहा।

“हाँ कीर्तिस्व, मैंने मन्त्रक संतोषित प्रार किया है।”

“हाँ मन्त्रधारियों ने उन्हें दण्ड आदर कहा— मन्त्रान् धारिक की जग !”

दिन दूध गया था, और संध्या अतीत हो रही थी। धारिक का शरीर दिव्य आभा से चमक रहा था।

कीर्तिस्व ने कहा—“हमारा धर्म धारिक है। हमें तपस्य के दर्शन हुए हैं। हमारी पाप-व्यसनों का एक दर्शन-मात्र से पीछ हो जाती हैं। हमारा धार पर विश्राम बढ़ जाता है। मन्त्रान् हम पर कृपा करें और हमें भी मन्त्र-ज्ञान का उदयेय दान करें।”

“अचरम ही मैं हूँ। हेतु तुम्हारे धार आभा हूँ। मैं सबसे पहले तुम्हें ही धर्म मन्त्रार्थ प्रतिपदा का परिचय दूँगा, जिसे मैंने बढ़ावा है। धर्म धार धार्मिक धर्मों को तुम्हें दिखा दूँगा, जो मैंने दूँगा है। धर्म धर्म धारिक के तुम्हें दर्शन करा दूँगा, जिसके मैंने दण्ड कि है।”

वह बच-बोच बढ़ता ही जाता । सुर, वर, मान, बच, भंवर्ष और फिरों ने भी तीसरे कोनों को निवारित कर दिया—“ममो मुद्राव ।”

वति-विशोग-कातरा बसोकरा ने ये जू बर्ष जू बुगों के समान बिताव । एक लवन्धनी की मूर्ति, राजमन्त्र में रहने पर भी बन्वास से भी अधिक सुम्बरा के साथ, वह तिख-तिख बुझकर बीसकाव हो गई ।

सिद्धार्थ के हस्ते के एक मुन्धरदार को उसने अपना साबी बनाया । मोते-बाम्बे उसके हाथों में बड़ी माझा रहती । वह अपना समय का अधिकांश एक-एक मुन्ध में सिद्धार्थ का नाम बफ्फर प्रतिबोधित करती । उसे विश्वास हो गया था एक दिन उसके स्वामी सज्ज सापित कर उसके पास लीटेंगे, इसी विश्वास पर उसके माथ बरके हुए थे ।

महाप्राय दुःखेव ने फिर सिद्धार्थ की काज के जिन्हे कोई प्रयत्न नहीं किया । वह लोगों के करने-सुनने से माथ पड़ । उन्होंने सिद्धार्थ के दुःख की महापता ओ समझ किया और उन्हें अक्षित अधि की इस अधिष्ठा-बम्ही पर विश्वास हो गया—“... नहीं तो वह बाक्य संसार का प्रमुख कर्म-गुण होना ।”

मकड़ क्य से सिद्धार्थ का अदुर्भाग्य नहीं कर रहे थे महाप्राय । इस भय से कि उनकी साधना में बिज बाधना पर उनका आत्म दुःख सदैव ही बुझ की कुण्ड-बेम बाधने के जिन्हे आसुक रहता था । राज्यानी अजायती उन्हें कभी सूझने ही न देती ।

मगध से जो भी बात्री मित्र, परिभाज्य, बखिष्ट् कसिबबन्धु जाता दुःखेव उसे राजभवन में विमोहित कर उससे सिद्धार्थ के समाचार पूछते ।

पपुर और भक्ति अधिसार करते हुए वह अधिबन्धु पर्वि, वह उन्होंने नहीं सिद्धार्थ की ज्ञान-मापित का समाचार लेनावा ।

महाराज ने वह सुनने ही उन्हें राजमन्त्र में बुला सेवा और कहा—“दे व्यापास्या ! तुम मेरे अभिनेतृ के पास हो । तुमने मेरे सुवराज को क्या है ?”

“हाँ महाराज क्या है । अब उन्हें कपिलवस्तु का सुवराज कहना उनका आमान करना है । अकस्मीं राज्यपति होना भी अब उनके सामने तुम्हें वस्तु है ।” प्रभु ने कहा :

महाराज ने कहा—“उहामित्र, मैं अकस्मीं ही वह समाचार नहीं सुनना चाहता ।” वह सीधे हुए अकस्मीं में गये और प्रजा बली, यशोधरा वृद्ध वरुण के बाहक राहुज का अपने साथ में लाए ।

“मेरा मित्र ! मैंने सुना था उसने अपना स अपना काया का सुनना चाहा है । हे महाकुमारो, आपने किना दुर्घट क्या है ?”

“दुर्घट ?” अकस्मीं में प्रभु की आवाज ।

प्रभु बोला—“नहीं हा । अकस्मीं स्वर्गीय उपाधि से उनका मुकुट मंडल नाममान था । मनुष्यों में हमने ऐसा नेत्र नहीं देखा, देखता होने होते, ता होते ।”

“उन्होंने परम आन प्राप्त किया है, हममें कोई मंदह नहीं ।” अकस्मीं बोला ।

भोजा गङ्गाद्व द्वीप । उनके मुख से शब्द न निकल सक ।

राहुज बोला—“मा क्व आयेते विप्राः ?”

यशोधरा ने विराट् करने अकस्मीं पाद धिष्ट ।

“अयोध बाहक ! विप्रा को कभी क्या भी तो नहीं । किसी ममता हो गई इसे उनकी । अकस्मीं महाराज ने राहुज को गोद में ले लिया—“अब सीधे ही आयेते तुम्हारे पिता राहुज ।”

“अब मेरे बिये क्या आयेते ?”

‘बाने के बिबे पञ्च-मिष्टाञ्च और लेखने के बिबे खेड-किछीने ।’
प्रजापती ने कहा ।

महाराज ने पूछा—‘मेरे पुत्र ने परम ज्ञान प्राप्त किया है, जीवन में वह सबसे सुखद समाचार है हमारे बिबे । ज्ञान प्राप्त कर हमारे पाप छोड़ने का बचन दिया था कभी उमरे । कुछ कहा नहीं तुमसे ।’

‘नहीं महाराज ।’

‘कोई बिबा नहीं । तुमने जो शुभ समाचार हमें दिया, हमका बदका क्या है तुम्हें ।’ कहकर कुछ बिचार किया महाराज ने—
‘तुम्हारे शब्द में जो भी परम इच्छा है उसे वीम-मुक्तिनों को बाँट दो । तुम्हारे शब्द का स्वर्ण-मुद्राओं से भरकर हम तुम्हें बिबा देंगे ।’

प्रभु और भक्ति बचासमय सम्मान-पूर्वक बिबा हुए ।

पशोघरा ने यह समाचार जानकर भी अचम्भा रहन-सहन परिवर्तित नहीं किया । अपने कहा—‘बढ़ि मेरे स्वामी राजमन्त्र में खीटकर फिर सांसारिकता ग्रहण करें, तो मुझे भी खीटकार है, नहीं तो अब मुझे वह जीवन अम्बरत हो गया है ।’

राजगुरु में अज्ञात और देवदत्त की मित्रता में और भी बढिका बढ़ गई । उनके कुछक बहुत बढ़ गए थे । उनके आचार्य के बिबद बरों महाराज के कानों तक बगार जाती । वह किसी प्रकार भी पुत्रराज का सुचार करने में समर्थ न हो सक । वे दोनो निर्मल होकर जो मन में आता करते । महाराज के बिबे कोई आरत जगत् की कोई छाया, मगलाह का कोई मन रह न गया था उनके इच्छा में ।

अज्ञातगुरु से एक दिव किसी बात में जर्मतुष्ट होकर देवदत्त ने कहा—‘माई अज्ञात, अब मेरा मन नहीं बगला तुम्हारे राजगुरु में ।’

‘वहीं ! वहीं !’ बिबित होकर अज्ञात ने पूछा ।

‘‘मही जानता कारण ।’’ यस्तोत्र को बड़ी खुशी से बिनाबर देवदत्त ने कहा ।

‘‘क्या अज्ञान में कोई अपराध हो गया मुझसे ?’’

‘‘नहीं ।’’

‘‘राज के किसी कर्मचारी ने अपराध की तुम्हारी ?’’

‘‘नहीं ।’’

‘‘महाराज न कुछ कहा ?’’

देवदत्त चुप रह गया ।

‘‘तुम्हारी मित्रता को मैं पिता के द्वेष से बचकर समझता हूँ ।’’

‘‘नहीं-नहीं उन्होंने कुछ नहीं कहा । अब वह कुछ भी नहीं कहते मुझसे । ऐसे ही मेरे मन में भोगों के प्रति विराग उत्पन्न हो गया ।’’

‘‘तुमने मिश्रार्थ की वपस्या के समाचार सुने हैं । लोग अब किसी की प्रशंसा करके जानते हैं, तो ऐसी ही उदा देने हैं । क्या तुम्हारा मन भी मिष्ट बन जाने की इच्छा रखता है ?’’

‘‘हाँ ।’’

‘‘मिश्रार्थ तुम्हारा प्राचीन प्रसिद्धि है ।’’

‘‘यह अनुमान तुम्हारा ठीक ही है ।’’

‘‘आपराधी हमें थोका देकर चली गई ! क्या उसकी यह रवार्थगता तुम्हें बटक गई है ? आवस्ती का वह भेदी है क्या बस्तु ! क्या हुआ यदि हमारा उपराध पर चढ़ाई करने का कोई प्रयत्न कारण है नहीं तो । हम उबरा लेंगे कोई । अग्य के पुरातन की प्रेम-वादी को आवस्ती का एक तुम्हें राजकुमार करने कथन में रखे हुए है । वह अमल है देवदत्त, कहा, वा अब पर चढ़ाई कर दें । प्रकृत कारण न देंगे, केवल भूमि-अप की आर्षाणा । क्या यह अक्षिप के गौरव की वस्तु नहीं है ? महाराज सहमत न होंगे, न होंगे ।’’ अमात्य ने कहा ।

बड़े वैराग्य की अवस्था से ईसा देवदत्त ।

सच-सच अपने हृदय की बात कही मित्र ! तुम्हें स्मरण है, एक दिन तुमने मुझसे कहा था, अपने इस फिर विपुल जीवन का कारण—

‘तुम्हें क्या उसे मेरी विचरणा समझ लम्बा है ?’ कुछ कभी दृष्टि से दृष्टि में पड़ा ।

‘नहीं तो ?’

‘फिर ? क्या कारण बताया था मैंने ?’

‘आजवादी को ही तुमने कारण बताया था पुरुषार ।’

‘तुम्हें स्मरण नहीं ?’

‘मैं भूलता नहीं ।’

‘वह दिया होता किसी दिन आसन्न की भावना में ।’ बेबदुश बोला ।

‘इससे क्या आशातुम्हें—’ ‘वह समय तो तुमने अपने हृदय का प्रेम दिया था उसे ।’

‘दिया होगा । क्या एक समय वह समय के पुरुषार को भी नहीं मर्यादा होती थी अपने सन्तानों पर ?’

‘नहीं मित्र, आशातुम्हें के ‘केवल की पुण्यवर्षा’ है वे, हृदय विविध के देत नहीं । आश का अनुमति लेने के लिये । कृष्ण सीकने के लिये । तुम कहते नहीं हो क्या ? आसन्न की कृष्ण चाहिए । आशातुम्हें के कहा ।’

‘मेरी आशातुम्हें कुछ मित्र है इस संभव में । मैं सिद्धार्थ की याति रम के आश से उस प्रकार भाग जाने को कायरता समझता हूँ । आशातुम्हें क्या कहना विज्ञात-अर्थों ही में है ? क्या उसका अर्थ अर्थ मनुष्य का मन नहीं है । अपने तो हृद नहीं सन्तान करिबबबब का पुरुषार ।’

‘हृदय तो सर्वथा मित्र समाचार जाते हैं राजसभा में । हृदय कुछ भाव से किसी का आशन्न मुक्त का देना नहीं । सिद्धार्थ

दिवों को बड़ी समाचार था कि सिद्धार्थ कबल बापु और ब्रह्म का-
पीकर ही ध्यान में अवस्थित है ।”

“एक असमय बापु अज्ञात । ऐसा भी नहीं हो सकता है ।
उसके चेहरे सुक-विपकर उसके अग्रज और अग्रज ब्रह्मा ऐसे होंगे और
गुरु की महिमा उदात्त होंगे । गुरु की महिमा पर ही तो बेकों
का भी आदर-सम्मान अवस्थित है ।”

“मगवान् जानें ।”

हम भी जान सकते हैं मित्र । वह एक स्पष्ट तथ्य है । वास्तव में
जम जितना ही सिद्धार्थ, वह समस्त पाकर उठना ही हमें नीच
सेती है । मन का जितनी दूर हम भोगों से से जावेंगे, उठना
ही अवस्था ही उठता है । अतः-गुरु माया-विद्या, सुक-भाग राज-
काय बापुकर क्या हम वन में सिद्धार्थ का उनकी स्मृति मिर गई
होगी । कभी नहीं । अवस्था मन क्या अवस्था ही मकता है ।
जब तक शरीर है, जब तक मन है और है इन्द्रियों का व्यापार ।
मन से इन्द्रिय-गुण की कल्पना से अन्धा है शरीर से इन्द्रियों
का सुक-भोग ।”

‘तो क्या अप्रसन्नों को साथ से जाकर तुम तपस्या करना
आवत हो ।’

“तुम इसे परिहास में उड़ा रहे हो, या वेदवृत्त का मन विद्यास
से भर चुका है ।”

‘नहीं मित्र, अभी नहीं ।’ अज्ञातगुरु ने दृष्टव्य का हाथ पकड़
लिया । अभी आप्रसन्न में हमारे मन का नीचन की पर्याप्त
शक्ति है । जागामी कार्यनोन्मत्त तक न जान कर ही उसे कोई
दोष दिया जा सकेगा तब तक कि जिस मित्र तुम अपने इस वैराग्य
और तपस्या के संकल्प का अभिमत ही रहोगे । आप्रसन्नों को जाने
भी है । क्या उमक अप्रसन्न और मुंहतीर्ण नहीं है राजपूत में ।”

बोधिसत्व बुद्ध का सर्वप्रथम तिष्ठान हुआ। इसके अनंतर शेष चारों महाचारियों ने भी उसका तिष्ठान प्रवृत्त किया। इस प्रकार बुद्ध और इनके पाँच शिष्यों ने मिलकर इस संघ का निर्माण किया, जिसने प्रसारित होकर सारे बंगाल को डक किया।

बर्षा-काळ का पर्वण्य। अगस्त-बुद्ध ने अगस्त-मास में ही प्रथम बर्षा-अन्न विजाना निरूपण किया। बम्बई ज्ञान-प्राप्ति का समाचार चारों ओर फैल गया। लोग उनके परम दिव्य शक्त के दर्शन करने और अमृत अक्षरेण-वाणी सुनने के लिये आने लगे।

चारावसी में एक-नामक एक श्री-संन्यासी जेही का पुत्र था। धर्म-सुख और वैभव के बीच में रहता हुआ था वह। एक रात को न-आये रहा हुआ, उसके मन में महान् विपत्ति जा गई। वह अपने समस्त राक्षसी सुख के वस्तुओं को छोड़कर भाग निकला उस ठम से मरी हुई रात में। उसके प्राण एक दुर्दमनीय देहवा से अवहित थे। अगस्त-की शुक्ल-रात की ओर ही झिझका हुआ कहा गया वह।

रात्रि के अंधकार को प्रतिबलित करते हुए अदृश-वाणी से विह्वल हुआ जा रहा था वह—“हा हुआ ! हा संताप !”

बोधिसत्व ने अपने आसन से खिंची ओ-वही समी-वाणी से पुकारते हुए सुना—“हा हुआ ! हा संताप !”

बोधिसत्व ने मन में कहा—“जोई माथों के पीछर से बोझ रहा है। एक दिन वैसी ही मेरी भी दशा हुई थी। वह प्रथम आर्ष-अन्न इस पर प्रवृत्त हुआ। मैं इसे अपने समीप बुलाकर इसे शेष सब भी सुनाऊँगा।” उन्होंने ठक स्वर में कहा—“हे हुआ और संताप से पीड़ित माथी ! जीवन हो तुम, मैं तुम्हें इनका असर, विरोध और विरोध के बपाव भी बताऊँगा। आओ, आओ, तुम मेरी शक्ति में आओ।”

जेन्सी-पुत्र बरा ने मुद् के निकर जाकर उन्हें प्रणाम किया—“हाँ, आप अवश्य ही मेरा संतान हर होंगे, मैं आपकी शरण हूँ। आपके पास न-जाने कितनी दूर से मुझे कीचले हुए चले आए हैं। मैं बारापसी के प्रख्यात जेन्सी का पुत्र बरा हूँ। मैं संसार के संतान से उत्पन्न हो रहा हूँ।”

“तुम्हें शक्ति मिलेगी बरा! संसार के दुष्टों का शोष हाथ ही इस मार्ग में बढ़ता है। स्वभावतः तुम्हारा मन दुष्कृत्य के कारण को दूँगा, उसके निरोध के बिना व्याकुल होगा और निरोध का उपाय निज जायग। मैं भी एक दिन हम संसार-म्हारी दुःख से बिकल हुआ था मैंने हमसे दुष्टों के उदाहरण मुझे मिले मैं मुक्त हूँ और मैं अब समस्त जगत् के बंधन छोड़ दूँगा।”

‘मैंने स्वप्न में जिन अल्प मूर्ति का देखा था, वही हैं आप। उन्हीं ने मुझे बर्ही बुझाया। मैंने शक्ति का मय जोष दिया, मैंने गुरुरथ का मोह ताड़ दिया। मैं आपके दशन का आप पर बिरहाम आया हूँ। आप मुझे शक्ति होंगे।”

‘हाँ मैं सम्पूर्ण संवाधि-पद प्राप्त हूँ।”

“मैं वरम शक्ति-आगार, ज्ञान के सागर, छुट छुट का प्रणाम करता हूँ। मुझे ज्ञान दीजिए।”

बोधिमन्त्र ने बरा में आर्ष-अर्हियों की व्यावहारिकता उपजा दी। बरा ने प्रपन्नित होकर संस की गलब में सागरों तक पूरा किया।

सृष्टिशाल में दूर-दूर से उपायन के दर्शनों के बिना ज्ञान आने लगे। वर्षा-बास के तीव्र महीनों में मुद् के बर्ही माद शिष्ट हो गए।

बरा के माता-पिता उसे जोरने हुए बर्ही आए। पुत्र को पीछे पीछे पारक किए, केवल मुँहाए, जिवा-बाब बिष्ट देखा, वो अचेत-से हो गए। अतिशय बर दृष्टि की, वो अचित्त-से रह गए।

तुम्हारे अमृत वपस्वों के बने भी प्रभावित हो गए। उन्होंने भी दीक्षा ली। रागी जिन्हु से बिरागी गृहस्थ को अभिताम भेष समझते थे। यश के मात-पिता यश को फिर गृहस्थाश्रम में न लींच सके, स्वयं जीत गए।

बर्षा के मौसम में एक दिन तुम्हारे अपने शिष्यों को एकत्रित कर कहा—“हे मित्रगण! हमने जिन सत्य को पाया है, उसमें तुम्हारी विश्वास-प्रतिष्ठा हो, उसके हेतु बिना किसी जोश और भाटा के तुम्हें वह अर्ज-संविदा जगत् के चारों प्राणियों के हाथ-द्वारा गुनाहा है कि अर्ज-सत्य अधिक वेप से प्रवर्धित रहे।”

सारे शिष्यों को विभिन्न दिशाओं में भेजकर बुद्धदेव फिर बड़ोका को प्रस्थित हुए। मार्ग में कापासीय वन में उन्हें तीन अर्ज-संविदा बरों के पुष्प मिले, जो बड़ी बिठा के साथ उस वन में किसी को खोज रहे थे।

“तुम्हारा क्या को क्या है?” तुम्हारे पूछा।

“तुमने किसी मुंदरी बिरपा को भी देखा मार्ग में?” उन्होंने पूछा।

“हाँ देखा है।” तुम्हारे कहा।

“कहाँ पर? वह हमें वास्तव की अभेदता में कर हमारा सब कुछ बूझकर चला ही है। किसी दूर पर है वह?” तुम्हारे पूछा।

“कहाँ वन में भटक रहे हो? वहीं पर जो है वह।”

कहाँ?”

“वहीं तुम्हारे मन में।

“कहाँ?”

“तुम्हारी तुम्हारा वह अर्ज बिरपा से कम है। उसने तुम्हें मिथ्या में सत्य का आभास देकर क्या अभेद नहीं कर लाया है। वह तुम्हारा कप, रंग, स्वास्व्य जीवन जालु सब कुछ बूझकर नहीं

का रही है। एक और धाम्नीयों के बिचे इतने बिच्छ हो गए हो कम। जीवन के हेतु नहीं।"

तोमों भक्ति-पुत्रों के मन में बुद्ध की चाली गए गई। उन्होंने उन्हें पात्र समझकर उन्हें चारों धार्मिक-मन्त्रों की चेष्टा की। प्रबन्धों केर बुद्ध न उन्हें भी तीस विराहों में मन्त्र के प्रचार के बिचे भेज दिया।

उल्लेख में कारयन्-नामक एक लखरी रहता था। वह अपनी निहता के बिचे समस्त धार्मिक-मन्त्रों में प्रसिद्ध था। वे तीन भाई थे और उससे अलग-थलग रहते थे। बुद्ध ने कारयन् को अपने ठीक लप और ज्ञान से प्रभावित किया।

कारयन् धर्म का उपासक था। बुद्ध ने उन्हें एकत्र कर धर्म का उपदेश दिया—“महर्षि प्रवर्तन धर्म प्रवर्तित हो रही है। मन्त्र, कथ, धार्मिक समस्त इन्द्रियाँ बच रही हैं। उनके मुक्त-भोग मस्तीमूढ हो रहे हैं। वे काम के दावानल से बच रहे हैं। माध की ज्यादा से अज्ञान की धर्म से, धृष्ट के लप से सब बच रहे हैं। वे अतिराम कम न बचने ही रहेंगे कम और मरणा के बीच में मर, बेवसा, संताप और विराह के बीच में। केवल वह विमल चार धार्मिक-मन्त्रों का रहनावा है, जो धर्म के अन्तर्गत भाग पर बसा है, उसे फिर इन्द्रियों और कामना में मुक्त नहीं दिखाई देगा। उनकी मृत्यु का अंत हो जायगा और वह निर्वाण-मार्ग का अधिकारी होगा।

बुद्ध ने उन्हें धार्मिक-मन्त्र और अन्तर्गत-मार्ग को दिखा दी। कारयन् ने अपने भाइयों और मित्रों के साथ मगधान् बुद्ध ने उनसे धर्म में और उनसे मन्त्र में शरण की।

कारयन् के समान प्रसिद्ध मनुष्य थे जब बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार किया, तो उनकी कीर्ति बड़े वेग से विलसित हो गई।

अरवर के साथ अगणित मित्रों को साथ लेकर बोधिसत्व ने राजगृह की ओर प्रस्थान किया। नगर के बाहर ही उन्होंने बटिवन में अवस्थिति की।

जब वह समाचार नगर में पहुँचा, तो नर-भारियों का समुद्र बोधिसत्व के दर्शन के लिये उमड़ पड़ा। महाराज बिस्तार भी दूरत ही उनकी अभ्यर्चना के लिये राजभवन से निकल पड़े।

उस अवस्था की भीड़ को कुछ ने उपदेश करना प्रारंभ किया। उन्होंने चार महासत्त्व और अष्टांग-मार्ग की सुविस्तृत व्याख्या की। उपदेश के अंत में महाराज बिस्तार बैठे और हाव जोड़कर कहा—“हे अमिताभ ! मेरी पाँच हृष्याँ थीं। मैं महापू सन्न्या होई, कुछ मेरे राज्य में पधारें, मैं उनकी अभ्यर्चना करें, वह मुझे उपदेश करें और मैं उनकी शरण में जाऊँ। आज मेरी पाँचों हृष्याँ पूर्ण हुई हैं। मैंने वनारण्य के उपदेश सुने। आपने अभ्यवस्थित को अवस्थित किया है, लिये हुए को प्रकट किया है। आपने पद्म-ग्रन्थ को मार्ग दिखाया है, आपने जोर समवाप्यन किया मैं शीघ्र ब्रह्मावा है कि मेघवाह दूख सकें। आपकी जय हो ! मैं आपकी शरण हूँ, मैं धर्म की शरण हूँ, मैं सर्व की शरण हूँ ।”

अमिताभ की अर्धत आनन्दिक चमक उठी। उन्होंने सारी ममा को अपनी तेजस्विता के चलीमूत कर दिया। सभी ने उनके साथ की प्रवृत्ति किया।

महाराज कुछ को मित्रा के लिये राजभवन में विनंत्रित कर दिया हो गए।

महान् अरवर के शिष्यत्व से जो कुछ की कीर्ति फैली थी वह सन्न्या बिस्तार की शीघ्रता से और भी विगुणित हो गई।

देवदत्त ने जब कुछ की ज्ञान-प्राप्ति का समाचार सुना, तो वह ईश से जल उठा। बहुत देर तक उसके मुख से कोई वचन ही

धर्मचक्र-प्रवर्तन

वही निष्ठा। वही कमिता से उमने कहा—“तुम परिहास तो नहीं कर रहे हो मित्र।”

अज्ञात ने ही उसे वह समाचार सुनाया था। “हाँ-हाँ, मैं स्वयं ही तो अपने गवाच-द्वार से देखकर आया हूँ। ममल पुश्तामी उनके दरवाजे बंद किये जा रहे हैं। माना कोई देवता उतर आया हो भारती पर। मगर से दूर पश्चिम में खड़े हैं वह।”

“क्यों हम भी वहाँ।”

“आश्चर्यकथा क्या है?”

“सात प्राचीनों में जो पुश्तारत बंदी कर दिया गया था, वन आये, जंगल में आने पर उनके दरवाजे खोल दिये तो वे क्या परिवर्तन हुआ है।

अज्ञात ने दबदबका हाव पकड़ लिया—“नहीं मित्र मैं न जाने हूँगा।”

“लेते मपभीत क्यों हो उठे तुम?”

प्रेमवाचक हो उठा है वह कमितालु का पुश्तारत जो भी उसके पास जा रहा है सुना है वह उनके केस काट, बीयर पहनाकर उसके दरवाजे में भिन्न-भाव दे रहा है। हमें मित्र बनना नहीं है। हमने साथ-साथ मगध के विराट माक्राम्य-भगत को रम्य गर्ते हैं वे क्या प्रवृत्ति न करेंगे हम। मैं कहता हूँ यदि सनी मित्रुदा जायेंगे, तो उन्हें मित्रा कील देगा।”

किन्ती प्रकर न माना देवदत्त अपनी हठ पर टप रहा। मित्राय का बाँटा उसके हृदय में गला हुआ था। आनन्द प्रचलन उनकी कीर्ति का इतनी दिराघों में चमकता हुआ देवदत्त पर प्रतिहिमा से पागल हो उठा। अज्ञातयु की आर से भी कदाचित् उसका मन में कोई गौड़ बंध गये भी। क्योंकि पुश्तारत की हल्का के बिना उसने कभी अपनी मन को किसी स्वतंत्रता नहीं दी थी।

देवदत्त ने बलि-बान में पहुँचकर देखा वन-जारियों के समूह-के-समूह एकत्रित हैं। उपदेश उस समय समाप्त हो चुका था। महाराज विस्मित बुरा को प्रबोध कर बिदा हो रहे थे।

देवदत्त ने मन में सोचा—“है, वह क्या बूढ़ा प्रतापी मगधराज एक साधारण राज्य के बुढ़ाए की देसी भक्ति में बँध गया। देवदत्त को वह किम शक्ति हृदय से देकरा है।”

विस्मित बिरा हुए। देवदत्त भीष को चीरता हुआ तुर्र के निकट जाने लगा। ज्यों-ज्यों उससे दूरी होती जाती थी, उसकी भावना ज्यों-ज्यों बढ़ती गई।

बिहङ्गुल निकट जाकर उसने देखा परम हाँव जीर दिव्य मूर्ति। वह अपनी मारी प्रतिहिंसा भूख गया। उसने तुर्र के चरबों में गिरकर कहा—“मैं देवदत्त, धारका जाह-सखा जाहको प्रबोध करवा हूँ।”

‘‘कर्म में मति हो देवदत्त।’’

देवदत्त को अपना जीवन कष्ट-मूर्त दिखाई दिया। उसे अपनी भोग-भूँ से घृणा उपजी। वह सोचने लगा—“मैं भी क्यों न ब्रह्मा मरवा कम में तपस्या के दिव्ये।”

माझ देवदत्त मीने जो पत्थ पत्था है, उसकी ज्वाला धुबी तुमने ?”

‘‘जहाँ मैं बेर में जाया।’’ देवदत्त ने कहा।

‘‘जोई बिता नहीं। मैं फिर तुम पर उस रहस्य को प्रकट करूँगा, तुम मेरे बहुत दिव के सखा हो। उस जन्म में मैं सबसे प्रथम तुम्हारा भाग समझता हूँ।’’

पर देवदत्त का मन फिर दूसरी दिशा को खिंच गया था। वह बोला—“मैं फिर जाऊँगा। जात्र मुझे अभी कुछ आश्चर्य का काम है।” (देवदत्त खीट गया राजमहारी को। १-२ १)

धर्मचक्र-प्रवर्तन

“हाँ सुब्रह्मन् प्रजापति, मैं आकुल हो उठा उन केजोखेरित
मिथुनों के मुँहों को देखकर। उनकी कामवासों को मैंने पचासपान
स्थित बना। गृह, बस और कर्णों को दूरकर मैं नहीं समझना
उनको कौन-सा मंत्र प्राप्त हो गया होगा।” देवदत्त ने प्रजापति
के पास औरकर कहा।

“देवदत्त मित्र, मैं समझता हूँ योग से अधिक योग के बिना
उपचार्य चाहिए।”

केवल महामुनि कारण तथा कुछ और महामुनि को दोहरा
मैं समझता हूँ, मित्रार्थ के समस्त मित्र ऐसे ही हैं, जन्म के
रहित, बुद्धि और मंत्रों दोनों में।

मैं समझता हूँ, महाराज विद्वानों को क्या हुआ। वह हमकी
कपट में था गुरु। उन्होंने अपना शिष्यत्व ग्रहण किया है।
“ता क्या वह राजगुरु तुम्हें सीखकर निज-आज हाथ में लेकर
हमसे साथ चला देंगे।”

“वह मैं नहीं जानता, पर मैंने बड़ी शक्ति और बड़ा के साथ
जन्म मित्रार्थ की ईदबद-दयाय करते देखा।”

“वह तुम समाचार दे हमारे किये, कदाचित् हमें अधिक दिनों
तक प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी अपनी आकांक्षाओं का लेकर।”

हमारे दिन मंत्र के साथ समितान में मित्रा के बिना राजगुरु
में परावर्त किया। उनके आगमन के समय माय में राजा और
महाविद्वानों और बलों पर श्री-मुद्रों की जीव प्रकाश हो गई।

समितान के बरोगान से मारा नगर भर गया।
नगर में मित्रा मंत्राग्र जग में कुछ राजमन्त्र में पहुँचे। अतिवि
मन्त्रा के अनन्तर अर्पित नवग्रह-सूर्य के मन्त्राधिति ने कहा—“हूँ
परमेश्वर तथागत, हम सबकी एक विनम्र प्रार्थना स्वीकार है।”
“कहाँ भी तो।” निहत्तकर बुद्ध बोले।

“तुम उन्हें वास्तव काष्ठ से जानते हो । हमारा मकमेल ही सफ़टा है, पर जग के जो बहुतेस्यक बर-बारी उनकी भार धारण्य हुए हैं, यह इस बात की साखी है । यह एक महात्मा है ।” महाराज ने कहा ।

“हो सफ़टा है ।”

“मैंने उन्हें बेधु-बन में निमग्नित किया है । बरतु पुबराज नहीं चाहते वहाँ उनकी अवस्थिति, तुम उन्हें सम्मत् कर सकते हो ।”

“मनस कर्सेगा ।” देवदत्त ने मन में सोचा—“यह तो महाराज मयबाधित ही ऐसे हैं मेरे जान में ।”

“जाओ तब धीरे । पुबराज पर यह जकट करवा नहीं है कि तुम मेरी इच्छा के पादक हो ।”

देवदत्त बिरा हुआ । पुबराज बेधु-बन के द्वीकागार में पहुँच गए थे । देवदत्त ने वहाँ पहुँचकर देखा, वह एक दिन रहते से ही बर्तमानों को जमा करने लग गए थे ।

देवदत्त ने कहा — “पुबराज ! मेरी बात मानो तो ।”

“क्यों तो सही ।”

“मानो तो ।”

“मानता तो कहा जाता हूँ ।”

“कह का गृहस्थक अवस्थिति काष्ठ एक के छिपे स्थिति कर दा ।”

“कह हूँगा ।” जवाब में कुछ मोचकन कहा—“हम वास्तव एक दूसरे की बात मानते बने जाए हैं ।”

“हाँ पुबराज ।”

“तुम पर इस धिक् का जकट न करेगा ।”

“पुबराज—” बटार हुए हा गया देवदत्त ।

“क्यों क्यों ।”

“सिद्धार्थ महात्मा हो गया पुनराज !”

“आज ही प्रमाद-मग्न तुम घोर बात कहते थे। मारचर्य यज्ञान

ने कहा।

विचार-संचय हो रहा था मेरे मन में। स्वार्थ इमें पतित कर देने-
वाला क्या बड़ी शत्रु है। वह मर्य तक नहीं पहुँचने देता इमें।

पर, तुम्हें सिद्धार्थ के बिने यह उपवन सोच दना होगा। वह कदा-
बदि तुम्हें वहाँ नर्तकियों के साथ केहि-उम्मत देखेंगे तो वह मगध-
राज के बिने बड़े कर्कश की बात होगी।”

“अभी जोड़े देता हूँ उसे कद तो चुका हूँ। तुम भी प्रतिज्ञा
करो कि तुम उस भिक्षु के साथ न जाओगे।”

“कदा हम साथ-साथ उसके दर्शन करेंगे पुनराज, फिर कैसा तुम
क्योंगे, उमर्य साधन करूँगा मैं।”

पुनराज ने बैठ-बस का वृत्तोन्मेष स्पष्ट कर दिया। उस उस
नवागत भिक्षु और उसके शिष्यवर्ग के बिने छिट कर दिया उन्होंने।

महाराज ने पुनराज को धरेक घायीर्वाह दिए, और देवदत्त की
सापहवा की।

उस शिष्यों के साथ धाकर बैठ-बस में रहने लगे। बातों के एक
के-दूसरे उनकी शरण में धाकर शानि प्राप्त करने लगे।

राजपुत्र के उत्तरोत्तर घोर काकि-आमक हो जाहल-कुमारों ने एक
दिन मिठा मँगले हुए हुए क एक शिष्य को दना। उसके शान घोर
दिश्य रूप को देनकर से चक्रित हो गए। वे दाना उमक निबर
गए।

उपरीण न कहा—“ह भिक्षु, तुम्हारा दर्शन बड़ा परिश्रम-जनक
है। हम तुमसे कुछ पूछना चाहत हैं। तुम्हें विलम्ब तो न
होगा।

“विश्वं कैसा। काक-सेवा ही हमारा व्रत है।

‘कीम-सा पत्र है तुम्हारा ?’ काशिर ने पूछा ।

‘गुह कीम है ?’ अश्वीष्य बोला ।

‘मैं धर्मिताम बाधितत्व का शिष्य हूँ । मध्यम मार्ग ही मेरा पंथ है ।’

बेबु-बल में का महत्त्वा थाप है क्या वही बाधितत्व है ?’

‘हाँ ।

‘हमारा मन उनकी ओर खिंच गया है । क्या वह हमें हीरा देंगे ?’ काशिर बोला ।

‘क्यों नहीं ! वह इसीकिये तो वहाँ जाय है ।’

रामपूह में कुछ का प्रभाव दिव-दिन बढ़ता ही गया । अनेक लोग धर्मिताम धरना गृह-संसार छोड़ बीमार और भिखा-वात्र वाला कर उसके शिष्य हो गए । अनेक गृहस्थ भी उसके उपदेश ग्रहण कर धार्मिक जीवन बिताते लग गए थे ।

बड़े-बड़े और कुलीन घरों के भी-मुक्त-पाशित पुत्रक भोगमय जीवन का त्यागकर, गृह और जाप्याइयों का त्यागकर ब्रजा-निवारण-मात्र का बड़ा चारण कर कुछ की राह में चले गए । उन्होंने भिक्षा पर जीवित रहना स्वीकार किया वृद्धों के बीचे विश्वास का धम्मास किया । ब्रजानंद और अश्वीष्य जागकर लाल और लौट कर अपने बाल-शिशु पर से बिना ।

अन्होंने गृह परिवार की छोटी-सी परिधि को बड़ाकर उससे समस्त संसार को, विभिन्न मार्ग और जाति के मानव को, प्राणी मात्र को अपना मित्र बना लिया । वे सुवि-मात्र के संगम के किनारे, उदय के क्षिप्ते जागृत हो उठे ।

अन्होंने अपने ही धर्म में अपने शत्रु की प्रतिष्ठा की । वे अपने स्वार्थ को मूढ़ गए । धर्मवि की हित-कामना में वे लगे गए । वे पारंगत और ब्रजावर से दूर थे हृषी से एक-दूसरे का तेज अब सब

दीपकों को प्रशस्ति कर गया, और उस प्रशस्त में देश के भौत-ज्ञोत्त
मुन्नी-मुन्नी धनी-धनी, राजा राजा, गर-गरी अपना मार्ग
कोजने लगे।

मानसिक उन्नति मौखिक उन्नति से ज़ेद है। दुष्प्रचार्य मानसिक
उन्नति का सबसे बड़ा विधातक है। चार्य दाव देने में आमासी
हंस के पैरों की वैदिकी लुब जाती है, और वह अपने पों को
केजागा हुआ बाराबर आश्रय में शाव-की मुँह की ओर बगत
हुआ बहा जाता है।

आश्रय और चाँदाव की समता के बिने एक स्थान बना
अमितम ने धनी और निर्जन का सम्मन्ध किया बली और दु
को शांति ही। उय मय समता और शांति के हूत की अमृतबाध।
बहाव हर में प्रसारित हो उठी धर्मार्थ में।

“उय राजकुमार के मुन्नी-मोहक पर लो रूप और रंग सिखा हुआ
हमें देविका बहा हुई। धी-गुण का उत्तराधिकार सिर में
जगत्तर केह दिया हमने। माता-पिता का जल-भार मुका दिया
राम के मित्र-शत्रु की फिजा यों ही हमने। लाने के बिने सिमल
स्वादु भोजन शिष्यार्थ राजभवन और राजगुरु ने आहार्य कर
से बाने हैं, और हमने सर्वज्ञेय संश को गुद के उर की आहुति
बनाते हैं। वह बा कुय मय और शाव की विवेचना करता है
वह कोई भी बिने उँचे आश्रय पर बिदा होतो कर दगा।” अज्ञानाश्रु
ने हृद के प्रथम दर्शन कर कीटो हुए कहा।

देवदत्त बाबा—“राजगुरु करते थे, मिहार्थ ने जिस मार्ग को
मन्वसा प्रतिपत्त का नाम दिया है, वह कोई बरीब मार्ग नहीं है।
आवादा धीहृष्य की गीता में वह मार्ग मन्वसा माग के नाम
से प्रसिद्ध है, यही मन्वसा बोग के नाम से अभिहित है।”

“मेरे ऊपर तो भाई, कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा इस मित्र
 कम । वह माछणों और भीमानों का द्वेष जेबाता हुआ दहिकत
 जाता है मुझे । हमने तुम्हें और हरिद्विषों का साम्रस बहापा है ।
 इसने उसके प्रति समवेदना दिखाई है कि इसका दण्ड बने, और
 इसकी शक्ति का प्रसार हो ।

“यह-कर हमने कहा-कहा दिया है । इसने वैदिकता की वजह में
 कुठाराघात किया है । महाराज ने इसका ठिठकाना प्रत्यक्ष किया है, इससे
 काम चुप हैं नहीं तो कभी का धर्म-विद्रुह हो जाता । और इसे
 अपने शिष्यों-सहित ग्राह्य बचाकर साथ लाया जाता ।”

गौतम बुद्ध के शिष्य-वन में निवास के एक सप्ताह परभाव नहीं की
 चंद्ररेखा के मन में भी अचानक वैराग्य उदित हो गया । उसने
 अपनी समस्त बन्धु-संपत्ति हीन-बुद्धियों को विचरित कर दी, कामूषण-
 आशंकार बर्जित दिए, गृह और साम-सम्पत्ति हटा दी । भूमि और गृह
 बालिका भी बे दी । उसने अपना गुण-धर्म, कुंभित, केसरामि-विहीन
 अस्तक धर्मिताम के चरणों में विनत कर प्रणामा प्रत्यक्ष कर दी ।

उसी दिन सुबह का जवाहराज पर देवदत्त की वह रहस्यमयी प्रेम
 कथा प्रकट हुई जिसे बड़े कीलक से देवदत्त ने अब तक किया लुकाया था ।

देवदत्त ने चंद्ररेखा को मित्रहीन हो जाने से रोकने का बचाव-
 प्रयत्न किया । प्रत्येक प्रकार के भव प्रलोभन दिखाए, सब निष्फल
 हुए ।

देवदत्त ने जवाहराज से कहा माँगी—“तुमसे विदा लेने को
 आता है ।”

“कहाँ जाओगे ?”

“कहाँ चंद्ररेखा गई है ।”

“चंद्ररेखा इतनी मित्र थी तुम्हें, आज तक तुमने वह प्रकट नहीं
 किया था कभी ।”

“अच्छ प्रेम दिपकर ही रहता है। उसे दिपाने को कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता।”

“क्या सत्य ही तुम्हारे मन में संसार के प्रति निरक्ति हुई है?”

“नहीं, आसक्ति और भी बड़ी है। तुमसे अब कुछ न दिप सकता। जिसको साम-भवा, कृष्ण और नीलों के मध्य में प्यार किया है, उसे, अब मिराभराव, उस श्व ग्राह-विहीन को भी मैं प्यार करूँगा। बेबदल रहकर नहीं कर सकता, इसी से भिद्यु जाने का रहा हूँ।”

“इतनी बामना का भार लेकर क्या तुम गौतम का धामन कर्त्तव्य न कर दोगे?”

“मैं नहीं समझता, वह कर्त्तव्य होगा। तुम ऐसा कहकर मेरे मन का दुर्बल न करो। मेरे हृदय का प्रेम थोड़ा साकर प्रविष्टि में बहल गया है। तुम राखो नहीं मित्र। कदाचित् मैं रात्रपुष्ट के संगल के लिये पग बना रहा हूँ, देल नहीं रहे हो तुम कुछ ही दिनों में क्या हो गया। कोई वति कोई मित्र, कोई पुत्र के लिये बिना रहा है। और, इन सबका इमने, इस गौतम ने पीत भीतर में डल दिया है। इसी ने चंदरेका को बहकाया है। यह ऐंद्राक्षिक है अर्थात्। तुम न जाना कभी उसकी सक्ति में। केवल मुझे ही जाने दो। मैं उसके ईदबाध में अपनी इच्छा से चँसना चाहता हूँ।”

१६ जन्मभूमि में

उपवीप्य और काचित् वासिक भेद और कर्मकांड के अरण्य में
 लाए हुए थे । वे जब दोनों अमिताभ की शरण में गए,
 तो उन्हें बड़ा स्पष्ट मार्ग दिखाई दिया । बुद्ध के ज्ञान ने उन्हें
 बहीन जीवन दे दिया, और उन्होंने अपूर्वा मार्ग की सम्पूर्ण भाषणा
 और लोक-सेवा-मंत्र को अपने जीवन का अन्तर्गत बनाया ।

वे दोनों असाध्यरूप प्रतिभा-शेखर थे । बुद्ध के वतावु मार्ग में धीरे
 भी उनकी बौद्धिक वृद्धि हो गई, उपवीप्य का नाम सारिपुत्र और
 काचित् का भीमबालक प्रसिद्ध हुआ ।

वेबुद्ध ने बुद्ध के निकट जाकर कहा—“हे अमिताभ मैं भी
 तुम्हारी शरण हूँ ।”

“तुम्हें बहुत पहले का ज्ञान आदिय का मित्र । तुम आकर भी
 थके गए । फिर भी का कोई बिना की बात नहीं है । कर्म की शरण
 दिन-रात ही मुझ-क्याद रहती है । तुम्हारी कर्म में प्रति हो ।
 तुम्हें सब, कर्म और कर्म की सम्पत्ति प्राप्त हो ।”

वेबुद्ध वेत्त-वन में बुद्ध का प्रभाव देखकर विमोहित हो गया ।
 उसने उन्हें महात् प्रतापशक्ति की प्रीति देखकर सब में छोटा—
 “इसकी प्रभुता किस सत्ता से कम है ! वह दिन-दिन बढ़ती ही
 जा रही है । सत्ता बहुत जल्द मात्रा में प्रजा-प्रियता प्राप्त करता
 है । उन्हें सभी-निर्बल, सभी-निर्बल से जो समान भद्रा और सम्मान
 मिला है, वह अद्वितीय है । यदि इसके सिद्धों में प्रभावता मिल
 जाती तो वेबुद्ध इसके ही समान आर्वाचन में आनंद उठता ।”

कर्ममूर्ति में

देवदत्त अपने महान् प्रतिद्वंद्वी के निकट विनत हुआ। उसने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। कुछ ने उसे चार सार्वभौमों का बाप देकर कहा—“हे भोजि-मार्ग के पथिक ! अपने का पहचानो। तुम्हारे भीतर वह चिन्तागरी समिद्धि है जो साक्षात्पुत्री प्रतापों में सुलग सकती है उसमें तुम्हारा समस्त दुःख-शोक भस्मीभूत हो जाएगा।

देवदत्त के मन में चन्द्रेखा की स्मृति उमर उठी। वह उसी आश्रम में बुर पुत्र कुटी बनाकर मन को निर्दमिष्ठ कर रही थी। देवदत्त ने उस घोर दृष्टि की।

कुछ ने उस प्राचीन प्रतिद्वंद्वी और नवीन शिष्य की संबन्धता को मने प्रहार कर दिया।

देवदत्त मन में माचने लगा—“यह वह चारंगना मन्मथ रत्नताम्री होकर सब का लोहने आई है। समस्त पेरबर्ष और भोगों वा वह दुक्ताकर लो आई है। मैं भी सब की शोक कहूँगा। मैं भी पागल के भीलों को तिराकजि रहूँगा।”

भगवान् बोधियन्त्र कह रहे थे—“शरीर हमारी इन्द्रियों में मन्मे बहुर और शक्तिशाली है। यह यही मरकता से हमारे मन को बहका रही है। सबसे बड़से दृष्टि की मन्मथता साधनी होगी। जो एव दिखाई दे रहा है यह सब भ्रम है पथिक हे दाया है। यही कल्पना मन में रह करनी होगी। अभी कुछ दिन तुम निजी बृत्त के नीचे आसन लगाकर इसी विचार में निराम करो। परप की मन्मथता तुम्हें बार बार अपनी घोर लीचेगी। साधनान रहना उस समय, वह बड़ी मार है।”

देवदत्त एक कुटी बनाकर दृष्टि-दृष्टि करने लगा। उसकी कुटी, देव-मयोग हा वा देवदत्त की अभिरूपा मिथुनी चन्द्रेखा की कुटी के निकट ही बनी। दोनों एक दूसरे का दृष्ट सन्ने थे।

देवदत्त को बह-बिखर सी दृष्टि-शोषण की भाशा थी, पर चंदरेका दिव-भर एक वृक्ष के नीचे व्याप्त-मग्न दिखाई देती थी। उसे किसी मित्र के संपर्क में जाने और संभावना करने का कठिन निषेध था।

देवदत्त ने उसे दूर से निहारता, उसे एक अनुसृत कति से भरा देखा, वह मन में सोचने लगा—“देवदत्त एक जाया है।”

मार उसके सामने जाकर पराजित हो गया उस पहले दिन।

कुछरे दिन देवदत्त चंदरेका के अमृत व्याप्त को देखकर चकित हो गया। आँखों की पलकें माचो मीठर से न बहावद कर ही गई थी। देवदत्त चंदरेका की व्याप्तमयिमा को हूँदने में इच्छित हो गया। पर उसके मन-संपन्न को देखकर चकित हो गया।

सकल मिश्री-मन्त्र में देवदत्त ने निषेध के प्राचीर का उत्कर्षण किया—“उस वृक्ष को दिखाई दे रहा है, एक जाया-मात्र है।” उसने अपने मन में कहा। वह चंदरेका की कुटी के द्वार पर गया।

“चंदरेका ! चंदरेका !” उसने धीरे धीरे द्वार पर जाकर पुकारा।

‘कौन ?’

‘मैं हूँ देवदत्त !’

चंदरेका देवदत्त की उस वैद्य-वश की अवस्थिति को नहीं जानती थी बोली—“देवदत्त, मैं तुम्हारा जगत् तुम्हारे बिसे ही छोड़ आई हूँ। फिर तुम क्यों आए हो मुझे बाधा पहुँचाने ?”

“यह मित्र देवदत्त है। अमिताभ बोधिसत्व के निष्ठ प्रसंगा के बिसे करिबह।”

“तब तो नई बिखर की बात है। तुम बोधिसत्व का अनुशासन भंग कर क्या उसके प्रति अविरास नहीं बहा रहे हो ? क्या तुम्हें

जात नहीं, किसी भिक्षु का किसी भी दण में इस कुटीर पर आने की आज्ञा नहीं है ।'

“है ।”

“फिर ?”

‘किसी इन्द्रिय-सुख की अमरता में नहीं आया हूँ मैं चंद्ररेखा !
कुछ पढ़ना चाहता हूँ तुमसे ।’

“नहीं और बाधो । मैं तुम्हारे किसी प्रश्न का उत्तर न दूंगी ।
यदि तुमने इस की, तो मैं अभी ठह मर से पुकार-पुकारकर समस्त
आश्रमवासियों को जगा देती हूँ ।

“चंद्ररेखा !” बड़े दृढ़नीय स्वर में क्या देवदत्त ने ।

“कप चुन लो । हमारा शब्द नहीं । नारी को अपने बाग़ाब
घोर फूटे बचनों से पक्ष-शब्द करनेवाले ! तुम्हारी शरण में आकर
भी क्यों नहीं मर कर रह जाती !

अचानक देवदत्त ने अपनी कुटी की ओर किसी की पुकार
सुनी — “देवदत्त !”

बद सीधका बड़ी पहुँच गया । देखा सामने कुछ लड़े होकर उसे
पुकार रहे हैं — “देवदत्त ! तुम क्यों चले गए थे ?”

“कुछ भिक्षु बाहर दर के लाया-दर्शन का गुच्छे । मुझे
बचने-छिलने की आज्ञा दी गई है ।”

अभिनाम होते — दूरी और नैऋत्य इन दिशा को भी प्रम हो
समझना होगा ।”

‘यही समझना गुच्छे !’

अचानक बाहर फिर कभी देखा भी नहीं देवदत्त ने चंद्ररेखा की
दिशा में । आदिन बाहर वह अपने मंदिर में रह हुआ । और
एक दिन कुछ के भिक्षु बाहर उसने निवेदन किया — ‘मैंने
दण्ड की सम्पत्ति प्राप्त की है ।’

“मैंने पार्श्विक जगत् का मोह खोख दिया। मैं हल हाथ-माथ के सिंघरे की भी पिठा न करूँगी।” निर्मल होकर चंजरेला बोली।

“सत्य है यह ?”

“हाँ, हाँ।”

‘एकजी बात है।’ कहकर देवदत्त वेष्टु-वन का खोख नगर को चला।

मार्ग में जब वह एक अज्ञातिका से होकर जा रहा था तो एक महिला ने उसे देखकर कहा—“आज क-जाने किस गृह का अरर विरसि आवेगी। कौन जगद-पिता पुत्र-हीन होंगे। किस पत्नी का पति उससे दिय जावया, किस पुत्र का पिता उसे खोखकर उसी अनाथ और निराश्रय बना जायगा।”

देवदत्त ने कहकर कहा—“कर्म लच्छा मा ! तुम्हें भीति हुई है। मुझे जीवतचारी धमककर ही तुम ऐसा कह रही हो। मैं जिधु नहीं हूँ। इन बौद्ध जिधुओं का सर्वबाध मूर्ख होकर मुझमें प्रकट है। मैं इसकी समाप्ति पर ही अब विश्वास रूँवा। जब राजगृह की मन्ना में से कोई भी हम पीले अर्पण में न बलयेगा।”

देवदत्त नये सिर-पौर प्रायः विरसत राजगृह के मार्गों में दौबने लगा। वह बिहावा का रहा जल—‘तुम और उसके साथ का शांतिर्षी है रहा जल—“है राजगृह के निवासी धनी और निर्बन्धे। क्या हो गया तुम्हें ? तुम सचेत होओ। यह जो अपने की सचदर्शी कह रहा है, वह तुम्हारे गृह के पुत्र को राहु बनकर ग्रसने जाता है। वह तुम्हारे विचार, कर्म, परंपरा, संस्कृति, सम्पदा सबको काहित कर रहा है। इसने तुम्हारा रहन-सहन पूजा-पद्धति देवी-देवता बाल-संबंध, सबको नष्ट कर दिया है। इससे सावधान होओ। वह 'देहों' को नहीं मानता, इसने मगवान् का अस्तित्व मिटाया है, हमने शुद्धबाह का प्रचार किया है। यह पिठा से पुत्रों को जिधुवा कर

अनाथों का बड़ा रहा है। यह पतिव्रतों को पतिव्रता से झीनकर बुराचार बड़ा रहा है। यह तुम्हारे गृहों के द्वार सदा के द्विये बंद कर राजनगरी का शमशान बना देगा। इससे बचो, इससे बचा। इसका बैराग्य बुराग्रह इसकी उपस्था बार्कड, इसका चर्म अनाचार और इसका मंत्र बेवचारी लस्करों का दूक है।”

अनेक जागों ने देवदत्त का लक झुनकर उसकी हँ में हँ मिछाई। उसे सराहा। देवदत्त ने दूने अस्ताह से बाधित्व और उनके मंत्र के विरुद्ध विच-बमन किया।

सारी राजधानी में बुद्ध के विरुद्ध में प्रचार कर देवदत्त मुबराज अजातशत्रु के पास गया। अजातशत्रु अपने मित्र का प्रभावशालि पाकर बहुत प्रसन्न हुआ, और बुद्ध के विरुद्ध जन्मत का पहरा कर देने के लिये उन्होंने भीर भी विरुद्ध संघर्ष प्रयत्न किए।

भीम ही इसका कष्ट प्रकट हुआ। सायुध और मौरगहावन की प्रथमा के परचाह फिर राजगृह का कोई भी मनुष्य बुद्ध की शरण में नहीं गया।

अधिराज में ही शिष्यों ने बाकर बोधित्व से कहा—‘गुरुदेव। शिषु देवदत्त ने समस्त राजनगर में हमारे विरुद्ध दूता की प्रचारक धर्म फैलाई है। अस्ता हमारे सामने हमें गांधिवाँ नेत्री है हम पर बंधर बरमाता है, और हमारे ऊपर घृष्टी है।”

बड़े शक्ति भाव से बुद्ध ने कहा—‘यह तो कुछ भी कितना की बात नहीं है। तुम मध्यम मार्ग के पथिक हो। तुम्हारे लिये मान और धनमान राजा समान हैं। प्रजा की दुःखा का केवलम बलु समयो। उनके कष्ट भाव से तिर्काण भी उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं है। उनकी हिंसा का उदात्त का राजा गिण्य सदा अहिंसा से जीतता है। बीच-आध के प्रति मित्र और लघु होमो के प्रति तुम्हारी प्रेम-भावना मनुष्य जागरूक रहनी चाहिए।

जिस दिन तुम सुम्ह-मात्र में अपनाई की इच्छा प्रतिक्रियित पा कोसे, पच दिन देवता ये सब बादल गरम काँची और तबानत का जर्म रूप की तेजस्विता से चमकता पर चमकने लगेगा। बुद्धाचारियों से प्रेम करो गांधियों का उत्तर आशीर्वाद ले ला, भस्मान का बदला मान स बुद्धाचार, और शत्रु में मित्र के वर्तन करा तभी तुम आर्य भोगों की सम्पत्ति प्राप्त करोगे। तभी तुम मार्ग के अन्ध में प्रतिक्रियित हो सकोगे।'

महाराज सुखोदन न आर्य देश और राज्य बंट से एक-एक वर्ष में एक-एक युग का अनुभव कर ६ वर्ष विवाद—अपने पञ्चमात्र पुत्र के खौद आने के विचार और धारा में। उन्होंने सिद्धार्थ की ज्ञान-प्राप्ति का समाचार सुना। वह उनके शीघ्र ही खौद आने की प्रतीक्षा करन लगे निश्च ही।

प्रानाद की माधीर और लक्ष्मणों पर पड़ी बोलते वह पुत्र के खौद आने का संभाव्य सुकते। उनका इच्छित भोग चककता, वह उसे सिद्धार्थ-मिशन का दुःख शकुन समझते। वे पत्नी के वर्ष इतनी कठिना से नहीं रोष हुए, बितनी बेहसा से ये वर्तमान के दिन जस्त हो रहे थे।

प्रतीक्षा महातीव्र हो उठी। उन्होंने सिद्धार्थ के निष्कट वृत्त मेरुकर उन्हें घर और उनकी कीर्ति प्रतिष्ठा की स्मृति कराई। वृत्त दुःख के उपदेशामृत का पाषाण का उन्होंने में रस गवा। नहीं खौदा करा और विभोग से जीव महाराज सुखोदन के पास।

एक के अर्धतर इमरा, कई संभावनाएँ मेरु दिए उन्होंने। कोई भी न खौद। वे सबके-सब काफ़र दुःख के शिष्य हो गए। उन्हें बाह्य और बाह्य के संबंधों के प्रति विराग हो गया। अंत में महा-राज स्वयं ही जाने की कतार हो गए। बुद्ध ने उनकी प्रवर्तना के कारण उन्हें विरम याज्ञा करने से रोक दिया। अपने महाराज की आरवा-

सल दिया। वह स्वर्ण सिंहार्य के पास महाराज का संदेश ले जाने के लिये कटिबद्ध हुआ। पंख निरत सिमि पर राजगृह की ओर जाने के हेतु दिया प्रदत्त की।

राजगृह पहुँचकर पंख ने गुरु का कपिलबस्तु चखने के लिये बयन किया। दो मास राजगृह में बिठाकर तपागत कपिलबस्तु को चखे। मार्ग में मरुत-देश में अवस्थान किया कुछ समय। वहाँ जनेक राजा और प्रजा-वर्ग के जागों ने गुरु के उपदेशों का अनुसरण किया।

श्री महीने में अमिताभ कपिलबस्तु पहुँचे अगच्छित शिष्य-समूह के साथ। दुर्ग के बाहर ही ज्योतिष-वन-नामक एक आश्रम में उदरे।

नगर में हम समाचार के पहुँचते ही दूरियों का प्रवाह उमड़ गया। महाराज सुदोहन भी धार्मिक-विद्वज्ज हाकर पुत्र की भेंट को चले।

पुत्र को मित्र के बेटे में दृष्टकर सुदोहन की धर्मों से अनुपारा वह चली। जब उन्होंने अस्मत् शिष्य और मर्त्य को उनकी सम्पूर्णता में देखा, तो पुत्रचित हो गये। उन्होंने कहा—“हे पुत्र! तुम्हें नगर से दूरी दूर उदरे की स्वा आश्रमकता हुई। क्या शास्त्रों का राजा तुम्हारे और हम शिष्य-समुदाय का धार्मिक नहीं कर सकता राज्यात्मा में?”

“हे महाराज! तपागत किमी का पुत्र नहीं है। वह धम्ममा ह और हमी से सन्धु के वंश से भी गुरु है। वह तपागतों की ही वंश-परंपरा का है। संन का नगरी से बाहर पर्वत में रहने का ही नियम है।”

कुपरे दिन अमिताभ नगर में बिठा भाँगे हुए राजमवन में पहुँच। राजमवन की एक-एक वस्तु को देखकर वह गर्गाद हो बह। बस धीरे-धीरे दुर्ग में जो आया बंदी कर ही गई थी, धात्र वह

समस्त आर्वावर्त में व्याप्त होकर उसके बाहर भी फैलने लगी थी।

बुद्ध महाराज बुद्धोदन और प्रजापती के भिन्न हुए। बरगोषरा को दासी ने यह शुभ समाचार दिया—“बुधराजी, जिनके चित्त में तुम इतने दिनों से बेठी हो वह था पहुँचे हैं।”

बरगोषरा अनाब् और निरचेष्ट रह गई! मन में सोचने लगी—
“वह था पहुँचे हैं। मातु वर्ष के परचाह न्या मेरे देवता से मरी जोर कदवा की छवि की है।” उन्हे मन में उत्पन्न हुआ का उन्नत हुआ कि जाकर अपने आँसुओं से उनके चरणों को धो दूँ। वह कुछ समयकर रुक गई।

‘अपिबन्धु के बुधराज बीते देर, मुक्ति मस्तक नगर में मित्रा माँगते हुए वहाँ आए हैं। समस्त प्रजा उनको दृष्टकर चुम्ब्य हो उठी है। सभी अपने-अपने काम छोड़कर उनके दर्शन करने आए हैं। केवल एक तुम्हीं प्रतिमा की प्रतिमा बचका हो उठी हो।

‘हो सकता है।’ बरगोषरा ने बड़े उदासीन भाव से उत्तर दिया।
‘आश्चर्य है।’

‘आश्चर्य कीन-सा है इसमें दासी। मैंने अहर्निश एक भाव से बुधराज का चित्त किया है। तुम्हें उनके पास जाने की आवश्यकता क्या है? यदि मेरे प्रेम में लक्ष्मी होमी, तो वह स्वयं ही मेरे पास आये।’

दासी ने मुक्त कंठ से बरगोषरा के प्रेम की सराहना की।

महाराज बुद्धोदन और महारानी प्रजापती बुधराज को मित्रा माँगते हुए देव शोक से विह्वल हो गए। उन्होंने कहा—“प्रिय पुत्र, तुम उलझ-संमूत हो। तुम्हें द्वार द्वार मित्रा माँगते दृष्टकर हमें मर्मांतक पीड़ा पहुँचती है। तुम्हें मित्रा की क्या आवश्यकता है। यह शास्त्रों का राजा संव-सहित तुम्हारे आश्रित्य में समर्थ है।”

“उपास्य विनय कंठवर है वे सब मित्राज से ही पोषित हुए हैं।

फिर लयागत एक ही जगत् और एक ही मनुष्य के वहाँ स्थिर नहीं हो सकता। ग्राम-ग्राम जगत्-जगत् और दूर-दूर में सत्य के प्रकाश का बिखारित करना ही उसके काम कर्तव्य है। अतिसिद्ध विरह ही मेरी राजधानी है मैं अविच्छिन्न में कुछ पाने के लिये नहीं देने का प्राण हूँ। हे पिता ! मैंने विरजना के संगम पर अमृत्यु रक्त प्राप्त किए हैं। मोक्षार्थक संबंध सुखस्त दृष्टता है कि मैं उन सभी को पिता के चरणों में भी रखूँ।”

महाराज विदगर रह गए।

अमिताभ बोले—‘आग्रह हाथा पिता अविच्छिन्न ही पवित्र जीवन के ज्ञान का प्रपञ्च कीर्ति। कबल एकमात्र धर्म ही मनुष्य के हृदय का और राजा के दोना लोक में निर्मल सुख का निर्माण करता है। धर्म ही शांतिदाता है। धर्म जीवन ज्ञान कीर्ति पाप का अनुप्राण मनुष्य है।

अमिताभ ने अपने नवीन धर्म की व्याख्या करनी आरम्भ की, राजसभ्य के हुए मित्र राजकर्मचारी, दाम-दायी सब आकर उनके वचनों का सुनने लगे।

पराधन नहीं आई, केवल पराधन ही नहीं आई। जन गुरु प्ररोध में कुरु के रघुनी में आरुण्य का चरणों का मुझे हुए जपीर हो रही थी—‘क्या वह छोड़ गए ? वहाँ दूर हो गई ? न प्राणी ? भल गए इस सैविका का ? नहीं, ऐसा हो नहीं सकता वह अथर्व ही आरोग्य। अब न जाने कौन मैं उन्हें ? अथर्व दुःख रोग पाश में प्रविष्ट कर लूँगी उन्हें। अब इस बार मैं उनका पद का शके हूँ जो अम्मी नींद विमर्शित कर।’

उपदेश के अंत में अमिताभ ने चारों ओर देखा : एक दिन जिस माना हुआ दाढ़कर वह सत्य के साक्षात्कार के लिये चले गए थे, वैसे ही वे चले गए, वही मित्री।

अमिताभ ने हँसकर सारिपुत्र और मीनहायन से कहा—“अभी एक से मित्रा और मीनगी है मुझे इस राजमन्त्र में, चमा की मित्रा।”

दोनों मित्रों ने चकित होकर आचार्य को निहारा।

‘हाँ चलो मेरे साथ। पर वहाँ यदि कोई भी मेरा स्पर्श करने को बड़े, तो तुम संघ के नियम की रक्षा करने के लिये, उसके मान-सिद्धि आदेशों में बाधा न पहुँचाना।’

बड़ी भीर और प्रगल्भ गति से अमिताभ यशोधरा के प्रकोष्ठ की ओर चले। मार्ग में कबल अपने हाथों प्रधान शिष्यों को ही दिखा देते।

मार्ग में कुछ बोले—‘यशोधरा के मौखिक शरीर को बंदी बनाने-वाले वे प्राचीन तुमने देखे। आज उबरकर अभिकर्ण नृसिंहाय है, फिर भी उत्तमि गन्धवा की जा सकती है। अब मैं तुम्हें वह बंधन विलासित जिसने मेरे विद्या-शरीर को बेर रक्खा था अप्रतिष्ठ प्रथियों में।’

उन्होंने यशोधरा के प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ, मार्गो वह राजमन्त्र में नहीं, किसी जादू की कुटी में प्रवेश कर रहे हैं। मात्र-मन्त्रा का मित्रा अभाव था, भूमि पर राज्या के लिये लुप्त-कुल, बल पीरे के लिये एक शक्तिशाली पात्र, यही वस्तु कल के उप-करण थे। इनके बीच में एक-दुसरे-विहीन अचल-चल-युक्त ज्ञान की भाँति यशोधरा के प्राण, पति के नाम की माया से बरा पर टिके हुए थे।

पति के जाने पर न-जाने क्या-क्या करने के लिये उस वरिष्ठा से सोच रक्खा था, पर उन्हें देखते ही उसके मुख में न कला बर पाई। वह अचल हो गया। बहुत दिनों के बने हुए अल-मन्त्रा की भाँति सहसा उसका शरीर टूट गया। उसकी समस्त मान-राशि केवल नेत्रों के ही मार्ग से बहने लगी।

बलि को देखते ही पशोबरा उनके चारों पर गिर पड़ी ! अचिरज
पशुपारा का कार्य देने लगी । मन में विचार रही थी शरीर के
शेष रक्त को चाँसुओं में बदलकर ही शांति प्राप्त करेंगी ।

उसे रोने दिया अमिताभ ने कुछ देर । फिर बोले— 'बरापरे !
मैं मिषा-पारा लेकर जाता हूँ तुम्हारे द्वार पर ।'

पशोबरा ने काँटें उतार नहीं दिया, रोती ही रही ।

"केवल तुम्हारा ही अराधन किया है मैंने । मिषा मैं तुम्हारी
जमा चाहिए मुझे । क्या, तुमने मुझे जमा किया ।"

"चारों के किसी स्वरुद्धार में मुझे अराधन की जाया नहीं दिनाई
थी ।" पशोबरा ने अन्ध धोले । उसी समय उसे प्रतीत हुआ माना
जिबके चारों को वह जम्मास्तव कर रही थी, न जाने क्यों है ।
बसकर समस्त धीर मोह दिव्य-मिष हो गया । वह समझने लगी
समस्त विरव-संसार का वह पर अधिधर है । कष्टक व्ययन तुष्क
रुचार्थ में उन्हें बंदी बना लेना सर्वथा अशामनीय है । बरापरा
उनके चारों को छोड़कर दूर दूर गई !

"अस्वाधी ! तुम पश्य हो । मुझे त्रिभु सत्य का काम हुआ है,
तुम अबकी अधिकारिणी हो । समय आने पर वह तुम्हें प्राप्त होगा ।
कहकर कुछ दिनों के भाव निष्ठात हुए और अस्वाध-वय के दिव्य
विदा हो गए ।

महाराज सुहोदर ने उन्हें विदा करने हुए देखा और ममका,
मिहार्थ ने एक महीन और विराह लाज्जाम का मुकुट बाधा है पर
अविहवस्तु के बाटे-से मिहामन पर नहीं रह सकने । उन्होंने अपने
हमारे पुत्र नंद की शास्त्री के राज्य का अधिकार बनाया निरिचन
किया ।

राजकुमार सुहृद ने हीरने हुए बरापरा के कक्ष में प्रवेश किया
और भावा की गौर में फिर बिराकर रोने लगा ।

“राहुज ! क्या हो गया तुम्हें ?”

“महारानी कष्टी हैं, वह जो मिहारी अभी राजमहल में आया था, मेरे पिता हैं।”

“हाँ वह सच है !”

“मैं एक राजकुमार, मेरे पिता मिहू ! तुम भी इसे सच कह रही हो । मैं समझ था महारानी ने मुझसे परिहास किया ।”

“तुम्हें साधारण मिहू व समझा । सुवर्णी हैं, वह कहाँ जाते हैं जाना उनकी पग-भूमि लेने के लिये उसका पत्र है ।”

“मेरे लिये क्या आए हैं वह ? तुम इतने दिनों से कष्टी बनी आ रही थीं कि अर्धत आमुक्त मिहू जायेंगे वह मेरे लिये !”

“मूख बपू होंगे ।”

“वही महाराज ने मुझे उनके समीप रखकर कहा था, वह तुम्हारा पुत्र राहुज है ।

“क्या कहा उन्होंने फिर ?”

कुछ भी नहीं । मुझे डरकर कुछ बचक लिये मोह हैं भी नहीं किया उन्होंने । कुछ बोले भी नहीं मुझसे ।”

अभी वह फिर राजमहल में आयेगी सीमा ही । तब तक तुम्हें चैत रसना उचित है राजकुमार । अब तुम बड़े हो गए हो । सात वर्ष के ।”

महाराज सुशोभन ने राजकुमार बंदू के सम्बन्धित के पूर्व उनका विवाह कर देना निर्दिष्ट किया । एक सुगुन-संपन्न राजकुमारी के साथ उनका पाश्चिमवर्ध विवाह किया गया । ज्योतिषियों ने विफलता सम्मूर्ति कर विवाह की तिथि निर्दिष्ट की ।

विवाह का दिन आ पहुँचा । संव-सहित विमोचित हाकर अमिताभ भी राजमहल में पधारे । वह अपने भाई बंदू से मिलने के लिये गए ।

नंद विवाह और राजतिथि की प्रसन्नता में विमग्न था। अमिताभ की बेतक सिर उठा।

“नंद !” अमिताभ ने कहा। उसके स्वर में जाया गयी थी।

नंद बहुत देर तक सोचता था और परिष्कारों में सुगमिष्ठ हो रहा था। सुदरी दामिनी नामा प्रकार से हमका न गार कर रही थी। दामिनी के बीच स अलग होकर नंद शायद जाकर उसके सामने जा रहा हो गया—“अमिताभ की बात है।”

अमिताभ ने विह्वल होकर कहा—“सब जाया है नंद ! भीति संसारों से हम जिस मुक्त की रचना करते हैं, वह कदाएँ एक कल्पना है, एक भ्रम है। इस लक्ष्य पर हम विचार करते हुए अनेक बार पहुँचे थे।”

नंद ने अचानक आकृष्ट होकर अपने चारों ओर देखा।

अमिताभ कह रहे थे—“हमारे लक्ष्य की ओर सुविमुक्त न थी। इसी लक्ष्य हमारी आँखों से आच्छादित था। मैंने उस लक्ष्य की प्राप्ति किया है नंद। मैं उसे दूँगा तुम्हें नंद ! तुम उसे ग्रहण करो।”

हीन दशावस्था होकर नंद ने कहा—“क्यों नहीं ?”

“असंभव होकर नहीं नंद।”

असंभव होकर ही नंद ने सम्मति व्यक्त की।

“बहुत उचित। तुमसे ऐसी ही आशा थी। ओ, मेरा वह मित्र-पात्र है।”

नंद ने वह मित्र-पात्र धारण हाथ में ले लिया।

“मैं जानता हूँ, मूर्खता के पड़ने मेरा वह मित्र-पात्र मुझे लौटा देगा।” तत्काल लखित पत्र से निष्कर्ष हो गए।

नंद विचारों के मग्न मन में सो गया। राजमन्त्र में हमका विवाह के गीत-बाज अरुणी चरम सीमा पर था।

भंद अपने बिचारों में झुबकी छगाकर बतराया । उसमे आकाश में सूर्य की स्थिति देखी । दासिबाई हाथ बाँधे हुए लकी थी । भंद ने धर्मिताम कहीं है यह देखने के लिये एक दासी को मेजा पीर होय को बिदा कर दिया ।

सारथी ने प्रवेश कर साहब भिवेदन किया—“वरमात्रा के लिये एक प्रस्ताव है राजकुमार । सबको धांपकी ही प्रतीक्षा है ।”

“बबो, मैं अभी आता हूँ ।”

दासी ने ज़ोरकर भिवेदन किया—“उपायस्त कहीं भी नहीं है राजभवन में । वह अपने आक्रम को खीट गए ।”

“अपड़ी बात है । बाबो तुम ।”

“दासी बबो गई ।”

एक सेवक ने फिर प्रवेश कर कहा—“राजकुमार, बिखंब न करो, कहीं खय न दख जाए ।

“आता हूँ बबो ।”

सेवक कहा गया । एक जोर वरमात्रा किए हुए राजकुमारी थी, दूसरी जोर उचागत की बरोहर—बह रिख मिचा-बाब ! भंद ने सूर्य की अवस्थिति देखकर कहा मन में—“बिखंब नहीं हुआ है ।” वह कच से बहिर्गत हो गया ।

मिचा-बाब ने बिखंब बाई । कसे हाथ में किए हुए वह न्यमो-बाशम के पय पर अकता गया । मार्ग में अपने अलंकार लोह काखकर बिसर्जित करण हुआ कहा गया वह । बहुमूल्य वस्त्र भी लोहकर फेंकता गया । सूर्यास्त से बहुत पहले ही जाकर पहुँच गया भंद वाकिलख के निकट ।

धर्मिताम ने जमन मुत्रा के कहा—“आ गए भंद तुम ।”

“हाँ देव ।”

देखे ही आया बकिर बा तुम्हें । देखता हूँ तुमसे सभी बंबन

काह जाते हैं ।”

मंद ने मिठा-याह बाहिसल की ओर बढ़ाया । बोधिमन्त्र बोले — “इसे मँगाकर नहीं रल सकते ?”

“रल सकता हूँ ।

“आजम्भ महाचर्च पूर्वक ।”

“अमिताभ का धारीर्वाह हो, ही आजम्भ महाचर्च-मूक ही ।”

“सब के द्वार तुम्हारे द्विजे उगुट हों तुम्हें धर्म की शरण प्राप्त हा । मैं तुम्हें इस रिह मिठा-याह को उम चार रणों से भर दूंगा, त्रिनका मेरे पाया है ।”

मंद बोद्ध धर्म में दीपित हो गया ।

राजमन्त्र में सहमा घर के धर्तर्वाह हो जाने से बड़ी लज्जबड़ी सब गई । उनको हँसने के लिये राजमन्त्र धीर राजवाही का कोना-कोना जाना जाने लगा ।

संभा समय महापत्र को राजकुमार मंद के संव प्रवेश का समाचार मिठा । वह उन्हें धमका हा गया । जिस दुमरे पुत्र का वह अपनी हठावरथा का धर्तर्वाह समझ रहे थे । हैर ने उसे भी उमधि दूर कर दिया । पर वहीं पर बाहर दुहाहन का दुल्ल रोह नहीं हुआ ।

शीघ्र ही एक दिन फिर अमिताभ ने राजमन्त्र में धर्तर्वाह किया ।

मिठा प्रहल कर सब तपागत व्यग्रोध सब को बिदा होने लगे, उस राहुक ने धरोधरा के पास जाकर कहा—“मा वह तो मेरे द्विजे कुप भी नहीं जाए है ।”

“तुमने पाचना की ?”

“नहीं ।”

“तो जानो, कही उनसे मैं दुष्टता पुत्र राहुक हूँ मुझे मेरी बेनूक मंसि हो ।”

राहुब रौकता हुआ चला गया। मार्ग में चलता भीतर पल्ल
बिना उसके।

‘कौन ?’ अभिषेक ने चला देखा।

‘पिता, मैं हूँ धारण पुत्र राहुब।’

“राहुब तुम बल्लभुत हो वहीं तुम्हारा पिता वहीं प्राचीनों के
सपत्न में बड़ी था। क्या चाहते हो ?”

“पिता, तुम्हें मेरी पैतृक संपत्ति हो।”

‘पैतृक संपत्ति ? तुम जमी बाहर हो घर को छोड़ जाओ,
अकेले हो।’

‘वहीं, तुम्हें कोई घर वहीं। मैं उसे लेकर ही जाऊँगा।’

‘तब कहते चलो मेरे साथ।’

इस दूर और जाने पर राहुब ने फिर मुड़ की पंखड़ी
पकड़ ली।

‘क्या है राहुब ?’

‘मेरी पैतृक संपत्ति ?’

‘तुम राजमहल से बहुत दूर था गए हो। क्या उसके निवासियों
का प्रेम और उनकी सेवा इस पर्यंत अनुसरण से रोकती नहीं
होगी ?’

‘नहीं।’

‘तब चलो चलो राहुब मेरे साथ। अब राजमहल में भी है और
निर्मलता अब में भी। मैं तुम्हें तुम्हारी पैतृक संपत्ति से संतुष्ट न
करूँगा।’

राहुब फिर उनके पीछे-पीछे चलने लगा वेद के सुमधुर स्वर-
बाज में मार्गों रस्ता और बिना हुआ धूप-झीमे की मति।

कुछ दूर और चलने पर लगातार बोले—“तुम्हें राजमहल का
निवास छोड़ देना पड़ेगा फिर।

"मैं झोंक दूँगा : भाप ही के साथ दूँगा :

"सच्ची बात है राहुल ! तुम्हारे पिता के पास संरक्षि तो है, पर वह तुम्हें इस्त्रिय-सुख नहीं द सकती ।"

राहुल चिन्तामग्न होकर पथ में खड़ा हो गया ।

अमिताभ बोले—"हमारे घरर का सुख दूँगी । शायद और चिरमवीन सुख : जिस सुख पर बड़ा चिन्ता और दृष्टु की जाया नहीं पड़ती है । तुम्हें वह रात्रिये उतार दया दूँगा ।"

"मैं इसे भी उतार दूँगा ।"

दामो आनन्द में बहूँच गए ।

अमिताभ ने सारी पुत्र से कहा—"हे मित्र-भेद ! यह हमारे संघ का अक्षरपा न सबसे बड़ा मित्र होगा ! इसका बचन काटकर हम संघ में प्रविष्ट कर दो ।"

राहुल बीह्वर्धन में दीक्षित हो गया । वह समाचार जब राजमन्त्र में पहुँचा, तो वहीं हाहाकार मच गया । आरा और आघार क शेष दीपक का भी इस प्रकार दिग्विधे देवद्वर महाराज शोक से प्रायः अक्षत हो गए ।

शोकानुर महाराज अभी मन्त्र संघ में जा पहुँचे । वहाँ राहुल को कहा करिष्मद और अर्जुन-विहीन मित्र के देश में दूधकर वह हाव मार-मारकर रहन करने लगे । उन्होंने उसे मार में बिना और दूया—"बन् ! तुम्हारा वह देश किसने दिया ?"

"मैं पिता की संरक्षि का अधिकारी हुआ हूँ ।"

"कौन कहता है वह पिता की संरक्षि है ?"

"माता ने कहा ।"

महाराज राहुल का लज्ज अमिताभ के निम्न जाकर बोले—
"तुम क्या पिता की मन्त्र आराधों का रूप कर दोगे हम प्रकार ! सभी गृह क दीपक बुझा दोगे ? मन्त्र राजाधिकारियों

को मिहारी बगलकर बहा लटक और आठताइसों का बख मग पागे ।”

“स्वार्थ की मेरबा से ही आप ऐसा कह रहे हैं ।”

“तुम मेरे राजमसन को सुना कर बख दिह, मैंने किसी प्रकार बस बखपाव का सहन कर लिया । तुमने नंद को मिथु बगल हमसे बिछा दिया उस महान् दुख का भी हमने पुण्य के समान सह-भाँखों पर ले लिया और आज आज तुमने इस अशोक और अज्ञान बाजक को हमारी शोद में से खीन दिया ।”

“मृगु भी तो अपने प्रकार से किसी को किसी समझ खीन ले जाती है । किन्तु नंद और राजकुल हम दोनों को मैंने अमृत-राज्य के द्वार पर ले आकर रक्का है । जिस प्रकार आपने मेरा शोक मुखाभा है, वैसी ही आपने हबका दुख करना उचित नहीं । ये स्वयं पाप और पाप के बाध से मुक्त होनी और अगतिष्ठ मनुष्यों का मुक्त-पथ बिस्तीर्ण करने ।” अमिताभ बोले ।

“वहीं, मैं अर्पण करूँगा । तुम तो रिता हो चुके हो । ऐसे अशोक और अज्ञान बाजकों को क्या उधक माता-पिता का अमिताभों की अनुमति बिह किन्तु बना देना उचित नहीं है ।”

अमिताभ को रिता का अजुगानस्य शिरोधार्य हुआ । उन्होंने अपने प्रधान मिथ्यों से कहा—“उचित ही है यह बात । संघ के निबनों में हमें यह बख करना होगा । सबसे कोई बाजक बिना उसके माता-पिता और अमिताभों की तरह सम्मति के संघ में प्रविष्ट न होने पावेगा ।”

अमिताभ ने कुछ दिन और कण्ठिबल में बिठाप । जब तक नहीं रहे उन्होंने महाराज को बर्न-बर्न से सत्पना और शक्ति महान की ।

श्रीर ही लभान् ने कण्ठिबल से बिदा होने का निश्चय किया ।

उन्होंने मगध की धार ही चरवा बड़ाए। राजगृह में उनके विरुद्ध या परदाहन बह रहा था, उन्नी का अपनी अहिंसा और सत्य से विजित कर लवा स्थिर किया।

मार्ग में कुछ आलेख-प्रिय राजकुमार बिचार रहे थे। कुछ उन बन छे होकर जा रहे थे। उन राजकुमारों ने उन्हें संघ-महित आते हुए पचा।

अमिताभ के कबल एरॉन से ही उन पर बड़ा अद्भुत प्रभाव पड़ा। उन सबके मन में उल्टा दिव्य दृग्गता के प्रति बड़ी विरक्ति उत्पन्न गई। उन्होंने प्रभु की सीढ़ी-सीढ़ी भूमि पर उतारकर रख दिए। उन के विरंग माना अपने-आप उनके कटि-अद्भुत से लुप्त गए।

वृक्ष ने दूसरे का मुख दन्तक कहा—“बड़ी अमृत-हर्ष बात हा गई आज।”

एक ने कहा—“पटुओं की बीज कह। हम बन में जाज कोई विदित्ता भी तो नहीं दिखाने दी। वह तो येना जान पड़ता है, जैसे कोई हमारे जाने की अवगती इन मासिधों को दे गया है।”

दूसरा बाबा—“आलेख के न मिटने से ही और उसक छिने किए गए हम कठिन धर्म से हमारे मन में वह निरपेक्षा अन्धक हुई है और इसी से वह अन्ध-राज हमें बहुत भारी प्रतीत हो गए।”

तीसरा कहने लगा—“मेरे तो मन में आता है, अब कभी दृग्गता के छिने घर से बाहर पैर न निकालूंगा।”

चौथ ने प्रकट किया—“मैं भी बड़ी विचारता हूँ, पर मेरी प्रेरणा दृक्-भाव से ही धर्म की विरप्रा से नहीं।”

पाँचवें ने वाचित किया—“मैं इसे देखी अमरक कहूँगा। और वह माहात्मा दृक् का अन्धकार-सा या महापुरुष धनी हम मार्ग से गया है। मैं समझता हूँ, वह उसी का शक्तिशाली प्रभाव है।”

उन्के साथ बपाखी-नामक एक बापित बा । उन्होंमे उस महापुरुष क परिचय संकर शीघ्र कीट जाने के बिदे बपाखी क मेजा ।

बपाखी जब कीटकर आया तो उसने देखा, एक राजकुमार ने अपने बख्ताबकर भी उतरकर भूमि पर रक्क दिए थे । वह शास्त्र राजकुमार आनंद पर सिखार्य का बापि-माई ।

आनंद ने अचीर होकर बपाखी को पूजते ही पूजा—“कीन यह पुनराज गौतम ही हैं न ?”

“हाँ वे अब उन्ही गौतम हुए कर रहे हैं ।” बपाखी ने उत्तर दिया ।

“मेरा अनुमान ठीक ही निकल । बपाखी, मेरे से बख्ताबकर तुम उदा ख जाना । मैं अब उन्हीं का अनुसरण करूँगा ।” करते हुए आनंद जाने लगा ।

दूसरा राजकुमार बोला—“मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा ।” उसने भी अपने बख्ताबकर को बपाखी को दे दिए ।

दुआ-बेखी सभी राजकुमारों ने अपने-अपने बख्ताबकर बपाखी के समुख डेर कर दिया । सभी के मन में संसार क भोगों क प्रति विराम उत्पन्न हो गया । आनंद उन सबको उवागत की वृत्ति में ले गया ।

बपाखी बरख वहाँ पर रह गया अचेष्ट । उसने अपने सामने उस बहुमूल्य डेर को देखा । मन में सोचा — ‘अब मुझे भगुण्यों की हीन सेवा से मुक्ति मिल जायगी । किता हाथ-बैर दिखाए ही अब मुझे बरख के अन्दे-ये अन्दे भुख-भोग मिल जायँगे ।’ वह आसुपख चीर परिच्छर्हीं को अलग-अलग कर गल्ली बाँधने लगा । बीरे बीरे उसके बिचारों में प्रतिनिधा आरंभ हो गई—‘पिछार है रे ! नापित बपाखी तुम्हें ! अभिषास को अपने निकट पाकर

भी तेरी भोग-भूषा क्यों जागरित हो गई। ये राजकुमार दिन बस्तुओं का भार समझकर तेरे ऊपर बैठ गए। क्या तू उन्हें छोड़े छोड़े मरीचिका के पीछे बढ़ाओत रहेगा? नहीं करायी नहीं। इन पत्थरों की रेत के तहों की बहुमूर्तता में मनुष्य की भ्रमण क्षमता है। मैं इस गदरी को मरु की दृष्टि से देखूँगा। यह राजकुमारों के भोग का मीठ है। और कर्म से कड़े हुए बाक, मल और उबड़नों के उच्छिष्ट भार के समान हो ता है यह। मैं भी इसका परिचय करता हूँ। मैं इसमें अपना भार भी लम्बित कर दूँगा।”

उपासी ने अपनी चुरिकाओं कर्तारियों लम्बहरणियों दर्पण मुगंभि ठीक धारि ११ भी उधी गदरी में बाँध दिया। उसने अपने भोग पर ८ बरत भी उमी में रख दिए— ‘मैं भी लयागत की शरण में आऊँगा, और इन राजकुमारों से बदल ही आऊँगा।’

उपासी ने इन सबकी गदरी बाँधकर एक एक पर बरतका दी। उसके निकट ही एक लम्बर के लम्बर पर वह झिझकर रन दिया— ‘जा छोड़े वह इसे मे आकर अपने उपवास में खा मच्छा है।”

उपासी भागा हुआ अमितम की शरण में गया और इन राजकुमारों से पहले वहाँ पहुँचकर उसने दीक्षा प्राप्त की। समय बाक उपासी ने बौद्ध महाभाषों में बहुत बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की और दिनचर्या विरह के प्रमुख आचार्यों में इनकी गणना हुई।



१७ गूंगा सारथी

महाराज विविधा भले प्रकार यह जानते थे कि अमितान और उनके सब को कर्तव्य करने में मुख्य कार्य देवदत्त ही है। देवदत्त ने ऐसे कीमती से राज्य के प्रमुख अधिकारियों की प्रजा के विशेष मनुष्यों को इस प्रकार अपनी मुट्ठी में कर रखा था कि महाराज को जैसे तबत उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ी जब तक का पूर्व कासे बादलों को काटकर प्रकट होगा। अमितान ने माहम्य की नई परिभाषा जनता में प्रचारित करी थी। माहम्य के विरुद्धि पद को इससे भारी ठेस पहुँची। उनका शासन दिख गया। राजगृह के अनेक माहम्य उपागत के बिदे मीयक प्रतिहिता से भर उठे। देवदत्त ने उनके स्वर केंचे किए।

प्रजा के अनेक लोग संबंधियों की इच्छा के विरुद्ध संघ में सम्मिलित हो गए थे। कुछ लोग इसदिने मी तुल से चिड़ गए थे। माहम्य के शम्यस्त पद में अब कोई मनीष विचार उचित होता है, तो जनता उसे सहन नहीं कर सकती वह पूरी शक्ति से उनका विरोध करती है। अनेक बेनी जनता को भी साथ लेकर देवदत्त ने शक्ति-संग्रह किया।

कुछ लोग भारी महाराज अजातशत्रु की बाहु कपरी के बिदे भी देवदत्त की ही-ही-ही मित्राने किये थे।

महाराज राज्य में कहीं मन्दाक नर्म-विषय न फैल जाय, इस भय से बचता उठे थे, पर अमितान की कश्मिकसु-यात्रा के अन्त में प्रतीक केन्द्रे से बच गई।

अनेक लक्ष्मीवित्त बौद्ध भिक्षु जो राजपूह में रह गए थे, 'उन्हें देवदत्त और उनके साथी नावाप्रकार की बीड़ा पहुँचाने लगे। वे जब भिक्षा के लिये नगर और ग्रामों में निकलते तब उनको लक्ष्मीयाँ ही जातीं उन पर पथर और ईंट चेंदी जातीं उनके भिक्षा-वालों में घूक देते उनके बख काह डालते। भिक्षु स्तब्ध और शांत रहते। उन्हें लयागत की पूर्णतया अहिंसक रहन का आदेश था।

देवदत्त और अजातशत्रु का बीड़ों पर चप्पाचार बहुत बढ़ गया। भिक्षु राजपूह चोह-चोहकर चले गए। अनेकों ने जाकर विविधार को वह सुनाना ही।

महाराज नहीं कठिणता में पड़ गए। वैदिक धर्म-कांही महाराज के बौद्ध हो जाने के कारण महाराज के कमधीही गुरु तथा अनेक मंत्री उनके विद्वद् हो गए थे। वे दिन-रात राजा की बौद्धमत का स्वागत कर देने की सम्मति देते थे। पर महाराज अपने शिरचाप में स्थिर थे।

महाराज ने साहस किया और वह राजाशा अपने राज्य-भर में प्रचारित की कि बीड़ों का धर्म अहिंसा और सत्य पर प्रतिष्ठित है। वे किसी का अनिष्ट नहीं विचारते। वे भी मेरे परम साम्य भागीरथ हैं उन्हें विपराय हानि पहुँचाना पार अस्वाभ है। जो उन्हें मनासगा वह धर्म का अवरोधी है, वह रागेर का भी अवरोधी होगा। मैं उसे कठिन-से-कठिन दंड दूँगा।"

इस राजाशा के प्रचार से कुछ चप्पाचार अवरोध ही कम हुआ। पर देवदत्त के श्लोक में मानो घृत की चाहुति नहीं। वह निरत हाकर प्रजा में प्रचार करने लगा कि हमारे पूर्वजों के वैदिक धर्म पर महान् संकट आया है। राजा बौद्ध हो गया हैं, वह धाम्मा और ईश्वर, किसी को नहीं मानता। हमने समस्त बाग-बाग सुख का

दिप हैं। वह सब अपने कर्म को बचाए प्रजा पर भी छाड़ना चाहता है। राजा प्रजा का एक है, वह उनका स्वामी नहीं। वह प्रजा को बिचर नहीं कर सकता कि वह उनके ही, कर्म का अनुसरण करे। हे नागरिकों! जाओ, उठो! अपने पूर्वजों के कर्म की रक्षा करो। यदि कर्म को न बचा सकोगे, तो फिर कुछ भी न रहेगा हमारे। राजा अधीरचरवाही हो गया है। वह तुम हमारे बरों में बिचवाओं की संख्या बढ़ाने, बर-बर प्रजाओं से भर देने और सुविश्रम को नष्ट कर देने के लिये यहाँ आया है। उसने ब्राह्मण और नागरिक को बुरा कर दिया है।

देवदत्त समझा था वह कर्म-विप्लव सुखसा देगा प्रजा में, व वह संभव नहीं दिखाई पड़ा। वह कुछ भी निराश न हुआ और अपनी कार्य-सिद्धि के लिये दूसरा मार्ग-निर्माण करने लगा। वह अजातशत्रु को अपने कुचक्र का साधन बनाने लगा।

अजातशत्रु को कर्म से कोई झगड़ न था। वह बीर और ब्राह्मण होने को एक ही-मा समझता था। उनके मन में कभी हुई थी आकर्षण की चार्चाला आकर्षण। आकर्षण की बराबर मानव के कुचक्र की उपेक्षा करती नहीं आ रही थी। वह अपने बचपों में निर्वात कूटी प्रकट हो रही थी। अजातशत्रु को वह राजकुल विद्वत् कर रहा था।

देवदत्त ने कम दिन अजात से कहा—“मित्र, जो दूत अब आकर्षण के पास से आया है वह हमसे सब कुछ न कर सका भय के कारण।”

“क्या नहीं कहा?”

“आकर्षण की निरक्षर।”

“क्या निरक्षर है अपना?”

“वह कर्षण है, अजातशत्रु से मेरा कर, उसे कोई जान नहीं,

वह एक नाम-मात्र का पुत्रराज है। चारों ओर वही समाचार फैला है कि महाराज ने उम्हीं राज्य-प्राप्त किया है वह अपने हमारे राजकुमार को राजपिदासन पर बिठाएंगे।

“इतने विषय का बह्यंत्र वह किसी दूर से जान हा रहा है हमें, बाव बबला है, हमारे किसी गुप्तचर हमारे बदन से संतुष्ट नहीं है। मैं कल्पना कर ता रहा हूँ बहुत दिनों से इस बात की। देवदत्त क्या तुमने भी दिखाकर रक्खा है यह मेरे सुमते ?”

“नहीं पुत्रराज। किम्विधिये ? महाराज का इस निश्चय से क्या बदले देवदत्त ही बंगु ब हा जायगा।”

“तुम क्या समझते हो, यह बात सच है ?”

“हाँ, मैं सच ही समझता हूँ।”

“तब मैं इस बह्यंत्रका पालने में ही शेष कर दानूँगा।”

“सर्वथा पुष्टिपुष्ट !

“तुम सहायता द सकत हा ?”

“अधिक क भीतर भीर बाहर होना प्रकारों से।

“क्या फिर घभी। जहूँ उठा छो धरना।”

“जहूँ ?”

“हाँ।” अज्ञातशत्रु ने आसन्न का पात्र उद्यकर टि किया—

“हो, तुम भी वी हो।”

देवदत्त ने आसन्न पीते हुए कहा—“बह्य से क्या होना ?”

“वह राजा जिसे बैरों की अनौपेक्षता में मज्जु हुआ है जो विष्णु हा जाने पर भी राजमुकुट धारण करता है जो लक्ष भीर कारागार का भव दिखाकर प्रगर में नास्तिकता फैला रहा है जो अपने सबसे बड़े बेटे का अधिकांश लौकर हमारे कुमार को मीर रहा है, उस राजा को क्या अधिक दिनों तक जीवित रहना उचित है ?”

“नहीं, कदापि नहीं।”

“बन्नी फिर प्रभा हमारे साथ है। राजगुरु हमारा पक्ष करेंगे। संतो हमारा सहायक होंगे, सेवा हमारे संकेत पर चलेगी, चलो।”
देवदत्त सोच-विचार में पड़ गया।

“अति क्या देवदत्त, साहस करो। कोई भी हमसे मुपार्जित न कर सकेगा। हमारा स्वार्थ मोड़ में है। हम चार्मिक व्यक्ति के बच्चा बच है। बसु, छद और आदिन्य हमारे सहायक हैं। हमारी बेप्ता नहीं की प्रतिष्ठा अपुन्य रखने में समर्पित है।”

“यदि कुछ दिव नहीं छद सम्भले, तो कुछ महर जीरक रखो। बिना मझे प्रभार सोच-विचार किन् पना बका बेना कहान है।”

“बहुत विचार चुके हैं।”

“कुछ और संवसार हो जाये दो।”

“हम तस्कर नहीं हैं।

“महाराज कहाँ हैं?”

“अनपुर में। बाबा प्रभार क, लोगों क बीच में कुलासन बिद्या कर वह पात्रंजी राजा होंगे कुलक ध्यान में। सचसे बड़े बेदे का अधिकार जीवकर किसी और को दे देना कुलक नहीं तो क्या है? बहाया अपना कहना।”

देवदत्त ने कह्य उग्रते हुए कहा—“वरत सुवराज एक कमिबता है—‘बह, पुन हो गया।’

“कमिबता कैसी?”

“मेरे किये अंतपुर में मिले है।”

“कहाँ तक इतर कुछ है, कहाँ तक चलो।”

“प्रभार तुम क्या करना चाहते हो?”

“पुररही बाबो नहीं कुछ।” कहकर अनातलु असाका हाथ पकड़कर सींच ले गया।”

देवदत्त ने हाथ मुड़ाकर पुचराज का अङ्गुलपट्ट किया ।

बच्चा, मेरे पीछे-पीछे चले जाया, हम कोई राह नहीं मरना ।
आज हम अपने पप की मरते नहीं जाया का उम्भवन कर दो मेरे
अमात्यराज ने कहा ।

अंतपुर के मुख्य द्वार-रक्षक ने देवदत्त को रोक लिया ।

पुचराज ने रोप-पूर्वक कहा—“ देवदत्त भरा अभिन्न हृदय मित्र
है, उसे क्यों रोक लिया ?”

“महाराज की आज्ञा । द्वार-रक्षक बोला ।

‘उन घरों के प्रमुख हो जाने पर तुम किसी भी आज्ञा मानागे ?’

‘द्वार-रक्षक विचार में पड़ गया ।

अमात्यराज बोला— क्या तब मेरी आज्ञा का शान्द
न करोगे ?”

द्वार-रक्षक धीरे धीरे बोला— ‘हाँ ।’

‘अच्छा, तब मेरी ही आज्ञा की मर्जीया करा ।’ कहकर अमात्यराज
बड़े आरोग्य से अंतपुर के भीतर चला गया ।

महाराज विविधा ध्यान साथ रहे थे अकेले ही थे ।

हिंसी की चाहत पाकर महाराज ने आँखें बंद की । सम्मुख ही
देखा महाराज की मूठ पर हाथ रखे हुए पुचराज लड़े थे । पुचराज की
माँह-आँगी देखकर महाराज को रौंझ हुई । उन्होंने कहा—
“पुचराज ! उनके स्वर में चबराहट थी पर उन्होंने हिंसी प्रहार से
प्रकट नहीं किया ।

पुचराज ने बड़े झुठ स्वर में उत्तर दिया—“हाँ ।”

असमय कैसे आया पुचराज ?” बड़े प्रेम से महाराज ने कहा ।
“असमय ?”

“हाँ । बिना बुझाए घरनी हल्का से घबराव बर्दा कभी नहीं
‘घाने’ देती से कहना है । क्या चाहते हो ?”

पर आप नहीं देना चाहते।' अज्ञातशत्रु ने कुछ रक्ता से लथ्पट की सूँड को पकड़ा।

"अज्ञात ! अज्ञात !" कहते हुए सज्जाद् उठ करे हुए, उन्होंने बड़े मेम-माथ से उसके कंधे पर हाथ रक्खा—'बच्चा नहीं दिया तुम्हें ? तुम मंगल के सुबराज हो। सब कुछ तुम्हारा है। मंगल का सज्जाद् सिधु होने का रहा है। उसके हाथों का साबुदा मिट्टी की दिव सिधा-पात्र में बदल जावेगा।"

"सूँड बात ?"

"अमिताभ का मल सूँड से चूसा करता है। सर्वत्र धीर सदा मल की शोच धीर मल का व्यवहार ही उसका मत है।"

"बहु कोरी बच्चा है। मैं कुछ धीर सुनता हूँ।" कहकर अज्ञात-शत्रु ने कद्दा बाहर लीचने का प्रयत्न किया।

विधिमर न उसका हाथ रोक दिया—'तुम क्यों बार-बार कद्दा लीच रहे हो ? मैं तुम्हें धाज ही संग्राम का अभिषेक करता हूँ।

"उसका पक्षधर अभिषेक दे देंगे आप तुम्हें ?"

"हाँ।"

"धाज ही ?"

"हाँ।"

। ।

अज्ञातशत्रु ने कद्दा पर से हाथ लीच दिया—'अच्छी बात है, अब मैं अपनी भूख सुधार लूँगा। अभिषेक का आयोजन करार हो।"

अज्ञातशत्रु को अंग देश का राज्य मिला। वह उसकी राजधानी बना क ब्रिये दिया हो गया। उसने देवदत्त को अपना मंत्री बनाया। दोनो को वहीं निर्दह विचारने के लिये मिट्टी का भव न रहा।

अमिताभ फिर राजपूत में पधारे। उन्होंने पहले के ही आध्य

नेतृत्व में निवास स्थिर किया। फिर राजगृह में मेम और त्याग की संज्ञाएँ बहने लगी। हम वार उनका काम का विरोधी देखते बहने न था उनके कुचकों से धर्म का प्रचार अविच्छिन्न रूप से घर-घर प्रकाश करने लगा। त्रिपु निर्वाण रूप से अपना काम करने लगे। भावस्ती समुद्रिशाही राजधानी थी। यह पैरावती नदी के तीर पर अवस्थित कोरुकराज की राजधानी थी। उन दिनों प्रसेनजित-नामक राजा इस पर राज करता था।

सुरत भावस्ती का धर्मतत्त्व प्रकाश हो रही था। धर्मार्थ ही नहीं बल्कि धर्म-धर्म के इतने के साथ भी उसके आधिपत्य-संबंध था। उसका धर्म और उसके अर्थ सीमातीत थी।

जीवन में हमारे ही प्रचार का था वह। सुकर्म संसार की परिधि के भीतर वह अपने ही आधिपत्य को फैल सतते हुए बैठा था। जैसे जगत् का उदय पृथ्वी पर आकर टिका है, ऐसे ही सुरत समस्तता का संसार के सुकर्म-योग उसके बिचे है। हमने का बाधा, उसे प्राप्त किया।

बड़े-बड़े राजा-महाराजों के साथ उसकी प्रतिस्पर्धा थी। उसके निवास-गृह धर्मार्थ के सर्व अर्थों के राजमन्त्रों से डोढ़ रक्ता था। उसकी मात्र-मन्त्र संसार के अष्टम उपकरणों से संगृहीत थी। उसके रहन-सहन, भोजन वस्त्र सुख-सुख और अतिरिक्त था। वह अर्थ में सुख और भोग-प्रेरक में पृथ्वीतल के हृदय के समान था।

अधिक धर्मार्थी सुरत के ही भी-वार में उदय गये मगध के बुधराज अशोक की उपेक्षा। जहाँ से निर्वाण और निर्दुष्ट हाकर अशोक, धर्मार्थी की कम अवमानना का महान न कर सका।

उमने देवदत्त से कहा—“अब हम एक स्वर्ण और समुद्र राज

के अधिकार हैं। मुक्त। के सभी साधकों से सर्वत्र आभयवादी अब भी हमारा अपमान करती जा रही है। क्या यह हमारे लिये सर्वत्र राजा का विषय नहीं है ?”

उसका सहचर बोला— “अवरजमेव है। फिर इसके लिये जो भी आज्ञा महाराज है, आपका यह अनुचर उसे निरोधार्य करने के लिये किसी भी शत्रु और विपक्ष की निन्दा नहीं प्रस्तुत है।”

“यह कोशक का राजा प्रसन्नचित्त मुझे कहा ही काकुल्य प्रतीत होता है। मैंने स्पष्ट ही उसे लिख दिया था कि आज्ञापाली हमारी अनंत जनशक्ति स्वाहा कर चुकी है, तुम्हारे छोटी सुदृष्ट को कोई अधिकार नहीं कि वह अपने अपने ईगमबल में बंधी बना ले।” कुछ क्षण देकर राजा, फिर कहे: जगत्— अर्वाच्य समय बीच कुछ है प्रसन्नचित्त ने इस पर कुछ भी—व्याज नहीं दिया। मित्र वृक्षवत्, मैं तुमसे कहता हूँ, क्या यह वस्तुतः समय नहीं है कि हम राज्य-विस्तार के लिये अपनी सेवा और कर्म-शक्तियों को संभालें ?”

“अकारण ही ?”

“तुम इसे कारण नहीं समझते। एक साधारण छोटी जनशक्त्यनु की मनाजीला को भीम वैरा है। अगाध केसरो के मोच से भीड़ा कर रहा है। प्रसन्नचित्त यह सच कुछ भीबा होकर देख सकता है। उसे राजा के प्रति राजा के, कर्तव्य का ज्ञान नहीं। मैं अवरज ही उसे शिक्षा दूँगा। क्यों वृक्षवत्, तुम क्यों विविधता प्रतीत हो रहे हो ? क्या हम में इतना नीरस और हमारी सेवा की इतनी निमग्न नहीं है कि हम आज्ञाकारी पर आज्ञास्व कर सकें ?”

“है कैसे नहीं ? पर हमारी परिकर के कुछ मंत्री अभी संश्लेषता हमारे पक्ष में नहीं हैं। जब शक्ति के साथ ही कार्य साधन हो जाय, तो राजा को अधिक नहीं है कि वह अपने बल का ह्रास करे।” वृक्षवत् ने आश्चर्य भाव से कहा।

“तुम पर अपने मन की दुखदता प्रकट कर रखनी है मैंने देखा है। मैं आज़राखी के घमास से नहीं थी परिपक्वता नहीं पाता अपने जीवन में।”

“मैं का हूँमा बसे।”

“कैसे?”

“जैसे भी हागा।”

‘तो बाघो हीम-से-हीम आचस्ती बाघो, और हम ने बाघो। हम काम में जितना भी बन पाय हो, हमकी रंजमाह चिता न करो।’

देखात पर्याप्त मार्ग-जब और कुछ नैतिक तथा अनुभवों को लेकर बाघा क बिने तैयार हुआ। एवों पर बहकर ब जाग बिना हुए।

दुखदत न बघबरात चारव किया और गूँगा मारपी बनकर एक रूप के संवाकन-मूक रूप अपने हाथों में लिए। वे जाग चमी आचस्ती न बाकर राजगृह को गए।

। राजगृह में आज़राखी की बाटी भगिनी रहती थी। हमक नाम बाकर देखात ने कूट संज्ञा की। हमक मुख की प्रकृति कहनी थी बसे प्रकृति मिठी है। वे प्रकृति क लिए प्रियन हुए।

जो भावा-बाह रचकर से गया था देखात, हमने आज़राखी कैम गई। देखात ने आचस्ती पहुँचकर आज़राखी ८ पास बह बघ और संवाद मेधा कि राजगृह में उमड़ी भगिनी मरवायन चबन्धा में है। पशु क समय काली वह बकर हुआ है कि वह आज़राखी का मुन दल से।

आज़राखी अर्धत स्वह रहती थी अपनी भगिनी पर। वह उमी दिन कुछ शरीर-रफक और हाथियों का लेकर राजगृह बह ही। मुक्त हुए नवीन बाधित्य-संरूपों को मुराद करने क लिए अपनी की और गया हुआ था। आज़राखी हमक आग्रह की प्रतीक्षा न कर

सही। महोदरा से अंतिम मिशन की बातचीत : से उसे स्वामी की आज्ञा से सेना भी कुछ आचरनक न प्रतीत हुई।

भारती के चेहरे में अपने शरीर और शक्ति में अपने मन को आचरित किए हुए देवदत्त ने आज्ञादात्री की अपने रूप पर बैठाया। मृत्यु की मरणात्मकता का विचार करता हुआ उस आचरितता का मन देवदत्त के चरित्र के भीतर पैदा न सका, उसके दिमाग में ही तिर गया।

मार्ग की शक्ति से आज्ञादात्री के मुकुटमंडल बस और घम की रक्षा करने के लिये उन शक्ति भारती का रूप मार्ग में आगमन हुआ। उसके लिये आज्ञादात्री की शक्तियों और शरीर रचने के रूप सबसे पीछे देवदत्त के अनुचरों के रूप लगे।

पहले दिन की आज्ञा सफुटल व्यतीत हुई। दूसरे दिन आज्ञा आरंभ करने के वरनाम ही कुछ दूर जाने पर गूँगे भारती ने एक रोक दिया और एकदम की कुछ ठीक करने लगा। उसने आज्ञादात्री के रचनाकारों को जाने बंद जाने का संकेत दे दिया। अपने मामलों का भी कुछ इंगित कर दिया।

रूप का बेंटे-बेंटे आज्ञादात्री प्रकट हुई उसने कहा—“शीघ्रता को सारथी! कहीं पेसा न हो मैं अपनी शक्ति अगिनी से अंतिम आचरन न कर सकूँ।”

गूँगा सारथी रूप के नीचे से बाहर निकला। एक हाथ काफ़र हूँ को दिखाता उसने और मुँह से कुछ मारने लगा—“हू-हू-हू!”

आज्ञादात्री ने उसका जर्प समझा कि भारती कह रहा है, पवन के वेग से तो चसूँगा रूप।

भारती ने हाथ जोड़कर कहा—“हृदय ठठठ ता।” उसका आवाज वा कुछ बोली दूर और भीतर रहनी।

आम्रपाखी के मुख पर मुमकान की चीख रेखा उदित होते ही बिबीन हो गई ।

मारपी कुछ छोक-छाक खीर की, पहिया छीक हो गया, उमने सब के सूत्र हावों में सेकर घोड़ों की पीठ पर छोड़ा रहला सब पवन से बातें करने लगा ।

अधिराम गति से सब भागा बछा जा रहा था । बहुत दूर निकल जाने पर भी आगे बढ़े हुए मापी नहीं मिले । हृषिक अतिरिक्त आम्रपाखी का वह पय मर्बबा नहीं-मा मसीत हुआ । उमक मन में मंथन उपजने लगा । उमने मारपी से सब रोक देने को कहा ।

मारपी ने सब राकबर पूछा—“तुलत तनू ?”

“मारपी ! तुम कहाँ को ले जा रहे हो ?”

मारपी ने दाहवी तर्जनी बरह दयेली पर बजाकर कहा—“तनू ?” अर्थात् बिन्दु छीक पय पर ।

आम्रपाखी बासी—“मापी कहाँ गए ?”

हाथ की उँगलियों को लाकर उमह की मीनि बजाया हुआ बाधा—“तुल-तुल !”—मैं क्या जानूँ ।

सब फिर बेग ल भाग बछा । कुछ दूर जाने पर फिर आम्रपाखी बासी—“मारपी ! निर्मन्द तुम मार्ग मूल गए हो ।”

“हूँ-हूँ !” फिर दिखाकर भूला बाधा ।

मैं अनेक बार आवस्ती से रात्रगृह आई हूँ । मार्ग के कई स्थान आ मुझे अने प्रकार पाए हैं, धात्र के मुझे हूँ-हूँ से भी नहीं मिले । गंगा नहीं बहती है ।

मारपी ने पीछ की चार दिशापर प्रष्ट किया कि हम इसे चार कर धागे धा गए ।

आम्रपाखी अति-अमिल हो गई । मापी बिना दिखाय के सब हाँकना बछा जा रहा था । वह अपने मन में सोचने लगी—

“हम बहुत दूर जा गए हैं। हम सारथी के मन में कोई चमत्कार बिचार तो नहीं है ?”

वास्तव में वे अंगरान्य में प्रवेश कर रहे थे। सूर्य भगवान् पश्चिम के आकाश में डूब गए थे। आध्यात्म से वे जगमग पचास श्रोत्र जा गए होंगे गूँगे सारथी के मन में अपनी विजय पर अमित हर्ष और उन्माद किया हुआ था। अंग-रान्य में जा जाने पर अब वह बिल्कुल निर्मल हो गया था। पार्श्व के कूट जाने पर अब उसकी प्रगति को कुछ भी हानि नहीं पहुँच सकती ऐसा वह विचार रहा था। वह गूँगा और भी मूक हो गया। हाथों में सूत्र और अक्षर छवि सब में और अब महाराज अज्ञानानु के समीप था समय।

आज्ञपात्री ने सारथी का अचरीय कीचकर कहा—“रोक दो रथ।

“हूँ-हूँ” गूँगा बोला। उसने बाइों की पीठ पर झेरा रखकर उनकी गति और भी तीव्र कर दी।

रोक-पूँक आज्ञपात्री बोली—“रोको रथ।

सारथी अहसास कर उठा। वह विजय के हर्ष से भर गया था। उसने रथ रोक दिया। एक अरवारोही ने उससे सामने आकर उसे अभिवादन किया।

आज्ञपात्री ने पूछा—“राजगुरु कितनी दूर है अभी ?”

अरवारोही ने भीरव रहकर मुँह फेर दिया।

आज्ञपात्री ज्वर में पड़ गई। उसने जब स्वर से फिर पूछा—

“कितनी दूर है राजगुरु ?”

गूँगे सारथी ने अपने अमातृक समयों पर हाथ रक्खा—“मैं बताऊँगा।

।

— गूँगे के मुख के स्पष्ट शब्द सुनकर आज्ञपात्री का भाव अपने

जागा— 'कीन हो तुम ? अचरम ही कोई बचक हो । तुमने जब तक त्रिभु कोशक से दूक का अभिनय किया, उसमें यह बाधाबलता उत्पन्न होनी मैं भयबान् का आश्चर्य कीतक नहीं समझती । क्या दुरधिमधि है तुम्हारी ? कीन हो तुम ?'

गूंगा ने कञ्जिम केरु दूर दूर किया । देवदत्त प्रकट हो गया !

'राजकुमार देवदत्त !' आकाशवाणी चिल्ला उठी—'स्वर्ण दान रही हूँ ?'

'नहीं !'

'कहाँ किए का रहे हा ?'

'तुम्हारे सौभाग्य का यह चमक उठा है, तुम्हें धर्मदत्त की महारानी बनाने का किए का रहा हूँ । महाराज अश्वत्थाम के सामाग में प्रस्थापित होयागी तुम ।'

आकाशवाणी के आवाजों में कोई परिवर्तन न हुआ हमसे । अबने कहा— 'राजपुर में मेरी सहायता ?'

नानंद धीरे मकुल्य है उन्हीं की अनुमति लेकर गया था मैं ।'

'तुमने अपना नहीं किया दूकत्त ।'

'बड़ी-बड़ी सु दरिया त्रिभु पद के लिये आकाशित है, पर अश्वत्थाम ही तुम्हें मिलेगा । तुम्हें देवदत्त का उद्वहारी के रूप में देखना चाहिये न ? कहा रहता है अब जेही के बड़ी ? कबल सुवर्ण का वर्णन ? अश्वत्थाम के यही मय कुल्य है— 'मैपधि, प्रमुता प्रताप रूप-जीवन और तुम्हारे प्रेम के धरा हुआ मय ।'

'नहीं मुझे आचस्ती ही बहूँ का हो, तुम्हारी आश्रम जाती गूंगी ।'

देवदत्त ने कुल्य मर्कट दिया किन्तु ही लड़े हुए अब अश्वत्थाम का । अश्वत्थाम ने कपे पर से अश्वत्थाम न प निकालकर अब निगदित किया ।

है, वह जिसने इच्छितों पर भार डबकर उनका मार्ग सरल बनाया है। मैं जब अपने प्रेमियों के स्वार्थ से आकुल हो उठी थी,—तब मैंने उसकी कीर्ति सुनी। तुम नहीं जानते उसे? वह तुम्हारा आदि-भाई है।

‘कीन? सिद्धार्थ?’ देवदत्त ने स्तब्ध से पूछा।

‘हाँ अमिताभ! वह त्वागी पुत्राब गौतम, जिसने संबोधित-पद कहा है। वह मेरी पीड़ा भी दूर करेगा, वह मुझे भी मार्ग देकर उसे प्रकाशित करेगा।’

‘सिद्धार्थ! वह बड़, वह बाबूजी, मेरा बाबूसा! मैं जानता हूँ तब उसके पुत्रत्व को, तुम्हें भी बता दूँगा।’ कहकर देवदत्त ने रथ काट दिया मार्ग में।

राजपुत्र के वेषधन में पहुँचकर अमिताभ ने वहीं वहाँ काज दिया। निरुपस्थित और देवदत्त के बंधा चले जाने के कारण कुछ के साथ राजपुत्र में आधा-हीन होकर विचार करने लगी। राजा के आकाश में शीघ्र-कर्म प्रकट होने लगा था।

वर्षा-आकाश में आकाश भी अनुविष्टा के कारण अमिताभ एक ही स्थान में रहते। निरुपस्थित उनके उपदेशों में बड़ा बड़ा बड़ी शक्ति और वहीन प्रकाश प्राप्त करते। वर्षा-आकाश के बीच जाने पर अमिताभ फिर अमिताभ और बगल-बगल में भूमि-धिरज। स्वयं का सर्वोच्च पुत्रत्व के हेतु प्रवृत्त करते।

‘वर्षा के शेष हो जाने पर जब आकाश निर्मल और धूमिल प्रकाश-विहीन हो गई, जब अमिताभ ने अमिताभ करते हुए, गगन पार की और बैठाजी में प्रवेश किया। बैठाजी में विष्णुवीराम ने अमिताभ का स्वागत किया और उसके वहीन कर्म के प्रति बड़ी शक्ति प्रदर्शित की।

क्याही में महाराज दुखोहन की कन्यावत्सा का समाचार पाकर अमिताभ कपिलवस्तु के सिधे बह दिये ।

राजपों के राजा जरा क आक्रमण और हा पुत्र तथा वीर के एक और राज्य-त्याग से बड़े दुर्बल और निराश हो गए । उन्हें जीवन भार-भर हो गया था । उन्होंने अपना अंत-समय निरुप-आनन्द मिहार्थ को देखने की इच्छा प्रकट की ।

कपिलवस्तु पहुँचे । उन्हीं के दरवाजे पर भागा हुए महाराज का प्राण धरक रहे थे । पिता की श्रुति के समय अमिताभ ने उन्हें अपनी उपदेश-श्रुति से परम शांति दी, और उन्होंने अमिताभ की याद में ही मृत्यु-प्राण प्रार्थना किया ।

जारा राजमहल झाड़ाकार से भर उठा । समस्त निराश और अमिताभ-विहीन होकर धार्त शर स खून करने लगी ।

महाराज प्रजापती ने राजकुमार राहुक को फिर गृहरथ में प्रवेश की आज्ञा देने के लिए अमिताभ से विनय की । वह समयक ही रही ।

अंत में प्रजापती ने अमिताभ का चेहरा देखकर कहा— 'यदि तुम्हें पिता का वर इस प्रकार निमृष कर लेना ही इष्ट है, तो फिर हमें भी अपने साथ ले जाना । हम शून्य भवन में हम बीड़े प्राण धारण कर सकेंगी ।'

'तुम कहाँ जाओगी । मिहार्थ में नारी-वशेष मिलिद है ।'

'क्या नारी हूँगी अशिक्षित है ?'

'अपवित्रता की बात मैं नहीं कहता ।'

'फिर क्या वह पुरुषों के समान आग और बेराम्य का तन नहीं जला सकती ?'

'यह भी नहीं कहता ।'

'फिर हमें भी साथ ही पुत्र ! क्यापता होने परों में मिहार्थ

का ही जीवन बिता रही है। मित्र-संबंध में यदि हमारे बिने त्याग नहीं है तो क्या इससे बड़ा मित्रुद्धी संबंध की सृष्टि नहीं की जा सकती ?”

“अभी नहीं, अभी देर रहसों। मैं विचार करूँगा।” कहकर अमिताभ करिखवस्तु से फिर बैठाही जा गढ़।

अमिताभ के बड़े भाये रर राजमवल की राजमखिर्षी मितांठ मिराण हो गयी। करिखवस्तु के सभी राजकुमार बड़-पूछ कर प्रस्थित हो गए थे। राजमवलों में केवल उनकी परिवारा महिर्षी और जयोव मिश्रुगल ही रह गए थे।

संवागार में राजसिंहासन था सुम्भ। राजमवल में राजमुकुट था, राजा के बजापूपक थे, राजानुष थे, उनका उपयोग करनेवाला कोई न था। रर-राजा के रर, हर-राजा के चाहे गल-राजा के हाथी सभी रिक और रिये हुए थे। राजकाय जाव-मवल से बिहीन राज-काय संवागल-मवल से मयति-विधुत संवापुर के मिवाही मवलरक शोक में निमग्न और प्रजा प्रतिह ही राजाओं के प्राक्रमक क मय थे संवाग-मवल थी।

धन और अधिक सहन क कर सभी राजमवल की रमखिर्षी, प्रजा बटी ने सबको दुःख कर कहा— “बड़ो, हम सब अमिताभ का अनुमारा करेगी। सोन ही बड़ेगा उन्हें हमें अपने प्राधन में न्या मारी कर की समानता नहीं रहती ? क्या उसे जयत का काक-वाप नहीं म्पापता ? क्या इसके मय में उनके मुक्ति पाने की प्रवृत्ति नहीं जाग बहती ?”

प्रजाबटी राजमवल की समस्त मिश्रुद्धी हान के बिने सखद रम-मिर्षी की अमिताभिकर बरकर बैठाही की रिवा में बल रही। बन्देनि जगत् के सब प्राकर्षकों को दुःख दिवा मारी कृत्रिमता विसर्जित कर दी।

पारम मोहिनी पणोकरा को उन्होंने चरना चादुर बनाया, बसकी कष्ट-सहिष्णुता से उन्होंने छटि पाई, और वह निरखर किया कि हम भी वह सब कर सकेगी ।

वे राजमन्त्रियों को सुखद्वार खोल नहीं । साज-सज्जा लजामुपव सब कुच हीसे था, बैसे ही लज्जा नहीं । रंग पर एक-एक बस रहना उन्होंने । सीमान्त के सब बिह्व और मनीष दूर कर दिए । उन्होंने कुसुम-कोमल भंगे पैर बाहर निकाल दिए सब पर । मिकल-गंध, कुच-कटक, शीत-ताप और जीव-जंतु-मरे सब पर !

बेलाही के मिश्र-संघ में बड़ी हलचल मच गई । मित्रों के समूह का-समूह बना बना आ रहा था । एक मित्र ने रात बिना उन्हें—
"आप कोप नहीं आ सकती संघ के भीतर । रिश्वतों का प्रवेश की किसी प्रकार आज्ञा नहीं है अविधान की ।"

प्रजापती ने कहा—“हमने सुना है, बहुत दिन हुए उन्होंने एक भी को प्रवेश ही भी ।”

“हाँ, वह एक बारमित्र ही खेदोका । किसी न संघ के भीतर बसकी हवा कर ही । सब से अविधान ने रिश्वतों के प्रवेश का कठोर निषेध किया है ।”

हम ही में मिश्र आर्जव था शुरू का नहीं पर । प्रजापती ने हमसे कहा—“राजकुमार आर्जव, तुम काकर अविधान से कहा । हम सब निरखर के साथ आई हैं । यदि हमारे बिने सब में लज्जा नहीं होगा तो हम नहीं पर मित्राहार और मित्राग्रह काकर साथ लज्जा देंगी । हम संसार का मोह चाहकर था गई हैं । हम किसी प्रकार यह कपिबन्धु को नहीं खीर सकती । जाया तुम्हारी बही भी हमारे साथ है । हमारी आर से उन्हें समझाया, जारी अविधान नहीं है, पुरा के समाज ही उनके भी अविधान है ।”

आर्जव ने अविधान के साथ काकर हाथ खोल निरखर किया—

“शाक्य-वंश की महिमाएँ, महाराणी प्रजापती और पत्नीपरा के नेतृत्व में जापनी शरभ छाई हैं, उनके अन्तर्मन एवं वृत्त गूढ़ हैं, मारी वह वृत्ति से मरी है मार्ग के कम और अन्धकार से है अन्धकार हो उठी है। उन्हें शरभ मित्रही उचित है महाराज।”

‘हमने बहुत सोच-समझकर ही सब के भीतर कियों के विवेक का विषय बनाया है।’

विषयमक तो जाय ही है प्रभु, उनके प्रवेश का निबन्ध बना हीजिये।

‘जावेद !—’ अभिषेक कुछ विचारते बने।

‘हे प्रभु ! जिस प्रकार अपने कर्म को प्रभावित देकर शाक्य और चांडाल को समता दी है। जिस प्रकार जी-संघर्ष की भरवता दिखाकर रंक और लुह को एक ही धामन पर बिछाया है, ऐसे ही नर के अधिकारों तक जारी की भी पहुँच होने हीजिये। मित्रियों के साथ न मही उनसे सर्वथा विभक्त कर मित्रही-संबंध की प्रतिष्ठा कर हीजिये।’

मित्रही-संबंध की स्थापना हुई। अनेक कठोर विषयों में बह होकर शाक्यकुल की महिमाओं में उप-संस्था प्रगट की।

बैरागी से अभिषेक में कीर्तनी को प्रत्यान किया। वहाँ एकल ‘वर्ग-वासन कर शरद वस्तु के कारण से उन्होंने राजगृह को प्रत्यान किया।

लेही सुदृढ प्रवास से जीटकर जब चाक्रपात्री के प्रसाद में गया, तो हमें न पाकर अर्पित उड़ित हो गया।

प्रापद-वर्षिका ने कहा—“स्वामिनी अपनी सहोदरा की कर्म रोगावस्था के समाचार पाकर वहाँ से राजगृह को गई थी। उनके माय की शरीर-रक्त में से गए थे, एक सप्ताह परचाय उन्होंने बीट कर कहा कि मार्ग से बह न-जाये वहाँ को नहीं गई।”

गुना मारपी

कहाँ को बका गइ ? क्या मुदत ने हममें जो शाख स्नेह पार
 जगुति पाई थी, वह सब एक घर बना थी । मैंने बारांगना
 समझकर भी जो उसके साथ एक कुम्हार की गरी की धौलि जलिन
 को साँची कर बिबाह किया था वहा वह एक मूख थी ?”

“हम मिदबब पर बही जाना चाहिये थापडा । देवा भी संभव
 है, कोई उनको बहाना कर ले गया हो ।”

“क्या मेरे निर्मास किए हुए इस मासों इस उपबन्धों इस मुग
 और विद्याय के साधनों के जतिष्ठि भी उनकी भावना के बिने
 कुछ और शेष रह गया था जगु मे ?”

“मैं नहीं समझती । उनसे पहले बीबन में जो कुछ भी हो
 नहीं जानती । वह से वह आरके माया में पाई हैं, हमने मरिच
 ही उन्हें सुन-माय के प्रति इरादा ही पाया था । मिर्मिह कां
 हुआ के बिना उनका आराधन कर ले गया ह ।”

“वह आने साथ बजा-बजा बसु ले गए ?”

“कुछ भी नहीं । माग में तरफों के मय मे वह घर के आग
 पर के आभारों का भा कावकर बही रन गए । केवल श्रीभाग्य
 के कुछ पिछ ही उनक पाय रह गए थे ।”

येही मुदत आधरात्री से अर्धरात्रि स्नेह करता था । उपर के
 का इतना नहीं जिनका वह उपर शीघ्र का डरामक था ।
 आधरात्री भी मुदत से बहुत ड्रेन करती थी । मंगलि के बिने
 बही पर मुदत की उप डराणा के बिने जिनके प्रेति होकर वह
 जेवा पावहार के बिने जब की धौलि घाते रात का बहाना
 रहता था ।

ज्या मुदत आधरात्री का नाकर बहुत बिचल हो गया । अपने
 बपायीय रामगुह की पात्रा की । वह आधरात्री की महोदरा के
 पास गया, हमसे बुझा—“आधरात्री यही है ?”

इसका मे उसे जय कर दिया था, वह बोली—“मैं नहीं जानती कहीं है।

वह तुम्हारी ही सम्भावना का समाचार सुनकर यहाँ आई थी। तुमने उन्हें बुझा मेरा था।”

मैं पिछले कई वर्षों से रोमप्रस्थ नहीं हुई। मैंने उन्हें बुझाने के लिये किसी को नहीं भेजा। जग पक्का है, किसी ने वह बदलना क्या है ?”

सुरज मिरास होकर भावस्ती खीट रहा था। उसके हृदय में संसार और उसके संबंधों के प्रति क्या एक वैराग्य जा गया था। इसी समय उसने कुछ के राजगृह-निवास का समाचार सुना। महाराज बिबिमार की रानी देवा ने उसी दिन संसार त्यागकर त्रिभुषी-संघ में प्रवेश किया था। सुरज ने विचार किया—‘इतनी बड़ी महारानी जिसके उपदेश सुनकर तुलबद, मुक्त-विवास का त्यागकर जाती है, अपरब ही उसके माहात्म्य होना। मुझे उसके दर्शन कर ही लौटना चाहिए।

सुरज अमिताभ के आश्रम में गया। महाराज उस समय उपवेश दे रहे थे। वह भी उनके निष्ठ एक ओर दर्शकों के बीच में बैठ गया। उस समयवत्ता में वह अपने और अपने हृदय दोनों को मूक गया।

उपवेश की समाप्ति पर लोग चले गए, वह भी सुरज वहीं पर बैठा रह गया। अपने अपने मन में सोचा— यह मनुष्य तेजस्वी है इससे सिद्ध नहीं, हमका-मेरा कोई परिचय नहीं, न हमके शिष्यों और दर्शकों में ही कोई ऐसा परिचित मित्रा मुझे। जोय इन्हें परममित्र और संप्रदर्शी कह रहे हैं। यदि यह हम समय मुझे मेरा नाम लेकर पुकारें, तो मैं समझूँ कि वह अवतारी पुत्र है ?

अमिताभ स्वयं ही निराश बैठे थे। सुरज के साथ और भी वो के नीचे दिन

हिता सारथी

अज्ञानक अमिताभ ने धीमे जोरकर पुकारा—“बेटी सुनच !”
 बेटी सुनच आश्चर्य के सागर में डूब गया। अज्ञा और मणि
 के अतिरिक्त मैं अमिताभ के चारों तरफ उसने अपना मस्तक
 रक्त दिया ?

मन बाधा दे सुनच, उसे सब समझने ही ने तुम्हारे मन
 में दुःख का उद्वह हुआ है।”
 हे राम तेरा ही अमिताभ, धारने मेरा नाम देने जान
 दिया ?

“ध्यान के कारण, ध्यान समस्त लोक और काशों को बेच देता
 है। इसकी गति का कोई बाधक नहीं।”

“आज्ञावादी क्यों है ? बीरिह है या मृत ?”
 तुम मुझे ओठिरी समझ रहे हो बेटी। मैं नहीं जानता
 आज्ञावादी क्यों है, क्यों है। मेरे मन में बीकन और मृत्यु का कोई
 संबंध नहीं है, इसी से मैंने सब को पाया है। तुम्हें इसकी क्यों
 इतनी चिंता हो गई। इसका अनुसरण तुम्हें कराते शांति
 नहीं दे सकता। मैं पूँगा तुम्हें शांति।”

“मैं आरथी शरण हूँ। मुझे शांति बीरिह।”
 अमिताभ ने उसे अपने गरीब धर्म के सब समझाया। बेटी
 गुरी हो गया। अपने पुत्र का संवन्धित आज्ञावादी अपने
 का मातृत्व विमर्श दिया, वह आज्ञावादी का अनुसरण जोरकर
 आज्ञावादी बीरिह गया।

आज्ञावादी बीरिह वह और भी अज्ञाता से अपने धर्म का अनुसरण
 करने लगा। लोगों ने उसे अज्ञापरिवर्तक नाम से प्रसिद्ध कर दिया।

१८ नाक्षत्र की कन्या

कन्या के राज्यासार के द्वार पर पहुँचकर वेवदत्त ने रथ राफ़ दिया, पर आज्ञावाही किसी प्रकार रथ से उतरने का सम्मत्त न हुई।

वेवदत्त ने उठकर हाथ फेरकर उसे रथ से नीचे खींच दिया।
“अब तुम्हारी इच्छा-नामक कोई वस्तु नहीं है वहाँ इस दुर्ग के भीतर।

“हाथ बाध दो वेवदत्त ! तुम्हें कर्म का भय नहीं ? तुम्हें एक भी क शीख का हरद करते डरना नहीं ?” कहकर आज्ञावाही ने अपना हाथ खींच दिया।

शुक्ल के खंडों को दिखाकर हमने तुम्हें रात-रात-भर नचाया है। शुक्ल और संरक्षि की शीख-शामिरी ! क्या तुम्हारे भी शीख हैं ? यह सब बेटी शुक्ल-कीसे मूर्खों को बहकाने की बातें हैं।”

“क्या एक की परापक्वता और सभे हृदय के प्रेम से फिर शीख का निर्माण नहीं हो सकता ? मैंने किया है निर्माण उसका। भण्डा न होगा वनदत्त, अन्ध की प्रत्यक्षित शिखा में हाथ न दो।”

आज्ञावाही बांधी।

“कल्प हो सती के लेख ! पर हम तो महाराज के सेवक हैं। हमें सबकी सेवा में तुम्हें से जाने की आज्ञा है। वन्ही को तुम अपने शीख की शक्ति दिखाना।”

आज्ञावाही बह-वर्णक धवालय के सामने से जाई गई। उसने हाथ जोड़कर नवी शीखता के साथ कहा—“हे महाराज ! मख-

शास्त्र की कथा

मूत्र, मूत्र-सेवा, छ-हाथ की गद्दी इस सब पर आपका वह मोह प्रज्ञान है। फिर दूसरे की नारी वह तो समाज और वर्ग बना के ही नियम में परिहार्य है।

"नर-जीनों के स्वाम में वह उपदेश की दुष्कृपा थी तुम्हारे सबों पर कुछ कम सुंदर नहीं है। तुम दूसरे की नारी! एक अत्यंत सख! तुम्हारे नारी जीवन के पुत्र-बापरा नया अज्ञात की संगति में नहीं व्यतीत हुए हैं? इस तुम्हें पानती मममत्ता बाधित था मुझे? आत्मपात्री! तुम्हारे रूप में मेरे दिले एक अमृत आकर्षण है। तुम्हारे अद्भुत की इस इच्छा बड़ी अग्रिम में अज्ञातशुभ मृगगात्र ना ही था। तुम मरी हो कलक विकास के दिले ही नहीं, इन्साद पीढ़ी साधना और विश्व के दिले थी। तुम्हें इस बिना में अपनी आकांक्षा तथा स्वप्नों को पालन काय में संकट नहीं कर सकता। समस्त आर्पावर्त मेरे समर्थ पर बिना हाता बाधता है मैं मेरे मूर्खता का अपनी सेवा के पराधानों से प्रद्विष्ट कर हूँगा। मर्याद इतिहास-जेवक इस साहस और शौर्य के मूत्र में तुम्हारा नाम प्रकट करता।" अज्ञातशुभ अपने बाहुपाश में आत्मराजी को भरन लगा।

बड़े तीव्र संन्यास के रंश से आत्मराजी स्तन करने लगी—
"मैं भोव्दी में विवाह की पवित्र प्रतिज्ञा में संबद्ध हुई हूँ। वह अपने को अज्ञात के स्वर्ग से बचाने के दिले इस सब रूप में अचेष्टी एक कोने से दूसरे कोने में भगाने लगी।"

'तुमने एक दिन कहा सुपन्न प्रतिज्ञा नहीं की थी कि तुम मुझे दोहरा सब इस जीवन में किसी न भी अनुशासन करोगी।

"वह एक पवित्र जीवन की प्रतिज्ञा थी सब बाधा का मन के साथ कोई संबंध नहीं मममत्ता था। फिर आठ प्रकटित किसी रीति और विधान से वह संबन्ध नहीं हुआ। व अज्ञातशुभ बाहुपाश

शास्त्रपात्री की परीक्षा करते थे। और उसे समी से वह प्रशिक्षण करती पढ़ती थी कि वह उन्हें जोकर और मिनी से भी प्रेम न करेगी। इसी बाहुकारी, बंकाया और इतिहास से जब उसी में कुछ ही दिनों में। इस उदाहरण-यों जीवन से बचा हो गई सुन्दे, बर्बाद प्रिय हो गया सुन्दे। बैरागी के शास्त्रमन में ही जीवन का अविच्छेद अतीत का रही हैं। अपना जोरा-सा कात्त बनाया है मैंने। उसे ब्रिज-मित्र न करो। महाराज, मुझ पर वचा करो।"

मित्र की सतृप्तता में रत्नप्रासाद परिवर्धित था। प्रत्येक में सुर्मिद-शैल्य का दीपक चुपचाप अपनी ज्योति विस्फुरित कर रहे थे। शास्त्रपात्री कठोर इराद व्याप के बंगुल में बैठी हुई युगी के समान विरक्त हो रही थी। प्रभात-समय से उसने कुछ भी खाया नहीं था, जिम कारण उसकी विकणता और भी अधिक हो गई थी।

शास्त्रपात्री के प्रातःकाल से विरोध करने पर भी अज्ञातानु ने उसे अपने वक्षिण बाहुपाद में बंद कर दिया। मानसिक धारण का कारण शास्त्रपात्री ने एक दीपक की शिखा पर अपना जूता कातकर रख दिया, बाव बल उठे। उसका प्रेमी ने जान लिया ही। वह भवेत हो गई!

अज्ञातानु ने बराबर उसे जकड़ोरा।

शास्त्रपात्री न बंती।

"शास्त्रपात्री! शास्त्रपात्री!"

शास्त्रपात्री निस्तब्ध थी। मित्र के बाव प्राव बल चुके थे मुझ की मुञ्जस क्या था।

अज्ञातानु ने चित्तकुल होकर उसे शब्दा पर रख दिया, और बरबत की पुकारते हुए वह जोकर बाहर चला गया। मर की न्यायकता का चित्त की सतृप्तता के कारण वह हार चुका ही रह गया।

अज्ञानाशु की एक नवीन रानी का प्रहोष निरुद्ध ही था, वह हमारे अन्धाकार का बड़े मयायोग से मृग रही थी। आकाशवाणी की आर उसकी मम बेहवा लिख रही थी बड़ी देर से। हमका उद्धार करना निरिच्छत कर चुकी थी वह। अन्धमा पाने ही वह आकाशवाणी का अन्धनामस्वा में ही निहत्ता ले गई। एक दासी की महापला से हमने उस बेचना ही। आकाशवाणी उन्नी समय आने शीघ्र की रक्षा करने के शिष्टे निरुद्ध मागने का उद्यम हो गई अन्धमे ही। उसको जलिन-शह की भी कोई चिन्ता न रही। आहूति हमकी बड़ी विचर्य और लुप्त हो गई थी। रानी ने एक दासी का मन्त्राधिकारी कर दिया पापक के साथ।

आज्ञावाही निकल रही आदेश के बाहर । अपनी उम्मीद
इच्छा में रही औरता के साथ मार्ग के जम और तम की जीत
मिया ।

अज्ञातपुत्र का दृष्टांत के नाम आने-जाने में बड़ी दर डग गई। सब वह खींच, तो आनूराही से रिक्त कब को पाकर उमड़-झपड़ का र्जन न रहा। बरने भारा और मोह की धीरे-निश्चय ही रहा। रंग में यह कहरवा कर ली गई कि अग्नि से दग्ध आनूराही पीका से व्याकुल हाकर किमी कू में कू पड़ी है या जन में किमी पट के बर्तों और पंजों में बिछीन हा गट्टे है।

स्थान-स्वात पर बर्म के शब्द को पहचाने हुए अभिप्राय का व्यापकिक मे दून मेरकर धरने निर्मय का स्मरण दिखाया । वह बायली का बने ।

शापगनी में अनापनिहङ्ग न राजकुमार अंग का सुरम्य-रूप उमकें
चरणज पर स्वर्ण-मुद्राओं से पारण अंग दिया था। अनापनिहङ्ग
ने वह गतकन अमिताभ और उनके बीच को प्रदान कर दिया।

जनकम समिताम का धाम निर बिहार बना । उन्मेमि बर्षा

अनेक वर्षों-बात खटीक किए। त्रिभिक्तों के मुख-स्रोतों ने वहीं स्वयं धारण किया।

केतवन में धर्म की नवीन व्याख्या करते हुए अमिताभ का कुछ दिन हो गए। वैदिक धर्म-कादिकों ने जब नवीन धर्म को अपना प्रवचन शत्रु समझा। वे प्रत्यक्ष-पक्ष से उसका विरोध करने लगे पर उनकी कुछ भी शक्ति नहीं।

अंत में उन्होंने अमिताभ की प्रतिष्ठा का कर्तव्य करने के लिये बड़ा नीच मार्ग पकड़ा। उन्होंने चित्रा-नामक एक भद्रा नारी को धन का छात्राव देकर अपने घर में किया। रात्रि के समय जब कन-समुदाय बुद्ध के उपदेश सुनकर घर को छोड़ता तब चित्रा उसके लंब को धोर बांधो धोर प्रभाव-समय जब लोग उसका दर्शन के लिये जाते तब चित्रा कुछ कुंठक और विचित्र पदों हुए परिष्कृत किए हुए लंब से छोड़ती हुई वस्त्रधारियों का मार्ग में मिलती।

धीरे-धीरे कुछ महीने के पर्याय चित्रा ने जनता में यह प्रचार करना आरंभ कर दिया कि वह बुद्ध के द्वारा स्मरणा हो गई है। कुछ दिनों में ही मरी समा में बुद्ध के सामने लो ही वह कन्या आरंभ किया लो ही उसके नेट पर बैठा हुआ कन्या विविध हांकर मूर्ति पर गिर पड़ा और उसका कपट लुप्त गया। भगवान् की बीबा।

चित्रा लज्जा से भर-मिट गई। उसे जोर परचाया हुआ। उसने पाल्खियों के बहर्षक का उद्धारण किया और अमिताभ के चरणों में गिरकर क्षमा-याचना की। अमिताभ ने उसे धर्म की तरफ देकर उसके जीवन का तार हरण कर लिया।

मावल्ली से बुद्ध ने वास्तराम की भार प्रमाण किया। मार्ग में अनेक व्यक्ति को अपने उपदेशों से जगता उसका मुख कर्तव्य था।

मार्त में सार्पविष-नामक एक माझण ने उनको दसा, उनका भय स्वरूप दखकर वह उनक भिन्न भावा उनसे उन्हें गुरु के समीप से शिका-बीका पूर्ण कर घर को खीरता हुआ कार्य मझपारी समझा । अपने पुत्रा—“हे मझपारी ! तुमसे गुरु के भिन्न किम विषय की परिस्थता उपपन्न की है ।”

“मंमार-म्वारी अज्ञान और बंधकार के मारा करने की प्री कीर्तों की चिन्ता मिटाने और उनके दुःख के उपशम के लिये फिर रहा हूँ ।”

तुम मेरी प्री चिन्ता मिटाकर मेरे दुःख का मारा कर दोगे, ऐसा विरवाय हूँ मुझ ।”

“विरवाय मरैव ही कहहाता है ।”

“मैं तुम्हें जरती कुटी पर चढ़ाने के लिये आग्रह करूँगा । आज तुम मेरा आनिष्ण प्रदय कर मेरे दुःख का हरण करो ।”

अभिनाम नामक हाकर अपनी कुटी पर गण शिव-मंडली को बही पोंदकर ।

कुटी पर पहुँचकर मझण ने अभिनाम का कार्य घर आत्मन दिवा । कुछ कम-मूख और कम उबक सेवक के लिये समीप रखे । हाथ जोड़कर वह लहा हा गया और बोला—“ह तत्रस्त्री महानुभाव ! तुम मेरी चिन्ता का हरण करो ।”

“हे माझण ! जगत् का वह समस्त सुख एक कर्मिण बल्लु है, माराबालू है । इसकी आर्क्षणा ही चिन्ता का मूख है ।”

“मैं जगत् की किसी भी बल्लु का ज्ञान नहीं करता ।

तुम्हें बग है माझण । तुम मुझ के मार्ग ने दूर नहीं हो सक ।”

“मैं घर बंधन में हूँ । तुम फाट मरने हा मेरे मर की खीची । कहकर उसने पुकारा—“मार्गपी !”

एक परम कृपणनी बौद्धनी ने जज्जा-बिबट होकर मंद-मंद सगों के श्वेरा किया वहाँ पर और सुपचार करी हो गई।

मार्गद्विष बाबा—“यह कृ-गुण संरक्षा मेरी कम्पा मार्गदी है। इसका विवाह कर मैं अपने कर्त्तव्य-भार से मुक्त होगा चाहता हूँ।”

अभिषास के मुख पर मंद मुसकान प्रकटी।

“यह मार्ग-दीना है अक्षर, पर तुम्हें यह व समझना चाहिए, यह गृहस्थ व किसी काम में रूच नहीं है। तुम इसके योग्य पान हो, इसका वरण कर ले जाओ। यह ध्वनि काह में ही सिद्ध कर देगी, यह तुम्हारे अनुकूल पायी है।”

अभिषास उठ खड़े हो गए—“मैं अभिषास हूँ। मैं अक्षर हूँ, मैं बड़ा भी नहीं हूँ, मेरा विवाह भी नहीं होगा, मेरी गुरु भी नहीं है। तुम्हें मेरे समझने में पूछ लें। मैं किसी कम्पा का पानि प्रार्थी नहीं हूँ।” यह पैर बहाकर चले गए।

मार्गद्विष गुरु-विस्मय देखता ही रह गया।

मार्गदी भी देखती रह गई। अपने बहानाएँ एक धीरे-धीरे-मार्गदी बौद्धनी का अपमान कर जाते हुए उस अनुभव कर। उसके हाथों की छुट्टियाँ बर्बाद कर में प्रतिज्ञा की—“इसके मेरे कम का जो अपमान किया है, उसे मैं न भूलूँ। हे भगवान्, मुझे ब्रह्मा देना कि मैं ब्रह्मा की पुत्री-पुत्री प्रतिहिता हो सकूँ।”

संयोग-वश कुछ ही दिनों में वहाँ ब्रह्मदेवाधिपति उद्भव का पहुँचे। उन्होंने वहाँ मार्गदी को देखा और उसके कम के मोह में बह गए। मार्गदी राजा के वरण के द्विये जाह्नवित हो उठी और मार्गद्विष को उसे उद्भव की समर्पित कम्पा पदा।

असल करते हुए अभिषास बौद्धनी का पहुँचे। चारों ओर उनकी कीर्ति फैल गई। लोगों के समूह उनके पास आ-आकर वही वर में दीवित होने लगे।

मार्गशी ने महाराज के अंतःपुर में अवेरा का अज्ञान शक्ति की
मेथी में रपाव था। पछावती उद्वेग की एक दूसरी शक्ति का
नाम था। वह कुछ में जेह, रीज में अतुलनीय और श्रुति में अना
माराव थी। महाराज का अज्ञान अज्ञान में था। मार्गशी को कुछ
दिन परचान् ही वह अज्ञान हा अज्ञान। वह भीतर-ही-भीतर पछा
वती से अज्ञाने जागी।

समिताय के बीरगंजी-अवस का समाचार महाराज के अंतःपुर में पहुँचा। राजसभा में बहुत पहले ही सुभा का सुभा का। जार्ज में महाराज उदभव ने कोई ध्यान नहीं रिया।

महाशनी रघावती की उद्यान-बाग़ा हम दिन इसक प्रभाव की
सजा के बिने कृषो में प्रविष्टा कहिये सोचकर से बनी ।

रघुनाथजी बोली—“आजिब क्या हो गया तुम्हें ? ऐसे बोल-
तारिफ-स्वागत क्यों हो गई तु ? बीच बिठा घाबर तरे मन में बिदाम
करने लगी । मच बजा, क्या तु छिपी है मेम में लपटी हो गई है
जा जाधी से जबिक कबिरी दीव जाकर रस ही तुने मेरे सामना
में ।”

“मूक हो गई महाशयी ! क्या मैं कुछ महाशया था? हैं, उनका नाम कमिठाभ है । अब मेरे मित्रे उनका दर्शन किया है, मेरे मन की आशया ही कुछ हमारे अन्तर की हो गई है।”

“मेरे मन में भी बरकत इराक की छावना आग उठी है। बरकत काबल तक जा नहीं सकती मैं जिना महाराज की आज्ञा पर। वहीं नहीं रुका जा सकती तु वहाँ रुक दिज।”

“आपके प्रामाण्य के समीक्षकों को मैं तो यह विश्वास दिलाऊँ कि
मिहिर के पिता जानते हैं, पर कम मार्गों को छोड़कर बातावक है नहीं मुझारे
भाव से।”

५११ हिंदू बना लूँगी बल दावीर में ।”

पद्मावती अपने प्रकाश के प्राचीर में बिड़ बसाकर भिन्न अमिताभ के दर्शन करने लगी। एक दिन मार्गशी ने भी जब उस बिड़ से कुछ को देखा तो उसने उन्हें पहचान लिया। उसे अपना अस्मान स्मरस हुआ और उसकी प्रतिहिंसा जाग उठी। मार्गशी ने एक ही आवाज से अपने मार्ग के दो काँटों को चूर्य कर देने का उपाय मोच ही तो लिया।

बह पुनराव बत्सराज उद्दवन के पास गई और जाकर उनके कान में कहा—“बह मार्गशी तुम्हें क्या से आपके बगल में आकर कुछ हृदय संव्यासी पर प्रेम करती है। उसने उसको भिन्न देखने के लिये अपने कंध में एक बिड़ बनाया है।”

मार्गशी ने एक दिन वह बिड़ महाराज को दिखा भी दिया। उद्दवन के मन में संग्रह की रेखा गहरी पड़ने लगी, और मार्गशी पुनराव सचक-मनोरम होने की आशा में भिन्न नई रीति से महाराज के कान मरने लगी। रात-दिन लुचकने की लचना में लगी रहती थी।

महाराज उद्दवन का बीधा समाने की विधेय अमिच्छि थी। मार्गशी ने एक दिन एक विचित्र रूप में गाकर उसकी बीधा में एक बिड़ और वह मिड़ कर दिया, उसे फूमावती ने लपका है।

बह देखकर महाराज की डरनेवा पहाँ लड़ लगी कि वह पुनराव लेकर फूमावती के कंध के लिये उठान हा गए।

फूमावती अपने कंध के बिड़ से उस समय बाहर मार्ग में गाते हुए अमिताभ के दर्शन कर रही थी। उद्दवन ने बाध लौट दिया। इसल मार्गशी के लड़ने ने उन्हें उधर आकर्षित कर लिया।


मार्गशी को उस मर्ग ने उस दिया। मरते हुए उसने अपना हाथ स्वीकार किया। फूमावती कंध गई। बाग कल्प-अप्य हो उस बिड़ के मार्ग से बाहर लपका गया और कुछ में उलझकर अमिताभ के चरणों पर गिर गया।

अमिताभ ने उस तीर को उखाड़ा, उसमें महाराज वरुण का नाम पड़ा । वह सीधे राजभवन की चले, घीर महाराज के निकट गए । किमी ने इनका मार्ग रोका नहीं ।

पद्मावती की बहुत दिनों की यात्रा पूर्ण हुई । वह अमिताभ की शरण को प्राप्त हुई । वन्तराज वरुण को अमिताभ की सौम्य मूर्ति ने प्रभावित किया । उसने इनका अतिथि-सम्भार किया, घीर समस्त प्रसाद ने मसखे होकर इनके उपदेश सुने । महाराज उस नवीन विरह-वेसमय बर्ण की बाधा में प्रपत हुए ।



१६ पितृहंता


 जगदीश्वर साहब जी के एक कन्ये को सहायी हुई पैदा की
 भावस्ती का पहुँची अनाथबिहक के पास। अनाथबिहक
 उसे पढ़ाये पढ़ावन ही न मन्दा। आश्रमाधी ने उसके चरणों पर सिर
 रखकर कहा— 'मैं आश्रमाधी हूँ। मुझे अनाथबिहक के अनुचर ब्रह्म-
 प्रपंच से बहका ले गए। आपके निधन में अन्यायिनी और पविता हूँ,
 मुझे क्षमा करो।'

“शास्त्रवाणी ! इस विरह-रुद्धि में कोई भी बलित नहीं । उसने परमात्मा के विमल कल के मन्के पापों को जो बिना है । वह मोक्षम में विराजमान है । उसके दर्शन में पवित्रता, स्वर्ग में पापों से परित्राण, उसकी वाणी में समुत्त और उसके उपदेशों के अनुसरण में धर्मपद निर्वाण है । अन्तः, मैं तुम्हें उसके निम्न के चर्चणा ।”

“समिवाध कुह ! हाँ, मैं केवल-मात्र जगती की धाम्ना पर ली रही हूँ।”

“मैं अपना जीवन और धन, सब कुछ सब की जेब कर चुका हूँ। केवल तुम रोप भी, कबो, तुम्हें भी उस कम शक्ति-शायक शरीर में समर्पित कर दूँगा।”

समिताज की शरण में आकर आत्मदाही पाप-ताप से मुक्त हो
 पाएँ। उसने बुद्ध के उपदेशों का अनुसरण करने के लिये भारत के
 समस्त राज्यों की दृष्टि पर बिछा।

भायली से एक दिन समितान धर्म का बीज बोते हुए राजगुरु का जा रहे थे। मार्ग में करिबबलु, जपनी जम्म-भूमि, क इगने

को भी गए । उनकी जाति का एक दुर्बल राजा वहाँ नाममात्र का शासन-सूत्र संभाले हुए था ।

अमिताभ ने देखा, श्री धीर समुद्रि से परिपूर्ण वह राजमहारी घुनी बड़ी थी ।

उनका मित्र चार्च बोला—“चार्च, क्या देखना है हम कपिलवस्तु की । मुझे तो हमके अतीत चित्र की इस घटा के साथ तुलना करने से बड़ा कष्ट हो रहा है । ये खंडहर भी अब कुछ दिनों में मृष्टि में मिटकर चूर्तर्धन हो जाएंगे ।”

“उत्पात ही वस्तु है मानव, फिर भी यह व समयो, कपिलवस्तु भूमिवाह हो गई । हम कपिलवस्तु ने ही बाहर सारे चार्चार्च की एक किया है ।”

उस श्रेष्ठ राजा के साथ बाहर कुछ ने कहा—“हे शासक-वैद्य के सर्वमान्य महाराज ! तुमने वहाँ का वह मुक्त की साक्ष-गवाह पत्थर पर रक्षी है, क्या वास्तव में तुम्हें उनका अनुभव भी हो रहा है ?”

अमिताभ को यह बातकर शासक राजा मिहामन ने उत्तर दिया, और उनके आँखों पर गिर पड़ा ।

अमिताभ बोले—“हे राजन् ! मन से बाहर खेच और विमृष्ट राज-संसार में इमृत क्यों नहीं । हम या राज्य कर सका का तुम अक्षरही सम्राट् से थी । तुलना में बल हो जाओगे । फिर तुम्हें किसी मुक्त की चाहता व रहेगी । फिर तुम किसी निमित्तक व किए प्यासुक्त व रहोगे ।”

अमिताभ ने एक अंतिम राजा के मन में भी वैराग्य उपजा दिया । इसे भी मित्र बनाकर अपने मन में नमिष्ठित कर दिया ।

मार्ग में जाते हुए वह भी कुछ को बाह्य में रखा हुआ एक मुग दिनाई दिया । अमिताभ ने उसका वस्त्र लाकर लिए । मुग ने बड़ी कल्या-जति दृष्टि से उन्हें देखा, और वह भी जागकर किए गया ।

उसी समय व्यास जा पहुँचा। अत्यंत क्रुद्ध होकर उसने कहा— 'मेरे निर्दयी अनुज, तुम्हें क्या नहीं? वह युग मेरे और मेरे दत्तितार का आचार था। आज हम जब क्या करेंगे?'

"तू प्रती-माता की दया पर जीवित न रहकर विरोह और रक्त-विहीन पशुओं के जीवन पर जीव्य है। है व्यास! तू उदास्ता सीक। सत्य को पहचान। जैसे वह युग तेरे ज्ञान में पैदा था, ऐसे ही तू भी अंधिमूर्ति की कामना के डोनों में पैदा हुआ है, और आज-काली महा-व्यास किसी समय तुम्हें भी नियम बाधना। मैंने जैसे इस युग को मुक्त किया है, ऐसे ही तेरे जीवन की कोख बूँगा।"

व्यास अस्मित हाकर उन्हीं दिखने लगे।

अमिताभ ने प्रेम से भरी दृष्टि उसके फिर से पैर तक निक्षिप्त की— 'संशय छोड़ दे व्यास! विरासत कर। मैं वसुंधरा पर का पैर मिटाने वाले अहिंसा और प्रेम से आकाश करने आया हूँ।"

व्यास का स्यामपति मिथी। वह अपने अनुप-बाध छोड़कर, अहिंसा का भरी होकर अपने घर चला गया।

अमिताभ राजगुरु पहुँचे। उन्हीं समयों की महा अजातशत्रु और वैशम्पत के अन्धाकारों से पीड़ित हो कर, तथा उसका राजकोष [उन्हीं आकाशियों की धृति करने में अनर्पण हो गया।

वैशम्पत ने कहा— 'तुम मलय के आसी सप्तम् हो। राजा क्रुद्ध और नास्तिक हो गया है। उसे सिंहस्तम्भ-मुक्त कर देना कोई अकर्म नहीं। अब तो तुम उसे बंदी कर मलय के जंगल-वनो, और मैं मिथ्या का सब कर अमिताभ बूँगा।"

अजात का मुँह पर सस्रजता दिखाई दी।

वैशम्पत ने फिर कहा— 'तुम्हें शीघ्रता-से-शीघ्रता करनी उचित है। महाराज के मन में अवीर्य है, इसी से वह अपने छोटे पुत्र को

मगध का राजमुकुट देना चाहते हैं। तुम जो वह संगदेव के पति बनाए गए हो, यह तुम्हारा राजनिष्ठक नहीं, निर्वासन है।”

“तुम्हारी बातों से मेरा एक डबड़ा पड़ता है।”

“पर वे सत्य हैं, मेरा कोई स्वार्थ नहीं। राजनीति की कूट बाबों और चातुकारों के बहानों में मेरे मित्र का सम्मान नष्ट किया जाय, यही चाहता हूँ मैं।”

“ता बसो, हम शीघ्र-से-शीघ्र मगध पर चढ़ाई पर हैं।”

“यह जोष का आवेद्य है, जिसका परिणाम अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन होगा। इसे दबाकर पीठ से काम लो। तुम हाथ मगध के राजमंदिर में प्रवेश करो, महाराज की बंही बना उसके शत्रु होकर राजमहल के बाहर निकलो।”

“क्या मगध की प्रजा सुरक्षित इसे सहन कर लेगी?”

“प्रजा नहीं और विजयी का शाय देती है। मंत्रियों का संग्राम पर और प्रमुखा है।”

“पर अमितान का विरोध अब नहीं कम रहा है मगध में।”

“हम एक बड़ी सेवा पुरुष कर लेंगे वहाँ, राज्य के बेहम और सुगहरी छायाओं में बीजक। राजपूत के बाहर उसे दिया जाए। छावरकला करने पर वह हमारी छाया का हीनी पड़ेगी।

अपने बहानों की रचना कर अज्ञातगुरु ने भारती-आक्रमण का वहावा दिया। एक-एक-महिम कन्हों राजपूत में प्रवेश किया, और मगध-पूत बह राजा की बंही का दिया। प्रजा में बार अज्ञातगुरु बूट रही जिसे अज्ञातगुरु देवदत्त और उनके महापद शीघ्र ही जान का लेने में समर्थ हो गए।

अज्ञातगुरु को मगध के मिहामन वा विरा दिया गया। अब देवदत्त अपनी, दुष्टा की कृति के अर्थ में जागा। अपने एक दापी को

सदिरा पिछाकर उन्मत्त करायी और उसे संभ के मीठे चुम्बना दिया।

हामी चारों ओर उल्लास करने लगा। मिथ्यागत प्रसन्न होकर हृष्ट-उत्तर भागने लगे। अमिताभ ने उस पाण्ड को देखा, जो हिंसा में मरा हुआ उनकी भार हीनता का रहा था।

अमिताभ विचलित न हुए ठिठ-भर भी। अपने आसन में अचल, मुद्रा में अविना और भाव में अभिकृत हो रहे वह।

उनके शिष्य काश्यप और आर्षद विहाय एक वृक्ष की ओर से—
'गुण्येय ! रक्षा कीजिए !'

अमिताभ ने हँसकर कहा— 'हमारे मन की हिंसा के काश्यप ही बाह्य जन्म में हिंसा का मन है। काश्यप ! मन को निर्मल करो, आर्षद ! मन को प्रेम के उद्धार भाव से छुड़ करो। यह तो नाम के समाप्त शक्ति और सौम्य हो गया !'

शिष्यों ने देखा, अमिताभ की दृष्टि पड़ते ही उस मर्त्योन्मत्त हाथी का सारा श्रेष्ठ उड़ गया। उसने सुटने देकर उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया।

विप्लव-मग्न होने पर बेबद्ध ने तीस वज्रुर्ध्वों को अमिताभ के मन के छिमे प्रभु बन देकर शीघ्र किया, और कहा— 'असले मारे जाने पर इतना ही धन मुझें और मिलेगा। जिसके बाह्य से उन्मत्त मृत्यु होगी इतना ही धन उसे भी और होगा ।'

तीनों वज्रुर्ध्वी उस वृक्ष के अन्तर्गत को मारने के छिमे वज्रु-बाह्य सभाजक बनने। पर उनकी सी नहीं दृष्टा हुई। लो-लो ने अमिताभ के आचम के निष्ठ होते गए, लो-लो उनके मन का भाव बढ़ाता गया। कुछ दूर और चढ़ने पर उन्होंने देववृक्ष का दिया हुआ जन्म और वज्रु-बाह्य सब दूर फेंक दिए।

बुद्ध के चरणों पर गिरकर उन्होंने अपना पाप प्रकट किया, पतन-जाल किया, और जमा मीठी। उन्हें तुरंत ही जमा मित्र पाई।

बभ्रुर्धनों ने अपनी हिमा-वृत्ति का सर्वत्र का बिन्दु त्वागच्छ अभिषास की शरण ली ।

बुद्ध का जब महाराज विजितार के बंदी होने का समाचार मिला, तो उन्होंने अजातशत्रु के पास एक शिष्य को भेजकर यह कहवाया कि जाया के समान एक बहिष्कृत मुक्त के लिये रिना को बंदी करना उचित नहीं ।

अजातशत्रु बहुत क्रुण्ण हो उठा इससे । उसने प्रत्युत्तर में कहा—“यदि तुम शान्ति-पूरक न बनोगे, महाप्रायश्चित्त के विरुद्ध विज्ञा लाओगे, तो तुम राज्य के बाहर निकाल दिए जाओगे ।”

अजातशत्रु ने फिर देवदत्त को बुलाकर कहा—“देवदत्त, तुम्हारा प्रतिहृद्दी अभी ठक लीवित ही है । वह मर विरुद्ध भी बाप्पी कैंपी कर रहा है । हमकी ओपधि न करोगे क्या शीघ्र ही ।”

“क्यों नहीं महाराज । मैंने कई प्रयत्न किए हैं, वे सब विफल हुए हैं । कारण मैं जानता हूँ । हम बार में किसी का विपुल न करूँगा, स्वयं ही जाओ बहूँगा, फिर दखता हूँ वह अपने का अभिषास कहनेवाला कैसे इस बरती पर मौन लेता है ।”

एक दिन बुद्ध जब मंड के बाहर एक वर्षा की तपहरी में हाँक का रहे थे, देवदत्त मरुछ ऊपर वर्षा में विप्रे-विप्रे उनका अनुसरण कर रहा था । पर्वत के शिखर पर एक बहुत बड़ा पत्थर था, ठीक उसी नीचे मार्ग में बुद्ध जान का था । देवदत्त ने बुद्ध की गति, स्थान धीरे धीरे के सुदृष्टि के समक का अनुमान कर उस विशाल शिखर का भीष गिरा दिया ।

शिष्यगण विज्ञा बडे—“महाराज ! दर जाइए, महाप्रायश्चित्त शिखर कायक ऊपर गिरना ही चाहती है ।”

वह वे धीरे-मौन अभिषास के पद विचलित नहीं हुए । वे न वेग से जाते का ही बडे, न संशुक्ति हाँक पीछे का ही लिये ।

मदिरा पिनाकर उग्यत्त कराया और उसी संज्ञ के भीतर सुकृपा दिया ।

हामी चारों ओर उपाय करने लगा । शिष्यागण व्रत होकर इधर-उधर भागने लगे । अमिताभ ने उस पापु को देखा, जो हिंसा में मरा हुआ इनकी ओर होड़ा आ रहा था ।

अमिताभ विचक्षित न हुए ठिक्-भर भी । अपने जामन में अण्ड, मुद्रा में अहिम और भाव में अविच्छेद ही रहे वह ।

इनके शिष्य काश्यप और चार्चद बिहाय एक वृक्ष की ओर से—
“गुरुदेव ! रक्षा कीजिए ।”

अमिताभ ने हँसकर कहा—“हमारे मन की हिंसा के काख ही बाह्य जगत् में हिंसा का भव है । काश्यप ! मन को निर्मल करो, चार्चद ! मन का प्रेम के उदर मांस से शुद्ध करो । वह तो गाव के समाज शक्ति और सौम्य हो गया ।”

शिष्यों ने देखा अमिताभ की छवि पहले ही उस महोत्सव हापी का सारा प्रीति उड़ गया । उसने घुड़ने देकर उनके चरखों पर अपना मस्तक रख दिया ।

विपन्न-मन्त्रण जाने पर देवदत्त ने तीस बलुर्बियों को अमिताभ के चर के लिये प्रभु चर देकर प्रीति किया और कहा—“इसके मारे जाने पर इतना ही कम दुर्मे और मिसेया । जिसके बाव से उसकी सन्तु होगी इतना ही कम उसे भी और हूँगा ।”

तीनों बलुर्बारी उस दशा के अचछार को मारने के लिये बलुच-बाव सँभालकर चले । पर उनकी भी चही हुआ हुई । ज्यों-ज्यों वे अमिताभ के घामन के निकट होते गए, त्यों-त्यों उनके मन का भाव बढ़ता गया । कुछ दूर और चले पर उन्होंने देवदत्त का दिया हुआ वृक्ष और बलुच-बाव सब दूर फेंक दिए ।

हुद के चरखों पर गिरकर उन्होंने अपना पाप प्रकट किया, पस्चा-चाप किया और जमा माँगी । उन्हें दुरत ही जमा मिला गई ।

अनुपमों ने अपनी हिमा-वृत्ति का सर्वत्र क बिन्दु लगाकर समितान्न को शरभ की ।

तुल्य का जब महाराज विरिसार क बंदी होन का समाचार मिला, तो उन्होंने अमात्यगुरु के पास एक शिष्य को भेजकर यह कहवाया कि वाया क समान एक कहिरत सुन क बिन्दु पिता को बंदी करना उचित नहीं ।

अमात्यगुरु बहुत क्रुशित हो उठा इससे । उसने प्रत्युत्तर में कहा था— 'यदि तुम शक्ति-पूरक न बने, महापापिपति क बिन्दु जिह्वा काओगे, तो तुम राज्य क बाहर बिकाऊ दिए जाओगे ।'

अमात्यगुरु ने फिर दृष्टि को बुझाकर कहा— 'देवदत्त, तुम्हारा प्रतिद्वंद्वी अभी तक जीवित ही है । यह मेरे बिन्दु भी बाकी हैं ही कर रहा है । इसकी घोषणा न करोगे क्या शीघ्र ही ?'

'क्यों नहीं महाराज । मैंने कई प्रयत्न किए हैं, वे सब विफल हुए हैं । कारण मैं जाबता हूँ । इस बार मैं किसी को निपुण न करूँगा, स्वयं ही जागे बूँगा, फिर दृष्टता हूँ वह अपने को समितान्न कहनेवाला कैसे इस बरती पर खान होता है ।'

एक दिन तुल्य जब मंद क बाहर एक पर्वत की तलहटी ल हाकर जा रहा थे देवदत्त मराठा ऊपर पर्वत में छिपे-छिपे उनका अनुसरण कर रहा था । पर्वत क शिखर पर एक बहुत बड़ा पत्थर था, ठीक उसका नीचे मार्ग में तुल्य जान को था । देवदत्त ने तुल्य की गति, स्थान और पत्थर के तुल्यके के समान का अनुमान कर उस विशाल शिखर का नीचे गिरा दिया ।

शिष्यगण बिह्वल उठ— 'महाराज ! उधर जाइए, महावक शिखर आपका ऊपर गिरना ही चाहती है ।'

पर वे भीर-मौल्य समितान्न के पद विचलित नहीं हुए । वे न बेग से जागे का ही बने, न संतुष्ट होकर बीपे को ही मिले ।

वह जिन्हा बह सुकुमार शिष्ट की शक्ति उनके कर्णों पर सादर एक गई । अभिषेक इसका बोले—“मैं जानता हूँ, अब नहीं रोव केया है ।”

शिष्टों ने बुझ—“क्यों जोर नहीं ?” के उनके धर्म-धर्म का निरीक्षण करने लगे ।

“क्यों नहीं ?” अभिषेक ने सहज भाव से कहा ।

शिष्टों ने देखा, उनके चारों पैर के जूँटों में जोर का रई भी । दूसरे दिन उसमें बहुत शोक का रंग । अभिषेक अब न सक । उस दिन उसका विचार उस शिष्टों की भ्रातृभ्रातृ के बगल से नहीं अभ्यस्त रहे जाने का था ।

आर्य धर्म-धर्मिक जीवन को बुझा जाया । जीवन लक्षित के विचारों का स्वागत था । वेर में दूर-दूर उसकी कपाति थी ।

जीवन ने अभिषेक के चरम पक्षक कहा—“जगत्वा, बुझ का कैसी पीड़ा ?”

“जगत् की पीड़ा जीवन ! के पक्षक ही का पीड़ा के चरम हैं । इन्हीं तक यह पीड़ा जाने से अधिक हो जाती है, सब एक जाने में अधिकतर । यदि सब की इस पीड़ा से मुक्त एक सर्व, तो कोई पीड़ा नहीं । जीवन, मुझे कोई पीड़ा नहीं क्योंकि मैंने जगत् में इस-विहीनता का अनुभव किया है ।”

जीवन ने अभिषेक के दोबो चरम पक्षक का पर अपना मस्तक रख दिया—“मैं बुझ की राय हूँ । मैं आपके चेह की पीड़ा दूर करेगा, जगत् मेरे जगत् की भाषा हरक कीविष ।”

जीवन बीह बर्म प्रत्यक्ष का अभिषेक का अभ्यस्त सब हो गया । धरत समय में ही जीवन के उपचार के अभिषेक के चरम की पीड़ा दूर हो गई थीर वह जगत् की ओर बसे गए ।

एक कि रकते समय दूरदूर की कम्प में वह दस-सी उठी,

पर उसकी कोई चिंता न कर वह होका हुआ अजातशत्रु के नाम काकर बाबा—“मैं उस समास का पुत्र हूँ महाराज !”

पर दण्डवत् कर वह चर्कर रीति ही भूमि में मिचकर गढ़ हो गया !

अमिताभ के राजपूत से कम जान के बरबाद अजातशत्रु ने बड़ीपूर में महाराज विधिवत् का आज्ञा और उस होमो बंद कर दिए । महारानी किसी प्रकार लुका-छिपाकर वनरो घाणार पहुँचा रही थी । अजातशत्रु ने महारानी का प्रवेश भी वहाँ बंद कर दिया ।

पिता को बंदी करनेवाला राजपूत विषय मांग और मित्रवर्ती राजाओं के साथ संबंध विच्छेद में मूढ़ा रह गया । एक दिन दम्पती ने आकर अपना सचिप कहा—“महाराज, वही महारानी के पुत्र-रत्न अज्ञान हुआ है ।

अजातशत्रु माथो ख्या से जाग उठा । उसका हृदय की सीमा न रही । उसने बहुमूल्य रत्नहार उठारकर दाम्पती को दे दिया—“ले दम्पती ! हम हर्ष-समाचार के क्षिमे तेरा उबहार । वह मेरी प्रपत्नी का परिचायक है । क्या किसी और को भी ऐसी प्रपत्नी मिली होगी ?”

“क्यों नहीं । जिस दिन आपका जन्म हुआ होगा, उस दिन आपके पिता भी ऐसे ही दर्शन हुए होंगे ।”

“पिता !” अजात ने चीत्कार बोली । वह होका हुआ बड़ीपूर में गया । उसने दत्ता उसके पिता महाराज विधिवत् भूमि पर बंदे हुए हैं । अजात ने उन्हें उठाकर बुझाया—“पिता !”

पुत्र की प्रेम-सुधार का उत्तर देनेवाले कम हुए महाराज के अश्वों से प्राण फिर न छीटने के क्षिमे चले गए थे । अजातशत्रु फिर बौट कर रह गया । चारों ओर एक अवाक्य अशक्ति माथा धूमिली होकर हमका प्रसन्न करने के क्षिमे बाधने लगी ।

असह्य होकर अजात ने देवदत्त को उठाने के लिये दूत भेजा । दूत ने छोटकर विनम्र की—“महाराज, राजकुमार देवदत्त पर अजात गिर चुका है, और कबकी बड़ा अत्यंत लोचनीय है ।

अजात ने दूत भेजकर यह खबर क्राई कि अमिताभ कहाँ हैं । दूत ने आकर कहा—“महाराज, अमिताभ घनेक दिन हुए, संभवित यहाँ से बिदा हो गए हैं । पास-पड़ोस में भी उनका खोज पता नहीं है ।”

वह पिता का बातक अपने पाप के नाश से बिल होकर दूसरों के बिचारने लगा उनका की मूर्ति । विज्ञान-उत्तर, मंत्री-परिषद्, राज्य-प्रजा, इष्ट-मित्र, इष्ट-शत्रु, श्री-संघ, दुर्ग-आचार्य, जेना-सेवक, इनमें से कोई भी उसे छाँटि न दे सका ।

मैराजी में अमिताभ आज़पाजी के आज़बान में खड़े । जब आज़पाजी ने वह सुना तो वह जनेक दिनों की आया-पुष्टि में आबंद पुनर्जित होकर रथ पर चढ़कर उनके दरवाज़ों को खड़ी । मारा मैराजी के किन्हीं राजा भी उनको निमंत्रित करने जा रहे थे ।

आज़पाजी ने साराही से और भी शीघ्र रथ हाँकने का अनुद्योग किया । एक स्वाय पर उनका रथ एक किन्हीं राजा के रथ से ऊपर गया ।

राजा बोला—“हे अमिताभिनी नारवलिने ! किम प्रेमिक के लिये तू यह अमिताभ कर रही है जो तेरी और तरे रथ की दृष्टि मृग पर खड़ी है ?”

आज़पाजी बोली—“हे राजपू, सचमुच ही मैं प्रेम की पगड़ी हो गई हूँ । घनेक वनों से मैं किम प्रेमिक की प्रतीक्षा कर रही थी वह आया है आज । अपनी हर्ष की अनुपम में मैं खड़ी हो गई हूँ ।

आज मैं उसका बह अलग सेम पाऊँगी, जो अब और बेचल होगी का प्रयत्न कर बिराह में प्लाज है । त्रिभू में मैं न करी बिरा है न मिथक ।”

आधराक्षी अपने रूप में आगे बढ़ गई ।

क्षिप्रिणी राजा अपने साथियों से कहने लगा — “वह विष्णुमित्र आत्र इनके मारत और मातृक बेरा में क्या अमिताभ क पाप है तो नहीं आ रही है ?”

आधराक्षी अमिताभ के शरीर का परिचय हुई । हमने उन्हें सप्त सहस्र अपने वा निर्मिता किया । कुछ भी हमें रीतिर किया । हम समय क्षिप्रिणी राजाओं ने भी उन्हें निर्मिता किया । वर अमिताभ पहले आधराक्षी के ही बह गई । आधराक्षी निष्पत्ती हो गई हमने अपना सर्वस्व और आधराक्षी सर्व का हार कर दिया ।

अमिताभ अनामिका के आधराक्षी पर आरली का गण । व अपना सर्वस्व सर्वस्व ११ अमिताभ का अन्त्य भद्र हो गया ।

कृष्ण-आमक एक सर्वस्व मदिछा के एक ही पुत्र था, समय क्षुब्ध हो गई । पुत्र-विवाह के इन राज्य ईश में बह मदिछा आधराक्षी-आमक विनाशित करने लगी अपने शत्रु से । बह क्षिप्रिणी महार हम शत्रु के शत्रु का अपनी लानी से रिद्धा करने का प्रयत्न न हुई । कुछ क्षणों में हमसे कहा — “अब भगवान् कुछ सर्व-शत्रु-अन्त्य हैं, बह लुहार पुत्र का जीवन-दान द मकर है नहीं तो कोई भी नहीं ।

कृष्ण अमिताभ को आत्रिणी हुई उनके पाप छोड़, और मृग पुत्र का उनक शत्रु पर लपक जाती — “हे भगवान् ! हम क्षुब्धिनी हो रहा हूँ । मर पद एक ही पुत्र भरे जीवन का मन्त्र, चंभी मन्त्र है, हमें जीवन-दान करो ।”

हो क्षुब्धि ! मैं रिद्धा हूँ हमें ।” अमिताभ बोले — “वर

बहु बाहिर। कुछ राई के दाने, ऐसे बार में जामा, जहाँ कभी किसी की धुलु हुई न हो।”

“भगवान् की जय हो। मैं जे जाती हूँ जमी।”

कृष्ण उस बाबक को जाती से अगाऊ राई के दानों की ओर में खड़ी। वह एक द्वार से दूसरे द्वार, एक बार से दूसरे बार, एक दोसे से दूसरे दोसे एक जगह से दूसरे जगह को अपनी कन्ध कपा घुमाती हुई राई के दानों की मिठा माँगती हुई खड़ी।

कोई भी घर ऐसा न दिखा, जहाँ उसकी ईप्सित मिठा मिलती। किसी ने अपने पिता किसी ने पति किसी ने पुत्र किसी ने भ्राता, किसी ने मगिनी किसी ने माता की धुलु की कन्ध कपा बड़े घुमाई। कृष्ण ने अलुमब मिठा, सारा जगत अपने त्रिप के बिबोध से ढुकी है। उसके हृदय का भार हलका पड़ा। अपने अपनी गोद के भार को भी हलका किया। वह धीर धीर स्तुतियों से समस्त की चार खड़ी। अपने अपने धृत पुत्र का अंतिम संस्कार किया और अमिताभ के बिम्ब हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।

“जहाँ तुम राई के दाने हैं” अमिताभ ने पूछा।

“हाँ देव! मुझे उससे भी अधिक मूल्यवान् बहुत मिठा गर्त, उसके आगे फिर राई के दानों का अनुसंधान विस्मृत हो गया।”

“क्या?”

“धुलु का बिरहप्यायी दौरा हुआ मैंने। सभी-निर्बल, राजा-रंक, अश-बिज, मित्र-शत्रु, श्री-गुरु, गीत-रसाम, बृद्ध-बाबू, सभी के प्रालम्भियों को अपने धीन रक्खा है। मैं गूढ़-गूढ़ खूनी किसी। सभी स्पर्शों में मैंने जसकी क्योस्ता का मर्म-बैधी हाहाकार घुमा। समस्त पुर और जगहों को अपनी ही पीड़ा से प्रतिध्वनित मुखर नेरी बेदना मिह गई। मैं अपनी ओर में राई के दाने न पा सकी पर जो कुछ मिठा, उससे उनका प्रयोजन ही फिर न रहा। मैंने मोद

बोवकर अधिराजनी के किलारे करने हृदय के टुकड़े का विनर्मित
कर दिया ।”

“कृप्य ! तू भीतांगवा ह ! तूने विरवविजयिनी मृगु का देना दे,
तू उस पर भी विजय पा सकती है ।”

“कैसे ?”

“समस्त प्राणी-मात्र के शिष्य माने हृदय के प्रेम का विरजित
कर ।”

“मैं क्या विस्तार करूँगी । हे अमिताभ ! मुझे शरण हो ।



२० शत्रु को क्षमा करो

शत्रु-शोषण का दुःख राहुक एकदिन प्रकट हो गया था, तथापि इसके शोक का निर्माण नहीं हुआ था। उसे सत्य का महत्व था, वह बहुत ही असह्यशील था। एक दिन जब राहुक एक पात्र में जलियाँ के बाद-महाकाव्य कर रहा था तो उन्होंने इससे पूछा — 'क्या वह कल पीने योग्य है ?'

राहुक, ने कहा — 'नहीं, वह बहुत ही और कुछ से अधिक है, कदापि पीने योग्य नहीं ।'

'राहुक, देखो ही अधिक तुम भी हो। अत्यंत शिष्ट ने तुम्हें अधिक कर दिया है। शिव का एक शिष्ट-संस्कारों में तुम परिवर्तित हो। तुम एक महाकाव्य के लीन हो सही। तुम्हें यह पौष्ट भीतर रहन रहता है सही इससे क्या होता है।

राहुक विगत मस्तक कहा विचार करने लगा ।

'क्या हम पात्र में पीने योग्य कल नहीं करा जा सकता ?'

'भरा जा सकता है।

'कैसे ?'

'इसे मजिद ।'

'तुम्हें इस शरीर की पात्र का सम्बन्ध करने की आवश्यकता है। इस शिष्ट पर शासन करो। इसके दो तुल्य हैं। भीतर की ओर वह शिव की प्यासी है, और बाहर शासन का बाह्य रहती है। केवल सम्पत्ति ही जाने पर हमका दूसरा मुक्त स्वर्ण बंध हो जायगा। शिव सम्पत्ति ही तुम्हें सम्बन्ध बाधा प्राप्त नहीं हो

सकती है। तुम मौन-मत का अवलंबन करा, इससे तुम्हारी जिद्द कासित होगी और तुम इस मित्र देश के योग्य पात्र बनोगे।”

“मैं मौन-मत का शासन करूँगा।”

“अवरण राहुक। यह मेरा अंतिम अवधान है तुम्हारे विषे। मैं बुरा हो चुका, और नहीं जानता किन समय यह प्रतीप निर्वापित हो जाय।”

राहुक ने अमिताभ के चरणों में गिरकर बायीं को विनम्र करन की प्रविष्टा की। वह दूर एक एकल बिहार में चला गया। वहाँ उसने कुछ दिन मौन रहकर मन का संयमन किया। उसने जिद्द पर विनम्र पाई। केवल एक जिद्द के शासन से ही उसका मन बलवान् हो गया, और शेष हरिर्वा शय। ही उसकी बराबरिनी हो गई। उसकी मेधा जाय उठी और शेष मित्रों की संझी में उसने आहर बाबा।

अचानक एक दिन अमिताभ का साहित्य और मौद्गलापन की शृंगु का समाचार मिला। वे दोनों उनके प्रधान मित्र थे। धर्म के अवलंबन और शासन की ओरि दिक्की करन में वे अमिताभ की सुझावों के समान थे। इसके परन्तु ही उन्हें महारानी प्रभावती और जीवन-संगिनी बराबर के शासन-संसार का संवाद दिया गया।

अमिताभ ने आनंद का बुझाकर कहा—“आनंद! मैं जब बुरा हो गया। ऐतसीय करे जगातन में इस ज्ञान की ओरि को प्रसारित किया। अब यह भार तुम्हारे स्वयं पर रहता है।”

आनंद शाक-बिद्वज हो बाबा—“वहीं अमिताभ बुरा करन तक हमारे साथ रहे।”

“तथागत देह-धर्म की अवलंबन नहीं करते।” कहकर अमिताभ ने आनंद के माह की दूर किया।

विना की शृंगु के परन्तु अजातशत्रु बुरा प्रकार का विविध-प्र

२० शत्रु को क्षमा करो

शुशोमरा का पुत्र राहुक यद्यपि भयङ्ग्य महाबल बन मित्र हो गया था, तथापि उसके सीक का निर्माण नहीं हुआ था। उसे सत्य का महत्त्व प्राप्त न था वह बहुधा असत्यवादी था। एक दिन जब राहुक एक पात्र में अमिताभ के बाह-महाबलम कर रहा था तो उन्होंने उससे पूछा—“क्या वह बल पीने योग्य है?”

राहुक ने कहा—“नहीं, वह शक्ति और पुरुष से अधिक है, कहापि पीने योग्य नहीं।”

“राहुक ऐसे ही अधिक तुम भी हो। अतःवत् मित्र ने तुम्हें अधिक कर दिया है। जिस कारण मित्र-मंडली में तुम परिहर्ष हो। तुम एक महाराज के वीर हो सही, तुमने वह पीठ नीचे रहन रक्खा है सही इससे क्या होता है।”

राहुक विषय महत्त्व क्या विचार करने लगा।

“क्या इस पात्र में पीने योग्य बल नहीं मरा जा सकता?”

“मरा जा सकता है।

“कैसे?”

“इसे मीनकर।”

“तुम्हें इस शरीर-रूपी पात्र का उपयोग करने की आवश्यकता है। इस मित्र पर शासन करो। इसके दो मुख हैं। भीतर की ओर वह सत्य की प्यासी है, और बाहर असत्य का जाह्नव रचती है। केवल सम्पत्तिक हा जाने पर इसका दूसरा मुख स्वर्ण बह हो जायगा। बिना सत्यगीत हुए तुम्हें सम्पत्ति काया प्राप्त नहीं हो

सकती है। तुम भीम-मत का व्यवहार करो, इससे तुम्हारी शिष्टा
कासित होगी और तुम हम मित्र देश के शत्रु पात्र बनोगे।'

'मैं भीम-मत का शस्त्र चर्करा।'

"अपराध राहुज। यह मेरा अंतिम व्यवहार है तुम्हारे विषे। मैं
बुद्ध हो चुका, और नहीं जानता, किन समय वह प्रतीति निर्धारित हो
जाय।"

राहुज ने अमिताभ के चरणों में गिरकर बायीं को बिछुड़ करने की
प्रतिज्ञा की। वह दूर एक एकल विहार में चला गया। वहाँ उसने
कुछ दिन भीम रहकर मन का संवसन किया। उसने शिष्टा पर विचार
बाई। केवल एक शिष्टा के शासन से ही उसका मन बचसा हो
उठा, और शेर हृदयी स्वयं ही उसकी चरचर्चिनी हो गई। उसकी
मेधा जाग उठी और श्रेष्ठ मित्रों की मंडली में उसने आर
वाया।

अचानक एक दिन अमिताभ को शारीर्य और मौर्यशासन की
शत्रु का समाचार मिला। वे जाना उनके प्रभाव विषय थे। धर्म के
अपमर्त्य और शास की शक्ति विस्तीर्ण करने में वे अमिताभ की
मुद्राओं के समान थे। इसके परचाह ही उन्हें महाराणी प्रजापती और
भीम-मंगिनी अपराध के शास-संवरण का संवाद दिया गया।

अमिताभ ने आनंद का बुझाकर कहा—'आनंद! मैं अब बुद्ध
हो गया। वैशाखीय वर्ष जगतम में मैं हम ज्ञान की शक्ति का
प्रसारित किया। अब वह भार तुम्हारे स्वरूप पर रखा है।"

आनंद शोक-विह्वल हो बाबा—'नहीं, अमिताभ बुद्ध कल्प तक
हमारे साथ रहें।"

'तथागत देह-धर्म की अवधारणा नहीं करने।' कहकर
अमिताभ ने आनंद के मोह को दूर किया।

विना की शत्रु के परचाह अवाक्यशुद्ध प्रकार का विहित-या

२० शत्रु को चूमा करो

शत्रु शोभा का पुत्र राहुब बघरि पञ्चमा ग्रहण कर सिद्ध हो गया था, तथापि उसके शीश का निर्माण नहीं हुआ था। उसे अन्य का महारण शायद न था वह बहुत असमर्थ ही था। एक दिन जब राहुब एक पात्र में अमिताभ के पाद-पूजा करने रहा था, तो उन्होंने उससे पूछा—“क्या यह सब पीने योग्य है?”

राहुब, ने कहा—“बही, यह शक्ति और तुम से अधिक है, क्यापि पीने योग्य नहीं।”

“राहुब ऐसे ही अधिक तुम भी हो। असंभव सिद्ध ने तुम्हें अधिक कर दिया है। जिस कारण मित्रमंडली में तुम परिहार्य हो। तुम एक महाराज के शीश हो सही, तुमने यह पीठ नीचा रहन रखा है सही हमसे क्या होता है।”

राहुब बिना मन्त्रक कहा बिचार करने लगा।

“क्या इस पात्र में पीने योग्य सब नहीं जरा का सकता?”

“मरा जा सकता है।

“कैसे?”

“इसे भोजन।”

“तुम्हें इस शरीर-कमी बात को उद्घाटन करने की आवश्यकता है। इस सिद्ध पर शायद करो। इसके दा मुक्त हैं। भीतर की धार वह हम की प्यारी है, और बाहर अस्व का बाह्य रखती है। केवल सम्पत्ति का जाने पर हमका हमारा मुक्त सर्व्व कह हो आभवा। बिना सम्पत्ति के हुए तुम्हें सम्पत्ति बाधा प्राप्त नहीं हो

सकती है। तुम मौन-यत्न का व्यवर्तन करो इससे तुम्हारी शिष्टा
कासित होगी, और तुम इस मित्र देश के योग्य पात्र बनोगे।'

"मैं मौन-यत्न का पात्र बनूँगा।"

"अब वर राहुच। यह मेरा अंतिम अवचन है तुम्हारे लिये। मैं
बुद्ध हो चुका, और नहीं जानता, किम समय वह प्रदीप निर्धारित हो
जाय।'

राहुच ने समिष्ठाम के चरणों में गिरकर बायीं को बिछुड़ करने की
प्रतिज्ञा की। वह दूर एक पृथ्वी दिहात में बसा गया। वही उसने
तुप दिव मौन रहकर मन का संयमन किया। उसने शिष्टा पर विजय
पाई। कबल एक शिष्टा के शासन से ही उसका मन बलवान् हो
बसा, और शेष इक्षिणी स्वतः ही उसकी वरावर्तिनी हो गई। उसकी
सेवा जाग उठी और श्रेष्ठ मित्रों की संदली में उसने आदर
पाया।

अचानक एक दिन समिष्ठाम का सारिपुत्र और मौद्गलायक की
मृत्यु का समाचार मिला। वे जाना उनके प्रजापति शिष्य थे। धर्म के
व्यवर्तन और शास की ज्योति विदीर्ण करने में वे समिष्ठाम की
भुजाओं के समान थे। इसके परचात ही उन्हें महाराणी प्रजावती और
जीवन-संगिनी बरौषा के प्राय-संसार का संवाद दिया गया।

समिष्ठाम ने धामर का श्रुतार्थ कहा—“धामर! मैं जब बुद्ध
हो गया। वैशाखीय वर्ष समाप्त होने इस ज्ञान की ज्योति को
प्रसारित किया। अब यह बात तुम्हारे स्कंध पर रहना है।”

धामर शाक-विद्वज्ज हो बाधा—“नहीं, समिष्ठाम एक कल्प तक
हमारे साथ रहें।”

“तथागत देह-धर्म की व्यवस्था नहीं करने।” कहकर
समिष्ठाम ने धामर के मोह को दूर किया।

विना की मृत्यु के परचात प्रजापति एक प्रजा का विधि-मा

सकती है। तुम मौन-व्रत का अवलंबन करो, इससे तुम्हारी जिह्वा कासित होगी, और तुम इस मित्र बेध के बोम्ब पास बनोगे।”

“मौन-व्रत का वाखन करूँगा।”

“अवरण राहुष। यह मेरा अंतिम अवचन है तुम्हारे किये। मैं बूढ़ हो चुका, और नहीं जानता कि ममब वह महीन निर्वासित हो जाय।”

राहुष ने अमिताभ के चरणों में गिरकर बाकी की विरुद्ध करने की प्रतिज्ञा की। वह दूर एक दूरत विहार में चला गया। वहाँ उसने कुछ दिन मौन रहकर मन का संवसन किया। उसने जिह्वा पर विग्रह पाई। केवल एक जिह्वा के हासन से ही असम मन बहबाद हो उठा और शेष हृदयों स्थित ही उसकी वराचर्चिनी हो गई। उसकी मेधा जाम उठी और श्रेष्ठ मित्रुओं की मंडली में उसने आदर पाया।

अचानक एक दिन अमिताभ को सातपुत्र और भीरुगजावन की युधु का समाचार मिला। वे जाना उनके प्रपान किये थे। चर्म के अक-अवर्तन और ज्ञान की ज्योति विकीर्ण करने में व अमिताभ की मुखाधों के समान थे। इसके वरणात् ही उन्हें महापत्नी प्रभावती और जीवन्-मंगिनी यथावरा के प्राय-मंत्राय का संवाद दिया गया।

अमिताभ ने आनंद का मुखाकर कहा—“आनंद। मैं अब बूढ़ हो गया। पैठाहीन चर्म जगातार मैंने इस ज्ञान की ज्योति को प्रसारित किया। अब वह भार तुम्हारे कंधे पर रखा है।”

आनंद कोक-विह्वल हो बाँहा—“नहीं, अमिताभ एक कण तक हमारे साथ रहे।”

“तथागत देह-चर्म की अवभाषना नहीं करते।” कहकर अमिताभ ने आनंद के मोह को दूर किया।

दिना की युधु के परवान् अत्राच्छत्रु एक प्रकार का विविध-या

हो गया। मूक सबिठों में वह सारी मुक्ति की मर्मांगुली चुन रहा था। एक-एक कदम घीस चुक-चुक धाँसी मानो उसे जाँझित कर रहा था—
 “हे पिता को बंदी करनेवाले ! क्या तू ही जन्मा बन्धक नहीं है ?”

अज्ञातपुत्र चारों ओर शांति को खोजने लगा। दिन में बैठे-बैठे ही वह चौंक उठता, रातों को अर्धनयन लम्बों के भय से जागते ही बिठा देता। उसका चिरजीवन का सखा देवदत्त उसकी दुहा अर्थात् के कारण बरक का अभिप्राय हो गई थी। उसे देवदत्त अज्ञात की बेइयाबी और भी अधिक बढ़ जाती।

एक दिन अवेक-वेक के अस्तव में जब सभी ज्योम अज्ञात के मन में बसे हुए मन को मुक्त करने की चेष्टा कर रहे थे वह समस्त राग-रंग से कटा हुआ एक कोरे में बैठा हुआ था।

मंत्रिबर्ग उन्हें बरतक में सम्मिलित करने के लिये उनके पास गया। वह बोले—“अभी, इस प्रकार मेरे मन को शांति नहीं मिल रही है। कोई और उपाय बताओ, नहीं तो मुझे आत्मघात करना पड़ेगा।”

उनका राजचिकित्सक बोला—“मैं बताता हूँ आपको इसकी औपधि।”

“अभी जीवक, इस रोग पर तुम्हारा भी कोई पद नहीं।”

“मैं अपने कल भी नाश नहीं करता। बेश हूँ बरतक दे।”

“अभीन ?” आला में भरकर मगध का सज्जाद् बोला।

“अमिताभ कुछ, कदम एक अभी की शरण आपकी शांति दे सकती है।”

“हाँ, वह समझता तो हूँ मैं, पर मैंने अपनी इच्छा के विरुद्ध पिता को बंदी किया और अपने राज्य से बहिष्कृत कर उनका ओर अपमान किया है।”

“अभी की भावना में माय-अपमान का कोई मूल्य ही नहीं है।”

आवश्यकता है

प्रत्येक स्टेट, शहर, नगर और कम्बे में हमारी प्रसिद्ध और उपयोगी हिंदी-पुस्तकों का प्रचार करने के लिये कन्वेसर तथा पार्ट-टाइम कन्वेसरों की। वे ५०) से १००) तक कमा सकते हैं। थोड़ी हिंदी-पढ़े होने चाहिए। साथ ही उनमें हिंदी-श्रेम होना चाहिए। कुछ हिंदी-कंपोजीटर, प्रूफरीडर और मशीनमैन भी चाहिए।

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२६, बाटूरा रोड, अखनऊ

आवश्यक निवेदन

‘सुधा’ और ‘बाबू-विनोद’ की भी आप एजेंसी ले लें। आप न लेना चाहें, तो अपने स्थान के और लोगों को दिखावा दें। आपके यहाँ दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र जो लोग बेचते हैं, उन्हें एजेंट बनवा दें। उनके नाम-पते हमें लिखें। हम उन्हें सीधे पत्र लिखेंगे। अनुचित न समझें, और हो सके, तो आप भी इनसे कहें।

दुस्तराईलाल

(संस्थापक-संपादक ‘सुधा’, ‘बाबू विनोद’ तथा गंगा-पुस्तकमाला आदि)

